# देख कबीरा रोया

भूमिका

ओशो की प्रशंसा में कुछ भी कह पाना असंभव सा लगता है। घूम फिर कर दो ही शब्दों पर लौट आना पड़ता है कि ओशो अनूठे हैं, वे अपूर्व हैं। या उनकी प्रशंसा के लिए उन शब्दों को ज्यों का त्यों रख देना चाहिए जो उन्होंने कृष्ण, बुद्ध या कबीर के लिए कहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में भारत की समस्याओं से जुड़े ओशो के विचार आंखें खोल देने वाले हैं। जिस भी सोच-विचार वाले व्यक्ति ने इस प्रज्ञापुरुष के विचार सुने या पढ़े हैं वह एक ही बार में नत मस्तक हो गया। उनका ही हो कर रह गया। वे करुणा के सागर हैं, उनकी करुणा का कोई अंत नहीं। लेकिन उनकी करुणा में कहीं दीनता नहीं। ओशो संपूर्णता से चोट करने वाले एक संन्यासी योद्धा हैं।

आज से करीब बीस वर्ष पहले जब यह संन्यासी योद्धा अधर्म और असत्य के विरुद्ध युद्ध के मैदान में उतरा तो न्यस्त स्वार्थों के खेमों में हड़कंप मच गया। पंडितों पुरोहितों की घिग्घियां बंध गइ। मूढ़ राजनीतिज्ञों के पांवों के नीचे से जमीन खिसकने लगी। उन्होंने पहला वार गांधीवाद पर किया—'मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूं लेकिन आंखें रहते देश को राज अंधकार में जाते हुए देखना भी असंभव है। धार्मिक आदमी को उतनी कठोरता और जड़ता मैं नहीं जुटा पाता हूं। देश रोज—रोज, प्रतिदिन नीचे उतर रहा है। उसकी सारी नैतिकता खो रही है, उसके जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, जो भी सुंदर है, जो भी सत्य है, वह सभी कलुषित हुआ जा रहा है। इसके पीछे जानना और समझना जरूरी है कि कौन सी घटना काम कर रही है और चूंकि मैंने कहा कि गांधी के बाद नया युग प्रारंभ होता है, इसलिए गांधी से ही विचार करना जरूरी है।'—

—'गांधीवादी कहते हैं कि उस पर विचार नहीं करना है। जो उन्होंने कहा है उसे वैसे ही मान लेना है। यह बात इतनी अंधी और खतरनाक है कि अगर इन सारी बातों को इसी तरह मान लिया गया तो गांधी की आत्मा भी आकाश में कहीं होगी तो रोएगी, क्योंकि गांधी खुद अपनी जिंदगी में हर वर्ष अपनी भूलों को स्वीकार करते रहे और मानते रहे कि जो भूलें हो गइ उन्हें छोड़ देना है। अगर गांधी जिंदा होते तो इन बीस वर्षों में उन्होंने बहुत सी भूलें स्वीकार की होतीं। लेकिन गांधीवादी कहते हैं कि अब कोई भूल पर ध्यान नहीं देना है। जो कहा गया है उसे चुपचाप मान लेना है। यह अंधापन बहुत मंहगा साबित हुआ। बुद्ध और महावीर को अंधा मान लेने से, अंधापन मान लेने से इतना नुकसान नहीं हो सकता है, क्योंकि बुद्ध और महावीर ने व्यक्तिगत मनुष्य के आत्मोत्कर्ष की बात की है। हिंदुस्तान में गांधी एक पहले ही व्यक्ति थे, जिन्होंने सामाजिक उत्कर्ष का भी विचार किया है। बुद्ध और महावीर को मान लेने से एक-एक व्यक्ति भटक सकता है, गांधी को अंधेपन से मान लेने से पूरे समाज का भविष्य भटक सकता है, पूरा देश भटक सकता है, इसलिए गांधी पर विचार कर लेना बहुत जरूरी है।'

रोज-रोज अंधकार की ओर बढ़ते हुई इस देश के दुर्भाग्य पर किए गए ओशो के विचारों ने आंधी ला दी। एक विचार प्रक्रिया शुरू हो गई। राजनीतिज्ञ बचाव की मुद्रा में आ गए—'यह बिलकुल स्वाभाविक है। जो मैं कह रहा हूं, बहुत से न्यस्त-स्वार्थों के विपरीत कह रहा हूं, जो मैं कह रहा हूं, बहुत से पंडितों, पुरोहितों और वादों के विपरीत कह रहा हूं। जो मैं कह रहा हूं, जो पुराना है, उसके विपरीत कह रहा हूं। तो पुराना अपनी रक्षा के उपाय करेगा। लेकिन मेरी समझ यह है कि जब भी कोई विचार रक्षा की, डिफेंस की हालत में आ जाता है, तो उसकी मौत करीब है। जब भी कोई विचार डिफेंसिव हो जाता है और रक्षा करने लगता है तब उसकी मौत करीब आ जाती है। और जब विचार जीवंत होता है, तब वह आक्रामक होता है और जब मरने लगता है, तब वह रक्षात्मक हो जाता है। इसलिए मेरे लिहाज से वह सब लक्षण हैं। अगर एक आदमी को न्यूट्रलाइज करने के लिए, दो साल मेहनत करनी पड़े तो वे बड़े साल भर लड़ाई चलानी पड़ती हो, तो ये बड़े शुभ लक्षण हैं। साधारण लक्षण नहीं हैं। बड़े शुभ लक्षण हैं। मतलब यह है कि एक बात उनकी समझ में आ गई है कि वे डिफेंस में हैं।

'दूसरी बात यह है कि जो मैं कह रहा हूं, और जो वह कह रहे हैं, हम दोनों के बल अलग हैं। अलग का मेरा मतलब यह है कि मेरा बल भविष्य में है, आने वाली पीढ़ी में है; उनका बल अतीत में है, जाने वाली पीढ़ी में है। उनका जो बल है, वह जाने वाली पीढ़ी में है और अतीत में है। उनका बल डूबते हुए सूरज में है। मेरा बल उगते हुए सूरज में है।

'इसलिए मुझे उनकी कोई बहुत चिंता लेने जैसी बात नहीं है। अगर बीस साल वे इसी तरह गुजारते हैं, तो भी आप देखेंगे कि उनका सूरज डूब जाएगा। क्योंकि जिनका उनको बल है, वे बीस साल में विदा हो जाएंगे, जिनका मेरा बल है, वे बीस साल में शक्तिशाली हो जाएंगे। इसलिए लड़ाई आज भला ऐसी कुछ लग सकती है कि मैं कुछ कह कर जाता हूं, फिर साल-छह महीने में उसके लीप-पोत दिया जाता है, लेकिन ऐसा विश्वास के साथ नहीं कहा जा सकता है। और बड़े मजे की बात यह है कि जब मुझे गलत सिद्ध करने में, या मैं जो कह जाऊं उसे लीप-पोत डालने में उनको सारी ताकत लगानी पड़ रही है, तो वे कुछ दे नहीं पाएंगे और बीस साल में उनका काम सिर्फ इतना ही रह जाएगा, जैसा कि घर में सुबह नौकर घर को साफ करता हो, कचरा साफ करता है, उससे ज्यादा उनका मूल्य नहीं रह जाएगा। वे क्रिएटिव देने की हालत में कुछ भी नहीं हैं।

'मैं उनकी चिंता नहीं लेता। मुझे जो कहना है, वह मैं कहे चला जाऊंगा। मुझे जो ठीक लगता है, वह मैं दोहराए चला जाऊंगा। मुझे जो अच्छा लगता है, उसे मैं बनाए चला जाऊंगा। मेरा भरोसा इतना नहीं है कि वे क्या कर रहे हैं, मैं उनसे जूझने जाऊं, क्योंकि मैं मानता हूं कि वे हारी हुई बाजी लड़ रहे हैं। इसलिए उनकी चिंता लेने की जरूरत नहीं है।

'और फिर एक बात है कि कुछ चीजें हैं, जो मर चुकी हैं—सिर्फ कुछ स्वार्थ है, उनको जिंदा रखने को—लाशें हो चुकी हैं। मकान गिर चुका है; लेकिन कुछ लोग बल्लियां लगाए हुए सम्हाले खड़े हैं। क्योंकि उनका सारा स्वार्थ उसमें है। और हम इतने बड़े संक्रमण के समय में हैं, इतना बड़ा ट्रांसफार्मेशन करीब है, उतने जोर से सारी दुनिया बदल रही है कि बिल्लियां बहुत ज्यादा देर नहीं रोकी जा सकतीं। और न बहुत ज्यादा इस मुर्दे को अब जिंदा रखा जा सकता है। वह तो गिरेगा।'—

जो पुराना है वह जाएगा। जो मृत है वह गिरेगा। क्योंकि धर्मयुद्ध छेड़ दिया है ओशो ने। और यह धर्मयुद्ध धर्म की जीत तक, धर्म की स्थापना तक चलने वाला है। यह युद्ध कोई दो देशों के बीच का युद्ध नहीं है कि इसमें कोई समझौता हो जाए। यह तो अंत तक चलने वाला है। और अंततः धर्म जीतेगा, सत्य जीतेगा, यह संन्यासी योद्धा जीतेगा। यह तय है। लेकिन इस युद्ध को इतना लंबा नहीं चलना चाहिए था। इस युद्ध को जीत लिया जाना चाहिए था क्योंकि इस समय इस पृथ्वी पर भगवान के विचारों को कोई तोड़ नहीं है। किसी में सामर्थ्य नहीं है। इस धर्मयुद्ध के छिड़े करीब बीस वर्ष हो गए हैं, इस तरह हिसाब लगाते हैं तो कभी-कभी दुश्चिंता होती है कि अब तक तो लगभग आधी मनुष्यता को खबर लग जानी चाहिए थी कि यह संन्यासी योद्धा हमारा शत्रु नहीं बल्कि परम मित्र है। यह हमारी बेड़ियां काटने वाला मुक्तिदाता है। इस खबर न लगने से बड़ा अहित हुआ है। मनुष्य-जाति के इस अहित के लिए जिम्मेदार हैं वे लोग जो संचार माध्यमों पर कुंडली मारे बैठे हैं। संचार माध्यम को इस धर्मयुद्ध में संजय की भूमिका निभानी चाहिए थी; जैसी महाभारत के युद्ध में निभाई थी निष्पक्ष भूमिका। युद्ध क्षेत्र में क्या हो रहा है, सिर्फ इसकी खबर देना। ओशो के प्रखर विचारों ने, ओजस्वी वाणी ने मनुष्यता के दुश्मनों पर, संपद्रायों पर, मठाधीशों पर, अंधे राजनेताओं पर जोरदार प्रहार किया लेकिन पत्र-पत्रिकाओं ने छापीं या तो ओशो पर चटपटी मनगढ़ंत खबरें या उनकी निंदा की। भ्रम के बादल फैलाए, ये भ्रम के बादल आड़े आ गए ओशो और लोगों के। जैसे सूरज के आगे बादल आ जाते हैं। इससे देर हुई। इससे देर हो रही है मनुष्य के सौभाग्य को मनुष्य तक पहुंचने में।

—'मेरी दृष्टि में जीवन में शांति हो और अंतस्थल पर प्रेम का उदघाटन हो तो आदमी जो भी करता है, वह सेवा है। और रास्ते पर बुहारी लगाना ही रचनात्मक नहीं है, आपकी खोपड़ी में बुहारी लगाना ज्यादा रचनात्मक है। मैं सिर्फ बोल नहीं रहा हूं। विचार से बड़ी और कोई रचना जगत में नहीं है। विचार से महीन, विचार से ज्यादा अदभुत, विचार से ज्यादा शक्तिशाली कोई क्रांति नहीं है। क्योंकि मूलतः विचार के बीज ही हृदय में जा कर अंततः जीवन को, समाज को, रूपांतरित करते हैं। लेकिन अगर गांधी जी और विनोबा जी के कारण एक ऐसी बात फैल गई कि कोई सड़क पर बुहारी लगाए या कोई जा कर बीमार आदमी का हाथ-पैर धो दे, या कोढ़ी का पैदा दबा दे तो वह विचार देने से भी बड़ी सेवा कर रहा है, यह तो बात निहायत नासमझी से भरी हुई है।'—

## देख कबीरा रोया

ओशो ने हमारे देश को विचार की क्रांति में ले जाने की कोशिश की है। जो कि इस देश की एकमात्र जरूरत है। उन्होंने हर तरह से चेष्टा करके, वैचारिक शॉक्स दे करके नींद तोड़ने की कोशिश की है ताकि इस देश का विचार जग सके। उन्होंने एक-एक आदमी की आस्था की जमीन खींच ली। उन्होंने गांधीवाद पर बोल कर गांधीवादियों को आईना दिखा दिया। समाजवाद और पूंजीवाद की सही व्याख्या करके राजनैतिक स्वार्थों को नंगा कर दिया—'नहीं, किसी भी तरह का दबाव अहिंसात्मका नहीं है। सब दबाव वायलेंस है, दबाव हिंसा है। और इसलिए गांधी के सत्याग्रह और अनशन का परिणाम भारत के लिए अच्छा नहीं हुआ। सारा देश आज किसी भी टुच्ची बात पर सत्याग्रह करता है, किसी भी बेवकूफी की बात पर अनशन शुरू हो जाते हैं। सारा मुल्क परेशान है। गांधी जो तत्व दे गए हैं, वह मुल्क को भरमा रहा है और भटका रहा है और तकलीफ में डाल रहा है। और अगर वह बढ़ता चला गया तो हिंदुस्तान की नौका कहां डूब जाएगी, किन चट्टानों से टकरा कर कहना मुश्किल है।'

'मेरी अपनी मान्यता यह है कि हिंदुस्तान के सारे महात्माओं ने आदर्श इतने ऊंचे रखे हैं कि सामान्य उन तक उठ ही नहीं सकता। आदर्श इतने ऊंचे रखे हैं कि सामान्य उनकी तरफ आंखें उठा कर भी नहीं देख सकता। और इसका परिणाम यह हुआ कि हिंदुस्तान में कुछ थोड़े से लोग, बड़े-बड़े लोग उस तरह पैदा हुए, और बाकी समाज हीन से हीन होता चला गया। अगर आदर्श असंभव होंगे तो समाज हीन हो ही जाएगा। गांधी के आदर्श भी असंभव की सीमा छूते हैं। और असंभव आदर्श प्रभावित कर सकते हैं, आकर्षित कर सकते हैं लेकिन आचरण में नहीं जाए जा सकते।'

'मेरी नजर में पूंजीवाद का अंतिम परिणाम समाजवाद है। वह बिलकुल सहज व्यवस्था है। उसके लिए किसी क्रांति में से गुजरने की जरूरत नहीं है। असल में पूंजीवाद ही वह क्रांति है, जिसके फल में समाजवाद आता है। पूंजीवाद ही वह क्रांति है जिससे समाजवाद आ जाता है, अनिवार्यरूपेण। क्योंकि पूंजीवाद एक काम कर देता है, संपत्ति को पैदा करने का। और यह इतना बड़ा काम है कि पूंजीवाद के अलावा कोई भी नहीं कर सकता।'

'मेरी अपनी समझ तो यह है कि हिंदुस्तान को पचास साल सुनियोजित पूंजीवाद की जरूरत है, प्लैंड कैपिटलिज्म की जरूरत है। हिंदुस्तान पचास साल में इतनी संपत्ति पैदा करने में संलग्न हो कि बांट सके। हिंदुस्तान के लिए समाजवाद की बात पचास साल बाद अर्थ की होगी, और अभी आत्मघाती है, सुसाइडल है। अभी हमने बात की कि मरे। और अगर हमने अभी समाजवाद पकड़वाने की लिए राजी कर रहा है।'

हो सकता है ओशो ने भूखे गरीबों को पंगत में बिठा कर कभी खाना न खिलाया हो पर जिस निर्धन को भी उनके विचारों ने छू लिया वह अपने आत्म-आसन पर बैठ कर बादशाह हो गया। यह भी सच है कि उन्होंने कोई अस्पताल, धर्मशाला या प्याऊ नहीं बनाए, लेकिन उनके बताए ध्यान और समाधि के प्रयोगों ने संपूर्ण मानव-जाति के लिए मानसिक रुग्णता से मुक्ति पाने के रास्ते खोल दिए हैं। उन्होंने दूसरे धन्नासेठों की तरह कोई स्कूल या कालेज भी नहीं बनवाया लेकिन उनके विचारों की बगिया ओशो धाम कल पूरे विश्व को प्रेम और जीवन जीने की कला सिखाने वाला विश्वविद्यालय साबित होगा।

आज पूरा मानव समाज शोषण, युद्ध, घृणा, असमानता से ग्रस्त है, इस छोर से उस छोर तक। एक तरफ इतनी समस्याएं हैं, दूसरी तरफ अकेले हैं ओशो। एक तरफ इतने मनुष्यता के दुश्मन हैं, दूसरी तरफ अकेले मित्र हैं ओशो।

ना इतनी तेज चले सर फिरी हवा से कहो
शजर पे एक ही पत्ता दिखाई देता है।

'उसी विचार की दिशा में मैं प्रश्न कर रहा हूं। एक अकेले आदमी की आवाज कितनी हो सकती है, जिसके पास न कोई संगठन है, न कोई संस्था है, न कोई साथी है, न कोई संपत्ति है? एक अकेले आदमी की आवाज कितनी हो सकती है? लेकिन मैं इस आशा में आवाज दिए ही चला जाऊंगा, जब तक कि वे मेरी आवाज बिलकुल बंद ही न कर दें। मुझे यह खयाल है कि कुछ लोग यह आवाज सुन लेंगे। और अगर आवाज में कोई सत्य होगा तो यह आवाज रुकवाई नहीं जा सकती, यह गांव-गांव, कोने-कोने, एक-एक आदमी तक जरूर पहुंच जाएगी। अगर परमात्मा की यह मर्जी होगी कि भारत सत्य के प्रकाश में जागे तो यह कह कर रहेगा। इसे कोई भी रोक नहीं सकता है।'

# देख कबीरा रोया

ओशो की बीस वर्ष पूर्व दी हुई आवाज लाखों दिलों तक पहुंची हैं, लाखों लोगों तक पहुंच रही है। नये मनुष्य के जन्म की तैयारी हो चुकी है। आज नहीं तो कल हम ओशो की ही उपस्थिति में जीवन के परम सौभाग्य की वर्षा देखेंगे। और तब यह अभागन बीसवीं सदी जिसके माथे पर दो विश्वयुद्धों का कलंक लगा है इसलिए शर्मिंदा है तो कल अपने इस सौभाग्य पर गर्व करेगी कि यह ओशो जैसे महामानव की जन्मदात्री सदी है। यह अभावग्रस्त देश भारत जो आज पश्चिम के दिए हुए दान और सहायता के एहसानों तले दबा सिर झुकाए खड़ा है, कल गर्व से से पश्चिम को बताएगा कि हमने तुम्हें ओशो जैसा अनूठा उपहार दिया है।

आशकरण पाठक
28, कालिका निवास, नेहरू रोड़
सांताक्रुज (पूर्व)
बंबई-55

श्री आशकरण अटल हास्य-व्यंग के प्रसिद्ध युवा कवि हैं। सर्वथा मौलिक और अनूठे ढंग के। साथ ही साथ आप दूरदर्शन के लिए अनेक सीरियल और फीचर-फिल्मों के लेखक एवं निर्माता-निर्देशक हैं। इन्हीं दिनों आपको वैद्यराज दीक्षित पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। आपने ओशो के जीवन-दर्शन पर आधारित काव्य का रसपूर्ण सृजन किया है।

अनुक्रम

देख कबीरा रोया

पहला प्रवचन

एक मृत महापुरुष का जन्म

पोप अमेरिका गया हुआ था। हवाई जहाज से उतरने के पहले उसके मित्रों ने उससे कहा, एक बात ध्यान रखना, उतरते ही हवाई अड्डे पर पत्रकार कुछ पूछें तो थोड़ा सोच-समझ कर उत्तर देना। 'हां' और 'न' में उत्तर देना ही नहीं। जहां तक बन सके, उत्तर देने से बचने का प्रयत्न करना; अन्यथा अमेरिका में आते ही परेशानी शुरू हो जाएगी।

पोप जैसे ही हवाई अड्डे पर उतरा, वैसे ही पत्रकारों ने उसे घेर लिया और एक पत्रकार ने उससे पूछा, वुड यू लाइक टु विजिट एनी न्युडिस्ट कैंप, वाइल इन न्यूयार्क? क्या तुम कोई दिगंबर क्लब, कोई नग्न रहने वाले लोगों के क्लब में न्यूयार्क में रहते समय जाना पसंद करोगे?

पोप ने सोचा, हां और न में उत्तर देना खतरनाक हो सकता है। 'हां' कहने का मतलब होगा कि मैं जाना चाहता हूं देखने। 'न' कहने का मतलब होगा जाने से डरता हूं। उत्तर देने से बचने के लिए उसने उलटा प्रश्न पूछा। उसने पूछा, इज़ देयर एनी न्युडिस्ट क्लब इन न्यूयार्क? न्यूयार्क में नंगे लोगों का कोई क्लब है? फिर बात दूसरी चल पड़ी। उसने सोचा कि छुटकारा हुआ।

लेकिन दूसरे दिन सुबह अखबारों में पहले ही पृष्ठ पर बड़े-बड़े अक्षरों में खबर छपी थी। खबर थी कि महामहिम परमपूज्य पोप ने हवाई अड्डे पर उतरते ही पत्रकारों से पहली बात यह पूछी, इज़ देयर एनी न्युडिस्ट क्लब इन न्यूयार्क? नंगे लोगों को कोई क्लब है न्यूयार्क में? उतरते ही यह पहली बात पत्रकारों से महामहिम पोप ने पूछी।

कुछ ऐसा ही मामला मेरे और पत्रकारों के बीच भी हो गया। लेकिन मेरे संबंध में और पत्रकारों के बीच में और पोप और पत्रकारों के बीच में हुई बात में थोड़ा फर्क है। एक फर्क यह है कि मैंने 'हां' और 'न' में उत्तर दिए। मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूं कि उत्तर देने से बचने की कोशिश करूं। घुमाव-फिराव से मुझे कोई नाता और संबंध नहीं है। जो बात मुझे ठीक लगे और जैसी लगे वैसी ही कह देने को मैं कर्तव्य समझता हूं। मेरे उत्तर तक तो ठीक था, लेकिन उन उत्तरों को इस तरह बिगाड़ करके, विकृत करके अधूरे प्रसंग के बाहर उपस्थित किया गया।

मैं तो यहां नहीं था, पंजाब में था। लौटा तो यहां देख कर बहुत हैरानी मालूम पड़ी और आश्चर्य मालूम पड़ा कि चीजें इस रंग में भी पेश की जा सकती हैं। लेकिन मित्र तो घबराए हुए थे। मैं प्रसन्न हुआ। मैंने कहा, इसमें घबराने की बात नहीं। एक लिहाज से पत्रकारों ने बड़ी कृपा की है और भविष्य में भी ऐसी ही कृपा करते रहेंगे तो अच्छा होगा। बहुत लोगों तक

खबर पहुंच गई, बात पहुंच गई। कोई फिक्र नहीं कि गलत ढंग से पहुंची। लेकिन वह मुझे सुनने आ सकेंगे तो उन्हें ठीक बात का बोध हो सकेगा।

कई बार कुछ लोग जिन बातों को सोचते हैं कि अभिशाप बन जाएंगी, वे ही बातें वरदान भी बन सकती है।

मैं राजकोट गया, वहीं से लौटा आज। वहां मित्र बहुत घबड़ाए हुए थे। लेकिन परिणाम यह हुआ कि जहां दस हजार लोग मुझे सुनते थे, वहां बीस हजार लोगों ने मुझे सुना। वे समझते गए और आश्चर्य करते गए कि चीजों को यह रंग और रूप भी दिया जा सकता है।

मेरी दृष्टि में भारत के दुर्भाग्यों में से एक दुर्भाग्य यह रहा है कि हम अपने महापुरुषों की आलोचना करने में समर्थ नहीं हो पाती, उसके संबंध में दो ही बातें कही जा सकती हैं। एक तो यह कि वह अपने महापुरुषों को इस योग्य नहीं समझती कि उनकी आलोचना की जा सके या अपने महापुरुषों को इतना कमजोर और साधारण समझती है कि आलोचना में वे टिक नहीं सकेंगे।

मैं गांधी के संबंध में ये दोनों ही बातें मानने को तैयार नहीं हूं। मेरी समझ में गांधी कोई कागजी महापुरुष नहीं हैं कि आलोचना की वर्षा आएगी और उनका रंग-रोगन बह जाएगा।

गांधी को मैं दुनिया के उन थोड़े से महापुरुषों में से एक मानता हूं, जो पत्थर की प्रतिमाओं की तरह हैं, जिन पर वर्षा होती है और धूल बह जाती है, प्रतिमा और निखर कर प्रकट होती है।

गांधी कोई कच्चे महापुरुष नहीं हैं। लेकिन गांधी के पीछे अनुयायियों को जो वर्ग है, वह शायद स्वयं कच्चा है। इसलिए गांधी को भी कच्चा मान लेता है। खुद के भय ही हम अपने महापुरुषों पर आरोपित कर देते हैं। हमारी अपनी ही कमजोरियां हम अपने महापुरुषों पर आरोपित कर देते हैं। हमारी अपनी ही कमजोरियां हम अपने महापुरुषों पर भी थोप देते हैं। गांधी की आलोचना निश्चित ही की जानी चाहिए। क्योंकि गांधी की आलोचना से गांधी को तो कुछ बिगड़ने वाला नहीं है, हमारा जरूर कुछ हित हो सकता है।

यह बात अत्यंत अप्रौढ़ और तर्कशून्य प्रतीत होती है कि हम अपने महापुरुषों की सिर्फ पूजा करें और कभी कोई सृजनात्मक आलोचना करें। यह भी कुछ भय मालूम होता है पीछे कि कहीं हमारे महापुरुष की किसी त्रुटि का स्मरण न आ जाए।

स्मरण रखना चाहिए कि पृथ्वी पर ऐसा कोई मनुष्य कभी नहीं हुआ है जिससे भूलें न होती हों। एक बात का अंतर होता है—छोटे लोग छोटी भूलें करते हैं, महापुरुष बड़ी भूलें करते हैं। महापुरुष छोटी भूल नहीं करते।

लेकिन पृथ्वी पर कोई मनुष्य कभी नहीं होता जिससे भूल न होती हो। जिससे भूल नहीं होती है उसे मोक्ष प्राप्त हो जाता है। उसे पृथ्वी पर आने की कोई आवश्यकता ही नहीं होती है।

लेकिन हमारे मन में यह घबड़ाहट रहती है कि हमारे महापुरुष की कोई भूल, कोई त्रुटि ध्यान में न आए। इसलिए पूजा करो, प्रार्थना करो, उपासना करो, लेकिन कभी विचार मत करना।

क्योंकि ध्यान रहे जैसे ही विचार शुरू होगा, आलोचना प्रारंभ होती है। बिना आलोचना के विचार कभी होता ही नहीं है। पूजो हो सकती है, स्तुति हो सकती है, प्रशंसा हो सकती है। लेकिन वह विचार नहीं है। और जो कौम अपने महापुरुषों पर विचार नहीं करती, उसके महापुरुषों का जीवन व्यर्थ हो जाता है, उसके काम में ही नहीं आ पाता है।

हम तीन-चार हजार वर्षों से यही कर रहे हैं! महावीर हैं, बुद्ध हैं, कृष्ण हैं, राम हैं। हमें उनकी पूजा करनी है, विचार उन पर कभी नहीं करना है? ध्यान रहे, जिन पर हम विचार नहीं करते हैं, उनका हमारे जीवन पर कोई संस्पर्श, हमारे जीवन का परिवर्तन करने वाला कोई भी प्रभाव कभी नहीं पड़ता है।

पूजा से हम रूपांतरित नहीं होते हैं, विचार से हम रूपांतरित होते हैं।

और पूजा! हो सकता है सिर्फ हमारी तरकीब हो महापुरुष से बच जाने की।

और मुझे ऐसा लगता है कि जिससे हम बचना चाहते हैं, उसी को भगवान बना कर मंदिर में बिठा देते हैं। फिर हमारी झंझट समाप्त हो जाती है। कभी दो फूल चढ़ा आते हैं, कभी माला पहना आते हैं, कभी स्तुति कर लेते हैं, कभी जन्म-दिन मना लेते हैं और हमसे उसका फिर कोई संबंध नहीं रह जाता!

जिस महापुरुषों को हमें व्यर्थ करना हो, उसकी हमने तरकीब निकाल ली है कि हम उसकी पूजा करेंगे, स्तुति करेंगे, लेकिन उस पर विचार करेंगे। क्योंकि विचार करने का परिणाम एक ही हो सकता है कि विचार करने से हमें इस योग्य मालूम पड़े कि हम अपने जीवन को बदलें।

लेकिन हम बहुत होशियार हैं, यह देश बहुत होशियार है, अपने-आपको धोखा देने में। यह देश सोचता है कि हम महावीर की पूजा करते हैं तो हम बड़ा भारी काम कर रहे हैं; कि हम बुद्ध की पूजा करते हैं तो शायद बुद्ध पर कोई उपकार कर रहे हैं या गांधी की पूजा शुरू की है तो गांधी पर हमारा कोई अनुग्रह हो रहा है। इस भ्रांति में रहने की जरूरत नहीं है।

महापुरुष का उपयोग यह है कि वह हमारे जीवन में, हमारे खून में, हमारे विचार में, हमारी प्रतिभा में प्रविष्ट हो सके।

और हमारी प्रतिभा में किसी को द्वार तभी मिलता है—जब हम विचार करते हैं, आलोचना करते हैं, खोजबीन करते हैं, अन्वेषण करते हैं, तब प्रवेश मिलता है हमारी प्रतिभा के भीतर।

हमारे सारे महापुरुष भारत की प्रतिभा के बाहर खड़े हुए हैं, मंदिरों में बंद। भारत के प्राणों में उनका कोई प्रवेश नहीं हो सका है।

मैं नहीं चाहता हूं कि पुराने महापुरुषों की तरह गांधी जैसा अदभुत व्यक्ति भी व्यर्थ हो जाए। इसलिए मैं चाहता हूं कि गांधी पर जितना सतेज आलोचना और विचार हो सके उतना ही सौभाग्य मानना चाहिए। लेकिन वह जो गांधी के पीछे चलने वाले गांधीवादियों का तबका है, वह इस बात से बहुत घबड़ाता है। वह क्यों घबड़ाता है? वह इसलिए घबड़ाता है कि उसे डर है कि गांधी की आलोचना अंततः गांधीवाद की आलोचना बन सकती है। उसका भय यह नहीं है कि गांधी की आलोचना से उसको कोई परेशानी होने वाली है। उसका भय यह है कि गांधी की आड़ में वह खुद छिपा हुआ है और गांधी की आलोचना कहीं उसकी आलोचना न बन जाए। इसलिए वह गांधी की आलोचना और विचार करने से बचना चाहता है। वह कहता है पूजा के थाल चढ़ाओ और गांधी को भगवान बना लो। मैं भगवान से एक ही प्रार्थना करता हूं, कृपा करना, गांधी को भगवान मत बनने देना। क्योंकि जितने लोग हमारे पहले भगवान बन गए हैं, वे भगवान बनते ही व्यर्थ हो गए। समाज और देश के लिए उनका कोई उपयोग नहीं रह गया।

गांधी एक अदभुत व्यक्ति हैं। शायद पृथ्वी पर इस सदी में दो-चार लोग ही उस कोटि के पैदा हुए हैं। लेकिन पीछे चलने वाले लोग हमेशा महापुरुष की हत्या करने की कोशिश करते हैं। वह हत्या उनको भगवान बना कर की जाती है।

जिस आदमी को भी भगवान बना दिया, उसकी आदमी की तरह हत्या हो गई। भगवान की तरह स्थापना हो गई, आदमी की तरह हत्या हो गई।

और हम आदमी से ही प्रभावित हो सकते हैं और आदमियों के साथ ही हम जी सकते हैं और आगे चल सकते हैं। गांधी के साथ फिर वही शरारत शुरू हो गई है जो हमने राम, कृष्ण, बुद्ध और महावीर के साथ की थी। लेकिन हम अतीत की भूलों से कुछ सीखते भी मालूम नहीं पड़ते।

मैं चाहता हूं कि गांधी को हम मनुष्य ही बनाए रखें, ताकि वे हमारी मनुष्यता के काम आ सकें। हम उन पर निरंतर विचार कर सकें, सोच सकें और आगे बढ़ सकें। इस खयाल में मैंने उनकी कुछ आलोचना की थी।

मेरे पास अनेक पत्र पहुंचे कि जो व्यक्ति मर चुका है उसकी आलोचना हमें नहीं करनी चाहिए। मैंने उन पत्रों के उत्तर में लिखा कि शायद तुम्हें पता नहीं है कि गांधी उन लोगों में से ही नहीं हैं जो इतनी आसानी से मर जाएं। गोडसे ने जो भूल की थी वही भूल गांधीवादी की करते हैं। गोडसे ने जो भूल की थी कि गोली मार देंगे, इस आदमी का शरीर मर जाएगा तो गांधी मर जाएगा। गांधीवादी भी समझते हैं कि शरीर गिर गया गांधी का तो गांधी मर गए। अब उनकी आलोचना नहीं करनी चाहिए।

यह बात ठीक है कि छोटे-छोटे लोगों के बाबत कि जब वे मर जाएं तो हमें उनकी प्रशंसा ही करनी चाहिए, क्योंकि मरे हुए आदमी की क्या आलोचना करनी है! एक बुरा आदमी भी गांव में मर जाता है तो उसकी कब्र पर लोग कहते हैं कि बड़ा अच्छा आदमी था। छोटे आदमियों के साथ यह ठीक है कि उन बेचारों के पास क्या है जो उनके मरने के बाद बच रहेगा!

लेकिन गांधी जैसे महापुरुषों के साथ यह अन्याय है कि हम समझें कि वह मर गए। मैं गांधी को, उनके प्रभाव को, अभी जिंदा मानता हूं और उनके साथ एक जिंदा आदमी का व्यवहार करना चाहता हूं, एक मरे हुए आदमी का नहीं। लेकिन गांधीवादी कहते हैं कि वे मर गए। अब उनकी बात नहीं करनी चाहिए।

शायद आपने सुना हो, सुकरात की जिस दिन मौत हुई, उसे जहर दिया गया। जहर देने के पहले उसके मित्र उसके पास गए और उसके एक शिष्य क्रेटो ने उससे पूछा कि सांझ आपको जहर दिया जाएगा तो आप हमें बता दें कब हम दफनाएंगे किस तरह आपको, किस विधि से, किस मार्ग से, गाड़ें, जलाएं या क्या करें। आप रास्ता बता दें, वैसा हम करें।

सुन कर सुकरात हंसने लगा और उसने क्रेटो से कहा, 'पागल जो मेरे दुश्मन समझते हैं कि मुझे जहर दे कर मार डालेंगे वही तुम समझते हो कि शरीर के मरने से मैं मर जाऊंगा और तुम दफनाने का विचार करने लगे हो।

मैं तुम्हें कहता हूं क्रेटो कि तुम सब मर जाओगे, तुम सब दफना दिए जाओगे, तब भी मैं जिंदा रहूंगा।

आज ढाई हजार साल हो गए, सुकरात अभी जिंदा है। क्रेटो का नाम सिर्फ हमें इसलिए याद है कि सुकरात ने वह नाम लिया था। क्रेटो कभी का मर चुका है। वे साथी मर चुके, जिन्होंने सोचा होगा कि सुकरात को दफना रहे हैं, लेकिन सुकरात जिंदा है।

महान व्यक्ति का एक ही अर्थ होता है कि वह शरीर के पार उठ गया। अब शरीर के मिटने से उसके मिटने की कोई संभावना नहीं है।

मैं गांधी को एक जिंदा आदमी मान कर व्यवहार करना चाहता हूं और मुझे लगता है कि अभी गांधी को गांधीवादी दफनाने की बात न करें तो बहुत अच्छा है। इतना जल्दी मरा हुआ मानने की जरूरत नहीं है। लेकिन वे भयभीत हैं कि कोई आलोचना न की जाए और मैंने आलोचना क्या की है? मेरी आलोचना गांधी के विरोध में नहीं है, लेकिन गांधीवाद के विरोध में है और मेरी दृष्टि है कि सच बात तो यह है कि गांधीवाद जैसी कोई चीज गांधी की कल्पना में थी ही नहीं। गांधी नहीं मानते थे कि उनका कोई वाद है। मानते थे कि जो उनकी अंतर्दृष्टि को ठीक मालूम पड़ता है, वह प्रयोग करते चले जाते हैं। उनका कोई रेखाबद्ध वाद नहीं है, लेकिन गांधी के पीछे जो गिरोह इकट्ठा हुआ, उसने 'गांधीवाद' खड़ा कर रखा है।

दुनिया में हमेशा अनुयायी पंथ, संप्रदाय और वाद खड़ा करते हैं और पंथ, संप्रदाय और वाद जितने मजबूत होते जाते हैं, उतना ही हमारे और हमारे महापुरुषों के बीच एक पत्थर की दीवाल खड़ी हो जाती है जिसको पार करना मुश्किल हो जाता है।

गांधी का कोई वाद नहीं है इन अर्थों में, लेकिन गांधी ने जीवन भर जो किया है, जो सोचा है, जो विचारा है वह है और उस पर हमें बहुत स्पष्ट निर्णय लेना जरूरी है, क्योंकि उसी निर्णय के आधार पर इस देश के भविष्य को बनाने का हम विचार करेंगे।

गांधीवादी कहते हैं कि उस पर विचार नहीं करना है। जो उन्होंने कहा है उसे वैसा ही मान लेना है। यह बात इतनी अंधी और खतरनाक है कि अगर इन सारी बातों को इसी तरह मान लिया गया तो गांधी की आत्मा भी आकाश में कहीं होगी तो रोएगी, क्योंकि गांधी खुद अपनी जिंदगी में हर वर्ष अपनी भूलों को स्वीकार करते रहे कि जो भूलें हो गइ उन्हें छोड़ देना है। अगर गांधी जिंदा होते तो इन बीस वर्षों में उन्होंने बहुत सी भूलें स्वीकार की होतीं। लेकिन गांधीवादी कहते हैं कि अब कोई भूल पर ध्यान नहीं देना है। जो कहा गया है उसे चुपचाप मान लेना है। यह अंधापन बहुत मंहगा साबित होगा।

बुद्ध और महावीर को अंधा मान लेने से, अंधापन मान लेने से उतना नुकसान नहीं हो सकता है, क्योंकि बुद्ध और महावीर ने व्यक्तिगत मनुष्य की आत्मोत्कर्ष की बात की है।

हिंदुस्तान में गांधी एक पहले ही व्यक्ति थे, जिन्होंने सामाजिक उत्कर्ष का भी विचार किया है। बुद्ध और महावीर को माने लेने से एक-एक व्यक्ति भटक सकता है, गांधी को अंधेपन से मान लेने से पूरे समाज का भविष्य भटक सकता है, पूरा देश भटक सकता है, इसलिए गांधी पर विचार कर लेना बहुत जरूरी है।

गांधी पहले हिम्मतवर आदमी थे जिन्होंने समाज की तरफ से मुंह नहीं मोड़ा। वह समाज के बीच में खड़े रहे और जिंदगी के साथ और जिंदगी को उठाने की उन्होंने कोशिश की।

यह पहला आदमी था जो जीवन-विरोधी नहीं था, जिसका जीवन के प्रति स्वीकार का भाव था। स्वभावतः किसी भी दिशा में आदमी से बड़ी भूलें होना संभव है। पायोनियर हमेशा भूलें करता है। वह पहले आदमी थे, एक नई दिशा में प्रयोग कर रहे थे और अगर हम उनको कंधे हो कर माने लेंगे तो हम बहुत खतरनाक रास्ते पर जा सकते हैं।

मेरी दृष्टि में भारत की बहुत प्राचीन समय से कुछ-कुछ बुनियादी भूलों में से एक भूल यह रही है कि हमने दरिद्रता का दर्शन विकसित किया है, जिसको 'फिलासफी ऑफ पावर्टी' कहा जा सकता है। पांच हजार वर्षों से हमने यह स्वीकार किया हुआ है कि दरिद्र होना भी कोई बड़े गौरव की बात है और उसके साथ ही धन-संपदा, समृद्धि की एक निंदा, इनका एक बहिष्कार भी हमारे मन में रहा है। परिग्रह का एक विरोध, अपरिग्रह की एक स्थापना। समृद्धि-विस्तार का विरोध, संकोच-दरिद्रता की स्वीकृति हमारे खून में प्रविष्ट हो गई है।

मैं कहना चाहता हूं कि यह इसी 'दरिद्र दर्शन' का परिणाम है। भारत पांच हजार वर्षों की लंबी सभ्यता के बाद भी दरिद्र है और समृद्ध नहीं हो पाया है। इस विचार का यह अंतिम परिणाम है।

गांधी न जाने-अनजाने पुनः इसी दरिद्रता के दर्शन को फिर से सहारा दिया है। गांधी ने फिर दरिद्रनारायण कह दिया। दरिद्रनारायण नहीं है, दरिद्रता पाप है, दरिद्रता रोग है। उससे घृणा करनी है, उसे नष्ट करना है। दरिद्र को अगर हम पवित्र और भगवान कहेंगे—इस तरह की बातें करेंगे और दरिद्रता को महिमामंडित करेंगे तो हम दरिद्रता को नष्ट नहीं कर सकते हैं, हम दरिद्रता को बनाए ही रखेंगे। हम दरिद्रता पर दया कर सकेंगे, सेवा कर सकेंगे दरिद्र की, लेकिन दरिद्र को मिटा नहीं सकेंगे। दरिद्र की सेवा की जरूरत नहीं है, दरिद्र के गुणगान की जरूरत नहीं है, दरिद्र की दया की जरूरत नहीं है। दरिद्र को पृथ्वी को नष्ट करना है, दरिद्र को नहीं बचने देना है।

दरिद्रता के साथ एक महामारी का व्यवहार करना है। प्लेग, हैजा और मलेरिया के साथ जो हम जो व्यवहार करते हैं, वही व्यवहार दरिद्रता के साथ करना है। लेकिन हिंदुस्तान की जो परंपरा है दरिद्रता की और त्याग की, गांधी के मन पर उसका अभाव है, सारे मुल्क के मन पर उसका प्रभाव है। हमारे जाने-अनजाने हमारे अचेतन में, अनकांशस तक यह बात प्रविष्ट हो गई है कि दरिद्रता को कुछ गौरव है।

यह बहुत खतरनाक दृष्टि है, यह बहुत ही आत्मघाती दृष्टि है; क्योंकि जब हम दरिद्रता को इस भांति स्वीकार करते हैं, सम्मान देते हैं और दरिद्रता में संतोष कर लेने को एक धार्मिक गुण मानते हैं, तो फिर समाज समृद्ध कैसे होगा, समाज संपत्ति पैदा कैसे करेगा?

हम भी इसी पृथ्वी पर हैं, दूसरे देश भी इसी पृथ्वी पर हैं। हम पीछे इतिहास में उनसे कहीं ज्यादा समृद्ध थे जो आज तक के जीवन को, जीने के दर्शन को और व्यवस्था को रूपांतरित नहीं किया तो हम आगे भी यही करते चले जाएंगे, जो हमने पीछे किया है।

संपत्ति आसमान से पैदा नहीं होती है, संपत्ति श्रम से पैदा होती है। श्रम आकस्मिक नहीं होता। श्रम विचार से जन्म लेता है और अगर हमारे विचार में संपदा का विरोध है तो हम न श्रम करेंगे, न संपदा पैदा करेंगे।

यह जो भारत एकदम श्रमशून्य मालूम पड़ता है—सुस्त, काहिल, अलाल मालूम पड़ता है, लेजी मालूम पड़ता है, यह लेजीनेस, यह सुस्ती, यह काम न करने की प्रवृत्ति, यह प्रवृत्ति उस विचार से पैदा होती है जो दरिद्रता की, संतोष मानने की शिक्षा देता है और यह भी ध्यान रहे कि इसी कारण बुद्ध और महावीर जैसे लोग राजघरों को छोड़ कर दरिद्र हो गए।

# देख कबीरा रोया

हिंदुस्तान में जैनियों के चौबीस तीथ□कर राजाओं के लड़के थे। बुद्ध राजा के लड़के थे, राम और कृष्ण राजाओं के लड़के थे। हिंदुस्तान के सारे तीथ□कर और अवतार राजपुत्र थे। ये सारे तीथ□कर और बुद्ध राजमहलों को छोड़ कर दरिद्र हो गए और इनके दरिद्र होने से हमारे बातों में बुनियादी फर्क है।

अमीर आदमी जब दरिद्र होता है तब वह अमीरी को जान कर दरिद्र होता है। अमीरी व्यर्थ हो गई, इसलिए दरिद्र होता है। उसकी दरिद्रता और उस आदमी की दरिद्रता जिसने कभी अमीरी नहीं जानी, भरपेट भोजन नहीं जाना, कपड़े नहीं जाने, इन दोनों की दरिद्रता में कोई भी संबंध नहीं है।

सच बात तो यह है कि अमीर जब दरिद्र होता है तो दरिद्रता भी एक आनंद मालूम होती है, क्योंकि दरिद्रता भी एक स्वतंत्रता मालूम होती है। गरीब आदमी जब दरिद्रता से संतोष कर लेता है तो वह संतोष सिर्फ दुख को छिपाने का और सांत्वना का एक उपाय होता है।

हिंदुस्तान के सारे बड़े शिक्षक राजघरानों से आए। वे राजघराने से ऊब गए थे। वे संपत्ति से ऊब गए थे, परेशान हो गए थे। संपत्ति की अपनी परेशानियां हैं, दरिद्रता की अपनी परेशानी है, भिखमंगे की अपनी परेशानी है, राजघर की अपनी परेशानी है।

वे अपनी परेशानियों से पीड़ित हो गए थे, वे स्त्रियों और सुख के बीच ऊब गए थे, उन्हें बदलाहट चाहिए थी। उन्होंने वह सब छोड़ दिया और सड़क पर नग्न खड़े हो गए। उन्हें उस नग्नता में बहुत स्वतंत्रता मालूम हुई होगी, उन्हें उस नग्नता में एक अदभुत मुक्ति मालूम हुई होगी।

वह मालूम हो सकती है, लेकिन वह हमेशा तभी मालूम होती है, जब कोई समृद्धि का लात मार कर दरिद्र बनता है। वह दरिद्रता समृद्धि के आगे का कदम है, समृद्धि के पहले का कदम नहीं है। वह दरिद्रता भी एक अर्थ में समृद्धि का वैभव है, वह दरिद्रता भी समृद्धि का अंतिम विलास है। उसको भी लात मारने का मजा है। वह सुख गरीब आदमी नहीं उठा सकता।

लेकिन हिंदुस्तान के बड़े शिक्षक जब दरिद्र हुए, उन्होंने धन छोड़ा तो दरिद्र को लगा कि जिस चीज को छोड़ ही देना पड़ता है उसे पाने की जरूरत क्या है। और उसे पता नहीं कि वह दरिद्र महावीर की दरिद्रता का मजा नहीं लूट पाएगा। महावीर की दरिद्रता बुनियादी रूप से, गुणात्मक रूप से भिन्न है।

मैं अमृतसर में था। एक संन्यासी मित्र एक घटना सुना रहे थे कि अमृतसर से एक ट्रेन जा रही थी हरिद्वार की तरफ। मेला है हरिद्वार में। हजारों लोग ट्रेन में भर रहे हैं। हरेक आदमी अमृतसर स्टेशन पर यही चिल्लाता है कि चलो गाड़ी के अंदर, भीतर बैठो, जल्दी भीतर चलो, सामान रखो।

एक आदमी के पास भीड़ है और वह यह कह रहा है कि मैं गाड़ी में बैठूं तो जरूर, लेकिन अमृतसर में बैठता हूं, हरिद्वार में उतरना पड़ेगा न? वह आदमी यह दलील दे रहा है कि जब उतरना पड़ेगा, तब फिर गाड़ी में बैठे ही क्यों? जब उतरना है तो उतरे ही रहें...।

मित्रों ने जबरदस्ती धक्का दिया और कहा, 'यह तर्क समझाने का समय नहीं है। अंदर बैठ जाओ, फिर तुम्हें समझाएंगे। गाड़ी जाने के करीब है।' जबरदस्ती उस आदमी को भीतर ले गए, लेकिन वह आदमी यही चिल्लाता रहा कि जब उतरना ही है तो बैठने की जरूरत क्या है। फिर हरिद्वार आ गया, फिर सारी गाड़ी में दूसरी आवाज आने लगी कि उतरो, सामान उतारो, नीचे उतरो, जल्दी उतरो, कहीं गाड़ी न छूट जाए। वह मित्र उसको फिर समझा रहे हैं कि नीचे उतरो। वह कहता है कि जब चढ़ ही गए तब उतरना क्या। पहले ही मैंने कहा था चढ़ो मत, अगर उतरना हो। अब जब चढ़ ही गए तब उतरना ही क्या, तब भी वह हरिद्वार नहीं पहुंच पाएगा। दोनों हालत में हरिद्वार चूक जाएगा।

मेरी अपनी दृष्टि यह है कि समृद्धि की एक यात्रा है जीवन में। निश्चित ही एक दिन समृद्धि छोड़ देने जैसी अवस्था आ जाती है, लेकिन वह समृद्धि की यात्रा से ही आती है। और दरिद्र आदमी अगर यह सोचे कि जब महावीर-बुद्ध जैसे लोग छोड़ कर आ रहे हैं तो फिर मुझे परेशान होने की जरूरत क्या है, तो ध्यान रखें, उसकी दरिद्रता अमृतसर की दरिद्रता होगी, हरिद्वार की नहीं।

हिंदुस्तान के इन धनी शिक्षकों के कारण यह बड़ी अजीब पैरोडाक्सिकल बात भी हममें घर कर गई है। धनी शिक्षकों के कारण हिंदुस्तान ने दरिद्रता के दर्शन को विकसित कर लिया है और दरिद्र ने अपनी दरिद्रता स्वीकार कर ली। जब उसने देखा कि राजमहलों को लोग छोड़ कर आ रहे हैं तो फिर ठीक है मुझे, और राजमहलों की तरफ जाने का सवाल क्या है। और जब दरिद्रता एक बार स्वीकृत हो जाती है तो संपत्ति के उत्पादन का प्रश्न ही समाप्त हो जाता है। यह देश इसीलिए गरीब है।

काउंट केसरलिंग हिंदुस्तान से लौटा तो उसने डायरी में एक वाक्य लिखा। मैं पढ़ रहा था तो बहुत हैरान हुआ। मुझे लगा कि छापेखाने की भूल होनी चाहिए। उसने एक वाक्य लिखा—'मैं हिंदुस्तान गया, वहां से लौटा हूं तो एक अजीब नतीजा ले कर आया हूं, नतीजा यह है कि, इंडिया इज़ ए रिच कंट्री, व्हेयर पुअर पिपुल लिव'—हिंदुस्तान एक धनी देश है जहां गरीब लोग रहते हैं।

मैं बहुत हैरान हुआ कि यह वाक्य कैसा है! अगर धनी देश है तो गरीब लोग कैसे रहते होंगे और गरीब लोग रहते हैं तो धनी देश कैसे है? कोई छापे की भूल है, लेकिन आगे पढ़ने पर मुझे पता चला कि वह मजाक कर रहा है। वह यह कह रहा है कि देश तो बहुत धनी है, लेकिन रहने वाले मूढ़ हैं, वे गरीब बने हुए हैं, देश तो बहुत धन पैदा कर सकता हूं, लेकिन रहने वालों की जीवन-दृष्टि दरिद्र रहने की है, इसलिए वे संपत्ति पैदा नहीं कर पाते।

हिंदुस्तान की दरिद्रता नहीं मिटेगी, जब तक हम संपत्ति के प्रति भी एक स्वस्थ रुख लेने को राजी न हों। हमारा संपत्ति के प्रति अत्यंत रुग्ण रुख है। एक तरफ तो यह है कि हम संपत्ति का विरोध करते हैं और दूसरी तरफ भीतर संपत्ति की लालसा भी करते हैं, क्योंकि दरिद्रता के भीतर यह असंभव है कि आप सच में संतुष्ट हो जाएं। कैसे संतुष्ट हो सकते हैं? जबरदस्ती थोप कर अपने ऊपर संतोष के कपड़े पहन लेंगे, लेकिन संतुष्ट हो कैसे सकते हैं? भीतर असंतोष की आग जलती ही रहेगी, इसलिए ऊपर से कहेंगे, कि कुछ मतलब नहीं है हमें, और भीतर लालसा, ईर्ष्या और लोभ सब काम करते रहेंगे।

मैं संन्यासी के पास यही बंबई में कोई पांच-सात साल पहले मिलने गया। एक मुनि हैं। बहुत उनके शिष्य हैं, बहुत लोग वहां इकट्ठे हो गए, मैं मिलने आया हूं, कुछ बात होगी। उस मुनि ने मुझे एक गीत सुनाया गुजराती में। उसका अर्थ मुझे समझाया। सुनने वाले बैठ कर सिर हिलाने लगे और कहने लगे, वाह! वाह!! में बहुत हैरान हुआ, क्योंकि उस गीत का मतलब यह था कि तुम अपने राजमहल में खुश हो, रहो, हम अपनी धूल में ही आनंद में हैं। तुम स्वर्ण के सिंहासन पर बैठे हो, बैठो, हमें तुम्हारे स्वर्ण के सिंहासन से कोई मतलब नहीं, हम लात मारते हैं स्वर्ण के सिंहासन पर, हम तो अपनी धूल में ही मस्त हैं, हम तो हैं फकीर। इस तरह का भाव था।

पूरा गीत कह कर वे मुझे कहने लगे, 'कैसा लगा?'

मैंने कहा कि मैं बहुत हैरान हुआ। मैं इसलिए हैरान हुआ कि अगर आपको राजमहलों से कोई मतलब नहीं तो उनकी याद क्यों आती है? उनके गीत क्यों लिखते हैं? मैंने सम्राट को कभी ऐसा गीत लिखते नहीं देखा, नहीं सुना कि उसने कहा हो कि हम अपने स्वर्ण-सिंहासन पर ही ठीक हैं, हमें तुम्हारी तुम्हारी धूल से कुछ भी नहीं लेना-देना। तुम रहो मजे में, हम उपेक्षा करते हैं, हमें कोई फिक्र नहीं। सम्राट ऐसा नहीं कहता, लेकिन ये फकीर निरंतर ऐसी बातें कहते हैं कि हमें स्वर्ण-सिंहासन से कोई मतलब नहीं।

मतलब नहीं है तो यह गीत क्या बताते हैं? ये मतलब बताते हैं कि मतलब बहुत गहरा है। स्वर्ण-सिंहासन मन को खींचता है, संतोष से मन को रोका हुआ है। संतोष से जो मन को रोकता है और स्वर्ण-सिंहासन की भीतर लालसा है, वह स्वर्ण-सिंहासन को गाली देना शुरू कर देगा ताकि संतोष करने में सुविधा मिले।

हिंदुस्तान, पूरा का पूरा हिंदुस्तान भौतिकवादी को गाली देता है। 'वह आदमी भौतिकवादी है,' बस, इतना कहते ही किसी की पर्याप्त निंदा हो जाती है। इसलिए नपुंसक क्रोध में हम पश्चिम को मैटीरियलिस्ट कहते नहीं अघाते हैं! लेकिन जितना तुम भौतिकवाद को गाली देते हो, उतना तुम खबर लाते हो कि तुम्हारे प्राणों में भौतिकवाद की आकांक्षा है।

मन के नियम बहुत अजीब हैं।

# देख कबीरा रोया

एक आदमी अगर अपनी स्त्री को छोड़ कर जंगल में भाग जाए और संन्यासी हो जाए और उसका मन स्त्री से मुक्त न हुआ हो तो वह घूम-फिर कर यही कहता रहेगा कि कामिनी-कांचन से सावधान, स्त्री से बचना है, स्त्री नरक का द्वार है। वह किसी और से नहीं कह रहा है, जोर-जोर से अपने से ही कह रहा है। वह भीतर स्त्री खींच रही है, आमंत्रण दे रही है, वह कह रही है आओ। स्त्री भीतर रूप बन रही है, स्त्री भीतर प्राणों को कस रही है, वह उससे बचने के लिए कह रही है। कामिनी-कांचन पाप है, स्त्री नरक का द्वार है, स्त्री से सावधान। दूसरे को समझा रहा है। दूसरे के बहाने वह अपनी ही वाणी को जोर से सुनने की कोशिश कर रहा है, ताकि भीतर हिम्मत बनी रहे कि स्त्री नरक का द्वार है, बचो, सावधान रहो।

जो आदमी वासना से मुक्त हो जाएगा उसे स्त्री नरक का द्वार कैसे दिखाई पड़ेगी? जिस आदमी का मन सेक्स से मुक्त हो गया है, उस आदमी को क्या स्त्री और पुरुष में भेद दिखाई पड़ेगा?

बुद्ध जंगल में बैठे थे एक पहाड़ के पास। कुछ लोग शहर से आए थे एक वेश्या को ले कर पिकनिक के लिए, आमोद-प्रमोद के लिए। वे तो सब नशे में चूर हो गए, वेश्या ने देखा कि वे बेहोश हो गए हैं नशे में, तो वह भाग खड़ी हुई। उसके सारे वस्त्र उन्होंने छीन रखे थे। वह नग्न थी। जब वह भाग गई तो और कुछ होश आया तो वे उसे खोजने जंगल में निकले।

रास्ते पर बुद्ध को बैठे देखा तो उसके पास जा कर कहा कि भंते, यही एक रास्ता है, जरूर यहां से एक स्त्री को आपने भागते देखा होगा। स्त्री नग्न थी, वेश्या थी, आपको पता है वह कहां गई? यहीं से रास्ते बंट जाते हैं। हम उसे खोजने कहां जाएं?

बुद्ध ने कहा, कोई निकला जरूर था, लेकिन वह स्त्री थी या पुरुष, यह पहचानना बहुत मुश्किल है, यह मुझे याद नहीं। क्योंकि जब से मेरे भीतर से वासना उठ गई, तब से मेरे भीतर का पुरुष मर गया, तब से बाहर की स्त्री उस तरह नहीं दिखाई पड़ती, जैसे पहले दिखाई पड़ती थी।

यह बुद्ध-जैसा आदमी स्त्री को नरक का द्वार कैसे कहेगा? नहीं, जो स्त्री को नरक का द्वार कह रहा है, उसके भीतर स्त्री का आकर्षण तेज है। जो संपत्ति को गाली दे रहा है, उसके संपत्ति का आकर्षण तेज है। जो कह रहा है कि सोना मिट्टी है, वह अपने को समझा रहा है कि सोना अभी पूरी तरह सोना है और प्राणों को खींच रहा है।

भारत ने एक तरफ दरिद्रता की बातें सीख लीं और दूसरी तरफ लोभ, ईर्ष्या और धन की वासना तीव्र से तीव्रतर होती चली गई। यह एक अदभुत घटना घट गई। ऊपर से हम दरिद्र हैं। दरिद्रता में संतोष की बात करते हैं, लेकिन हमसे ज्यादा लोभी आदमी जमीन पर खोजना मुश्किल है।

मैं घर में ठहरा था। उस घर के ऊपर कुछ पश्चिम के लोग—दो परिवार रहते थे। उस घर में जब भी मैं ठहरा तो उस घर के लोगों ने मुझसे कहा कि पश्चिम के लोग बड़े भौतिकवादी हैं। सिवाय खाने-पीने के, सिवाय नाच-गाने के इन्हें कुछ भी मालूम नहीं, एकदम भौतिकवादी हैं। जब भी मैं गया, मुझे वे यही कहते थे। रात बारह बजे तक नाचते रहते हैं। बस, खाना और पीना और नाचना—यही जिंदगी है। फिर एक बार उनके घर में ठहरा। ऊपर शांति थी, तो मैंने पूछा कि क्या वे लोग चले गए? घर की गृहिणी ने कहा, हां, वे चले गए। पर अजीब लोग थे, अपने सारे सामान बांट गए। जो नौकरानी बर्तन मलती थी, स्टील के बर्तन थे सब—वह स्त्री कहने लगी—असली स्टील के बर्तन थे। वे सब नौकरानी को ही दे गए। रेडियो था, रेडियोग्राम था, वे सब बांट गए। बड़े अजीब लोग थे।

मैंने उस स्त्री से पूछा कि तू तो निरंतर कहती थी कि ये बड़े भौतिकवादी लोग हैं, नाचने-गाते हैं, खाते-पीते हैं और कुछ भी नहीं करते हैं, बहुत मैटीरियलिस्ट हैं, लेकिन ये सारी चीजें बांट कर चले गए। तू भी इस तरह सारी चीजें बांट सकती है?

उसने कहा, मैं? मैं कैसे बांट सकती हूं, मेरे मन में तो यही लगा रहा कि कुछ हमें भी दे जाएं तो अच्छा है।

मैंने पूछा, वे तुझे कुछ दे गए? उसने कहा, मुझे दे नहीं गए क्योंकि उन्होंने सोचा होगा, इनके पास तो सब है, शायद ये लेने से इनकार कर दें।

तो तेरे पास कोई निशानी नहीं है?

उसने कहा, एक निशानी है, वह एक रस्सी बंधी हुई छोड़ गए थे, वह मैं खोल लाई हूं कपड़े टांगने की रस्सी थी, लेकिन रस्सी प्लास्टिक की है और बहुत अच्छी है, वह भर मैं खोल लाई हूं, वह भर निशानी रह गई है।

यह स्त्री रोज मंदिर जाती है, रोज सुबह उठ कर भक्ताम्बर-स्रोत पढ़ती है, यह बड़ी धार्मिक है, उपवास भी करती है और सोचती है कि मैं भौतिकवादी नहीं हूं और वे लोग जो नाचते थे, और गीत गाते थे, वे इसे भौतिकवादी मालूम पड़ते थे।

वे इसे भौतिकवादी क्यों मालूम पड़ते थे?

इसके भीतर भी नाचने का, गीत गाने का और संपत्ति का मोह है। वह खींचता है कि काश, यह सब उसके पास भी होता, यह सब वह भी करती।

लेकिन नहीं-नहीं, संतोष रखना है। इन बातों में नहीं पड़ना है, ये बातें बहुत बुरी हैं, इसलिए गाली देती है, निंदा करती है, कंडेम करती है, अपने मन को समझा लेती है और पीछे से एक रस्सी भी खोल कर ले आती है। अध्यात्मवादी हैं हम!

एक अमरीकन यात्री की मैं किताब पढ़ रहा था। वह दिल्ली के स्टेशन पर उतरा और एक सरदार ने जा कर उसका हाथ पकड़ लिया है और कहा है कि मैं आपका भविष्य बताऊंगा।

उसने कहा, लेकिन मुझे भविष्य पूछना नहीं है। हम अपना भविष्य खुद बनाते हैं। भविष्य कहीं है यह हम मानते नहीं।

पर सरदार जी ने तो बताना शुरू कर दिया। वह तो हाथ जोर से पकड़े हुए है। अब वह आदमी बेचारा शिष्टाचार में सिर्फ हाथ पकड़ाए हुए है, छोड़ नहीं रहा है। ठीक है, वह कह रहा है कि मुझे पूछना नहीं है, मुझे कुछ जानना नहीं है, लेकिन सरदार जी ने तो बताना शुरू कर दिया है कि यह होगा, यह होगा।

फिर उसने आदमी ने कहा, मुझे जाने दीजिए।

तो सरदार जी ने कहा, मेरी फीस?

मेरे दो रुपये फीस के हो गए।

उस आदमी ने कहा, ठीक है। हालांकि मैं मना कर रहा था और आपने जबरदस्ती बताया है, लेकिन फिर भी आपने इतना श्रम किया है, ये दो रुपये आप ले लें। लेकिन दो रुपये ले कर सरदार जी ने हाथ छोड़ा नहीं है। वह और बताने लगे हैं। उसने कहा, देखिए, अब हाथ छोड़ दीजिए, क्योंकि फिर आपकी फी हो जाएगी। लेकिन सरदार जी बताए चले जा रहे हैं। तो उसने कहा, मुझे जाना है। जबरदस्ती हाथ छुड़ाया तो सरदार जी ने कहा कि दो रुपये मेरी फीस और हो गई। उस आदमी ने कहा, अब मैं दो रुपये नहीं दूंगा। यह तो जबरदस्ती की बात है। तो सरदार जी ने क्या कहा? सरदार जी ने कहा, 'यू मैटीरियलिस्ट'—दो रुपये के लिए मरे जाते हो, भौतिकवादी हो, दो रुपये में जान निकल जाती है!

उस आदमी ने अपने संस्मरण में लिखा है कि मैं तो दंग रह गया। भौतिकवादी कौन था? मैं था भौतिकवादी?

सारी पृथ्वी पर हमसे ज्यादा भौतिकवादी लोग खोजने मुश्किल हैं, क्योंकि दरिद्र आदमी कभी भी भौतिकवाद से ऊपर नहीं उठ सकता है। समृद्ध आदमी ही भौतिकवाद से ऊपर उठ सकता है, क्योंकि समृद्धि को पा कर उसे पता चलता है कि कुछ भी नहीं है समृद्धि में। धन पा कर दिखाई पड़ता है कि धन में कुछ भी नहीं है और जिस दिन धन निस्सार दिखाई पड़ता है, असार दिखाई पड़ता है, उस दिन भौतिकवाद से आदमी ऊपर उठता है।

संपत्ति का एक ही बड़े से बड़ा मूल्य है कि संपत्ति से आदमी मुक्त हो जाता है। धन का एक ही आध्यात्मिक मूल्य है कि धन के उपलब्ध होने से आदमी धन से मुक्त हो सकता है। निर्धन आदमी धन से मुक्त नहीं हो पाता है। धनी आदमी धन से मुक्त हो सकता है। यह देश दरिद्रता तो स्वीकार करने के कारण धनी नहीं हो पाया। धनी नहीं हो पाने के कारण धन से मुक्त नहीं हो पाया; लेकिन हम थोथी बातें अपने ऊपर थोपे चले जाते हैं और बिलकुल ही जीवन और मन के विपरीत काम किए चले जाते हैं। ऊपर से कुछ, और भीतर से कुछ हुए चले जाते हैं। सारा व्यक्तित्व धोखा हो गया है। और मैंने इसलिए कहा कि गांधी की दरिद्रता की शिक्षा फिर खतरनाक है, फिर वह पुरानी शिक्षा का ही फल है। फिर वह पुरानी शिक्षा फिर से पुनरुक्तिकरण है।

नहीं, गांधी बहुत प्यारे आदमी हैं, गांधी बहुत अदभुत आदमी हैं; लेकिन उनके दरिद्रता के दर्शन को अगर भारत ने स्वीकार किया तो भारत कभी समृद्ध नहीं हो सकेगा भारत कभी धार्मिक भी नहीं हो सकता है।

मेरी दृष्टि में धार्मिक होने के लिए समृद्ध होना अत्यंत आवश्यक है। दरिद्र आदमी कैसे धार्मिक हो सकता है? जिसकी रोटी की जरूरतें पूरी नहीं होतीं वह परमात्मा की जरूरत पैदा ही कैसे कर सकता है? परमात्मा मनुष्य की अंतिम जरूरत है, लास्ट नेसेसिटी है। जब जीवन की सारी प्राथमिक जरूरतें पूरी हो जाती हैं, तो अंतिम जरूरत का खयाल आता है और हम इस देश में गरीब आदमी को परमात्मा की शिक्षाएं दिए चले जाते हैं। गरीब आदमी को परमात्मा की शिक्षा देना अन्याय है और गरीब आदमी अगर परमात्मा की बातें सुनने भी आता है और परमात्मा के मंदिर में प्रार्थना भी करने जाता है, तो आप यह मत सोचना कि वह परमात्मा के पास जा रहा है। जब वह परमात्मा के सामने हाथ जोड़ कर खड़ा होता है, तब भी उसके मन में यही प्रार्थना होती है कि कल मुझे रोटी मिल सकेगी न? मेरा बच्चा बीमार है, वह ठीक हो सकेगा न? मेरा काम छूट गया है, मुझे काम मिल सकेगा न? वह परमात्मा के पास भी रोजी-रोटी के लिए ही पहुंचता है, परमात्मा के लिए नहीं पहुंच सकता है। वह परमात्मा के पास जाता है तो बुनियादी कारण उसका भौतिक होता है, आध्यात्मिक नहीं हो सकता है। आध्यात्मिक जीवन की जरूरत, जीवन की सामान्य स्थिति, सुविधा उपलब्ध होने पर ही पैदा हो सकती है।

जब भारत थोड़ा समृद्ध था तो भारत धार्मिक था। इधर दो हजार वर्ष से वह निरंतर दरिद्र और दरिद्र होता चला जाता है। आज वह दरिद्रता के गड्ढे में खड़ा है। वह धार्मिक नहीं हो सकता है। उसके धार्मिक होने का कोई उपाय नहीं है। इस बात की संभावना है कि आने वाले पचास वर्ष में अमेरिका धार्मिक हो सके, रूस धार्मिक हो सके, लेकिन भारत के धार्मिक होने की कोई संभावना नहीं। अमेरिका को धार्मिक होना पड़ेगा, रूस का धार्मिक होना पड़ेगा, क्योंकि जैसे ही जिंदगी की सामान्य जरूरतें पूरी हो जाती हैं, जैसे ही शरीर की जरूरतें पूरी हो जाती हैं, पहली बार आदमी की आंखें उस तरफ उठती हैं जो शरीर के ऊपर है। शरीर की झंझट जैसे ही छूट जाती है, शरीर से आदमी आत्मा की तरफ उन्मुख होता है।

शायद आपने कभी खयाल भी न किया होगा। पैर में एक छोटा सा कांटा गड़ जाए तो सारे प्राण उसी कांटे के आस-पास घूमने लगते हैं। सिर में थोड़ा सा दर्द हो तो आत्मा वगैरह सब भूल जाती है, सिर का दर्द ही रह जाता है। जहां पीड़ा होती है, प्राण वहीं अटक जाते हैं। भूखे पेट के प्राण पेट के आस-पास ही अटके रहते हैं, उसके ऊपर नहीं उठ सकते। लेकिन हम एक बहुत मूढ़तापूर्ण, बहुत एब्सर्ड जीवन-दर्शन को पकड़े हुए बैठे हैं। मैं मानता हूं कि समृद्ध आदमी किसी दिन दरिद्र हो सकता है, स्वेच्छा से, वालंटरी, लेकिन स्वेच्छा से दरिद्रता की बात ही दूसरी है। वह बात वैसी ही है—

मैं एक आश्रम में गया। उस आश्रम में वे उपवास कराते हैं महीने-महीने, दो-दो महीन, तीन-तीन महीने और एक-एक महीने के उपवास करने के पांच-पांच सौ रुपये महीने का खर्च पड़ जाता है। पांच सौ रुपये महीने का खर्च एक महीने उपवास करने का! मैंने कहा, उपवास बड़ा मंहगा है। इससे तो पेट भरना भी सस्ता पड़ता है। फिर वहां जो लोग उपवास करने वाले थे, वे बड़े आनंद से कहते थे कि बीस दिन कर लिए, पच्चीस दिन कर लिए, तीस दिन हो गए, मेरे चालीस दिन हो गए। मैं हैरान हुआ। मैं बिहार भी गया था। वहां अकाल में भूखे मरते हुए लोग थे, किसी को चार दिन से रोटी नहीं मिली थी। उसका चेहरा भी मैंने देखा और चालीस दिन इसने उपवास किया था इसका चेहरा भी मैंने देखा। इन दोनों में जमीन-आसमान का फर्क मालूम पड़ा। वह चार दिन भूखा रहा था, वह कितना दीन-हीन मालूम हो रहा था! यह जिसने चालीस दिन उपवास किया था, एक निराली आध्यात्मिक गरिमा से भरा हुआ था। बड़ी अजीब बात है। फिर क्या हुआ? यह उपवास है, यह उपवास है, वह भूख है। यह उपवास वे लोगे करते हैं जो ज्यादा खा गए हैं। और ज्यादा खा रहे हैं। भूखे आदमी को कभी खाने को नहीं मिला। भूख और उपवास में फर्क है।

महावीर की दरिद्रता में और सड़क पर भीख मांगने वाले की दरिद्रता में भी उतना ही फर्क है। ज्यादा खाने वाले के लिए उपवास भी एक आनंद हो सकता है, भूख से मरने वाले के लिए उपवास कैसे आनंद हो सकता है? क्वालिटेटिव फर्क है, गुणात्मक फर्क है। और हिंदुस्तान पांच हजार वर्ष से इस गलत जीवन-दृष्टिकोण के नीचे जी रहा है कि हमें दरिद्रता में संतोष कर लेना है।

गांधी भी फिर पुनः उसी बात को दोहराते हैं और उसी बात को दोहराने के कारण उन्होंने जो उपकरण बताए हैं चर्खा, तकली, वे उपकरण भारत को दरिद्र रखने के उपकरण सिद्ध होंगे। वे भारत को समृद्ध नहीं बना सकते। समृद्धि पैदा होती है टेक्नालॉजी से, समृद्धि पैदा होती है विज्ञान से, तकनीक से। समृद्धि पैदा होती है यंत्र से।

चर्खा और तकली से समृद्धि कैसे पैदा हो सकती है?

चर्खा और तकली कोई दस हजार वर्ष के पुराने साधन हैं। अगर दुनिया को दस हजार वर्ष पुरानी दरिद्रता में ले जाना है, दुख में ले जाना है तो चर्खा-तकली को प्रतीक बनाओ, अन्यथा चर्खा-तकली से मुक्त होने की जरूरत है।

मैं यह नहीं कहता कि गांव में जिन्हें कुछ भी काम नहीं मिल रहा है, वे चर्खा न कातें। मैं यह भी नहीं कहता कि जिन्हें खादी पहनने का शौक हो वे खादी न पहनें।

मैं कहता हूं यह कि यह भारत के विकास के प्रतीक न बन जाएं, ये हमारे जीवन के देखने के, दृष्टिकोण के सिम्बल्स न हों। गांधी ने उन्हें सिम्बल बना दिया है। हमें ऐसा लगने लगा है कि बड़े तकनीक की कोई जरूरत नहीं है; औद्योगीकरण की, इंडस्ट्रिएलाइजेशन की कोई जरूरत नहीं है। हमें ऐसा लगने लगा है कि एक-एक आदमी अपना साबुन बना ले, अपना कपड़ा बना ले, अपनी खेती में काम कर ले, स्वावलंबी हो जाए—बस इसकी जरूरत है।

ये खतरनाक बातें हैं। अगर आदमी को हमने इस ढांचे पर ले जाने की कोशिश की है तो आदमी की है तो आदमी का जीवन-स्तर पशु के स्तर पर गिर जाने के अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं होगा। आदमी का जो इतना जीवन-स्तर ऊपर उठा है, वह तकनीक का परिणाम है और जिस दिन सारी मनुष्य-जाति का जीवन-स्तर इतना ऊंचा उठ जाएगा जितना जीवन-स्तर बुद्ध और महावीर का ऊंचा रहा होगा, तो मैं आपसे कहता हूं कि पृथ्वी पर करोड़ों बुद्ध और महावीर एक साथ पैदा हो सकते हैं!

यह आकस्मिक नहीं है कि राजघराने से इतने बड़े संन्यासी पैदा हुए। इतने बड़े संन्यासी राजघरानों से ही पैदा हो सकते हैं, क्योंकि राजघराने में ही सपंत्ति की और शरीर की व्यर्थता का पहला अनुभव होता है और आंखें उस तरफ उठती हैं जहां जीवन की और गहरी सच्चाइयां हैं, जहां 'बियांड' और दूर और अतीत और ऊपर के शिखर हैं उन तक आंख तभी उठती है, जब जीवन की पृथ्वी नीचे से शांत, सुविधापूर्ण हो जाती है।

तो मैं मानता हूं कि चर्खा और तकली को अगर हम प्रतीक मान लेते हैं और अपनी आर्थिक जीवन-व्यवस्था का केंद्र बना लेते हैं और अगर हम यह स्वीकार कर लेते हैं कि विकेंद्रीकरण करना है, बड़े उद्योग से बचना है, बड़ी टेक्नोलॉजी और बड़ी साइंस को नहीं आने देना है तो हम बहुत घातक स्थिति में पहुंच जा सकते हैं।

हम दरिद्र हैं हमेशा से, हम और भी दरिद्र हो सकते हैं। सारी दुनिया समृद्ध होती चली जाएगी, उसके किनारे हम एक दरिद्रता का हिस्सा बन जाएंगे।

आज भी हमारी हालत वैसी है जैसे किसी करोड़पति के भवन के सामने कोई भिखमंगा खड़ा हो। आज भी हमारी हालत दुनिया के राष्ट्रों के मुकाबले एक भिखमंगे राष्ट्र की है। यह हालत रोज-रोज बदतर होती चली जाएगी। एक तरफ टेक्नीक का उपयोग मत करना, केंद्रीकरण की भावना को रोकना, तोड़ना, दूसरी तरफ हाथ से चलने वाले साधन जो आदिम हैं उनका उपयोग करना और तीसरी तरफ बच्चों को पैदा करते चले जाना! बीस-पच्चीस वर्ष में यह मुल्क अपने हाथ से अपनी आत्महत्या कर लेगा।

गांधी कहते हैं कि संतति-नियमन के इस पक्ष में भी वे नहीं हैं। वे कहते हैं कि बर्थ-कंट्रोल के पक्ष में भी वे नहीं हैं। वे कहते हैं ब्रह्मचर्य से नियमन होना चाहिए।

ब्रह्मचर्य से कितने लोगों ने कब नियमन किया है? कितने लोग नियमन कर सकते हैं? कितने लोग करेंगे? और हम प्रतीक्षा कब तक करेंगे?

लेकिन गांधी कहते हैं कि नहीं, कृत्रिम उपाय का हमको उपयोग नहीं करना है। बर्थ-कंट्रोल के साधन कृत्रिम हैं, आर्टीफिशयल हैं, उनका उपयोग नहीं करना है। गांधी की ये बातें अवैज्ञानिक हैं।

गांधी भले आदमी हैं, इसका यह मतलब नहीं होता कि गांधी जो भी कहेंगे वह वैज्ञानिक होगा। कई बार बड़े गलत आदमी बड़ी ठीक बातें कहते हैं, कई बार बड़े ठीक आदमी बड़ी गलत बातें कहते हैं और सच तो यह है कि गलत बातें हम सभी स्वीकार करते हैं जब बहुत भले आदमी उनको कहते हैं। चर्खा और खादी की बात किसी और ने कही होती गांधी के अलावा, तो हिंदुस्तान कभी मानने की फिक्र नहीं करता। वह गांधी इतने अदभुत आदमी हैं कि वह कुछ भी कहेंगे तो हमें लगता है कि इतना बड़ा व्यक्ति, इतना महिमावान व्यक्ति, इतना ओजस्वी, वह जो भी कहता है, ठीक कहता होगा।

अगर हम मार्क्स की व्यक्तिगत जिंदगी को देखें तो मार्क्स की व्यक्तिगत जिंदगी में कुछ भी नहीं है—जिसको ऊंचा कहा जा सके। सुबह से सांझ तक सिगरेट पी रहा है, शराब पी रहा है। जिंदगी में कोई ऐसा बड़ा भारी प्रभाव नहीं है। नौकरानी से गलत संबंध है, नाजायज लड़ता पैदा हो गया है, मार्क्स की जिंदगी में कुछ भी नहीं है। छोटी सी बात में क्रोध से भर जाता है। बहुत ईगोइस्ट है, बहुत ईर्ष्यालु है। लेकिन मार्क्स ने समाज के लिए जो विश्लेषण दिया है वह सत्य है। गांधी बहुत अच्छे आदमी हैं, न सिगरेट पीते हैं, न किसी नौकरानी से कोई गलत संबंध है, न कोई नाजायज बच्चा पैदा हुआ है। जीवन एकदम कथा है। जीवन एक शुभ्र कथा है, लेकिन गांधी ने जो विश्लेषण दिया है समाज का वह अवैज्ञानिक है, और गलत है। गांधी जैसे आदमी चाहिए, लेकिन समाज मार्क्स जैसा चाहिए। गांधी का समाज का विश्लेषण अवैज्ञानिक है।

लेकिन गांधीवादी कहते हैं कि मैं इस पर बात ही न करूं। वे कहते हैं, इस पर बात ही मत करिए। इस पर बात न करने का मतलब है कि देश में आग लग रही हो, हम बैठ कर देखते रहें। गांधीवादी मुझे कहते हैं, आप तो धार्मिक आदमी हैं, आप क्यों इन बातों में पड़ते हैं? एक धार्मिक आदमी निकलता है और एक मकान में आग लगी हो और चिल्ला कर कह दे कि मकान में आग लगी है, पानी ले आओ तो उससे आप कहेंगे कि आप तो धार्मिक आदमी हैं, आप इस झंझट में कहां पड़ते हैं। लगने दें आग। आप अपना भजन-कीर्तन करें।

श्री मोरार जी भाई ने मेरे संबंध में बात करते हुए राजकोट में परसों कहा कि पहले तो राजनीतिक और आर्थिक लोग गांधी जी की आलोचना करते थे। अब आध्यात्मिक लोग भी उनकी आलोचना करने लगे! जैसे कि आध्यात्मिक आदमी का गांधी की आलोचना करना अनिवार्यरूपेण कोई अपराध है।

मैं श्री मोरार जी भाई को कहना चाहता हूं, गांधी जी को राजनीतिक और आर्थिक लोग तो समझ ही नहीं सकते, आलोचना क्या करेंगे। गांधी को तो आध्यात्मिक लोग ही समझ सकते हैं और विचार कर सकते हैं, क्योंकि गांधी मूलतः राजनीतिक नहीं है, न आर्थिक विचारक हैं। गांधी मूलतः एक नैतिक संत हैं। गांधी के आसपास जो राजनीतिज्ञ इकट्ठे हो गए हैं, उन्होंने ही गांधी को बर्बाद किया है। और गांधी के पास जो राजनीति का जाल खड़ा हो गया है, उस जाल न ही गांधी की प्रतिमा को वह जितनी सुंदर हो सकती थी, जितनी पवित्र हो सकती थी, उसकी पवित्रता और सुंदरता में भी कमी की।

गांधी मूलतः एक नैतिक व्यक्ति हैं। राजनीति से उनका कोई बुनियादी संबंध नहीं है। राजनीति एक आपद-धर्म थी, एक मजबूरी थी। मुल्क में एक आग थी, गुलामी थी। उसे दूर करने को उन्हें कूद पड़ना पड़ा। लेकिन मूलतः वे सत्य की खोज में जाने वाले एक नैतिक साधक हैं और उन पर आध्यात्मिक लोग विचार न करें, ऐसा अगर श्री मोरार जी भाई सोचते हों तो बहुत गलत सोचते हैं।

गांधी पर हिंदुस्तान के आध्यात्मिक चिंतकों को बार-बार विचार करना पड़ेगा, क्योंकि गांधी ने आध्यात्मिक जीवन और सामान्य जीवन के बीच एक सेतु निर्मित करने का प्रयास किया है।

लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि गांधी नैतिक व्यक्ति हैं, इसलिए जो भी कहेंगे वह सत्य होगा। हमारी पुरानी धारणा यह है, हम समझते हैं कि महावीर को चूंकि आत्मज्ञान मिला, परमात्मा का अनुभव हुआ, इसलिए महावीर जो भी कहेंगे वह सच होगा, यह गलत बात है। महावीर का सब कहा हुआ सच नहीं हो सकता। बुद्ध का सब कहा हुआ सच नहीं हो सकता। गांधी का सब कहा हुआ भी सच नहीं हो सकता, बल्कि यह भी हो सकता है कि गांधी से बहुत कम हैसियत का कोई विचारक किसी दिशा में तो बात कहे, चाहे उसके पास व्यक्तित्व हो चाहे न हो, वह भी सच हो सकता है। यह मैंने कहा कि गांधी के मुकाबले कोई व्यक्तित्व नहीं है मार्क्स का। लेकिन मार्क्स का समाज का जो विश्लेषण है वह गांधी की जो

समाज-रचना की कल्पना है, वह कल्पना अवैज्ञानिक है, आदिम है, प्रिमिटिव है, पिछड़ी हुई है, और उसके आधार पर चल कर इस देश के सौभाग्य का उदय नहीं हो सकता है।

मैं मानता हूं कि यह आलोचना और विचार किया जाना जरूरी है। नहीं, मैं यह नहीं कहता हूं कि मैं जो कहता हूं वह सही होना ही चाहिए। यह मैं कभी भी नहीं कहता हूं। यह मैं नहीं कहता हूं कि मैंने जो कहा वह सत्य है। वह मैं कभी नहीं कहता हूं। यह भी मैं नहीं कहता कि मेरी बात आपको मान लेनी चाहिए। मैं इतना ही कहता हूं कि मैं जो कहता हूं यह विचारणीय है, उस पर विचार किया जाना जरूरी है। हो सकता है मेरी बातें गलत हों। तब विचार कर उनको फेंक देना चाहिए। हो सकता है उसमें से कोई बात आपके विवेक को सच मालूम पड़े, तब वह मेरी नहीं रह जाती। वह आपकी अपनी हो जाती है। लेकिन जो पंथवादी होते हैं वे कहते हैं वे कहते हैं विचार ही नहीं करना है, वे विचार की हत्या करना चाहते हैं।

मैं गुजरात गया तो वहां मुझे लोगों ने कहा कि श्री इंदुलाल याज्ञिक ने कहा है, मेरा बहिष्कार करेंगे गुजरात में। नहीं आने देंगे। मैंने कहा, अगर गुजरात पागल होता तो श्री इंदुलाल जी की बात मानेगा। गुजरात पागल नहीं है। आह! कैसा मजा है! वे बहिष्कार करेंगे मेरा! अगर मैं गांधी के ऊपर कुछ विचार करूंगा तो मेरा बहिष्कार किया जाएगा। तो गांधी की आत्मा कहीं भी होगी तो श्री इंदुलाल जी को देख कर रो रही होगी कि ये मेरे गांधीवादी हैं! इन्हीं लोगों के लिए मैंने लड़ाइयां लड़ी हैं, इन्हीं के लिए जीवन कुर्बान किया है, इन्हीं के लिए बर्बाद हुआ।

गांधीवादी को अगर थोड़ी भी समझ हो तो मुझे तो उसे उसे गांव-गांव बुला कर ले जाना चाहिए कि मैं गांधी के बाबत बात करूं और गांधी के बाबत विचार पैदा करूं।

लेकिन वह कहता है कि नहीं किसी को मेरी खबर नहीं पहुंचनी चाहिए। मेरी सभा नहीं होनी चाहिए। राजकोट में जितने मैदान गांधीवादियों के हाथ में थे उन्होंने कहा कि नहीं! यहां हम सभी नहीं होने देंगे। स्कूल उनके हाथ में है। सभा नहीं होने देंगे। उनके हाथ में तो सभी कुछ है। लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है? इससे क्या सभा होगी? लेकिन इस भांति रोक कर वे क्या बताते हैं? वे बताते हैं कि कितना समझे गांधी की अहिंसा को, कितना समझे गांधी की नैतिकता को, कितना समझे गांधी के विचार को, यही समझे?

दिल्ली में बोला। दूसरे दिन ही मुझे एक पत्र आया। किसी गांधीवादी ने पत्र लिखा और मुझे लिखा कि महाशय आपको फौरन सेंट्रल जेल भेज दिया जाना चाहिए। मैंने आंख बंद करके गांधी को धन्यवाद दिया और कहा कि मेरी उम्र कम थी, इसलिए आपके सत्संग को मौका नहीं मिला, नहीं तो आपके सत्संग में जेल जाना ही पड़ता। लेकिन आश्चर्य, आप मर गए। फिर भी प्रभाव आपका काफी है। जरा आपने दोस्ती दिखाई, आपकी बात की कि जेल जाने की बात होने लगी। गांधी अगर जिंदा होते तो इस बात के सौ में से सौ मौके हैं कि गांधीवादियों के जेल में उनको सड़ना पड़ता। ये गांधीवादी उनको जेल में जरूर भेजते।

गांधी बुनियादी रूप से एक विद्रोही थे। वह मुल्क को नरक में ले जाते अपने शिष्यों को नहीं देख सकते थे। वे यह नहीं सोचते कि ये शिष्य मेरे हैं, इसलिए इनसे बगावत कैसे करूं। बगावत की कहानी शुरू गई थी। गांधी के हाथ से जैसे ही सत्ता उनके अनुयायियों को मिल गई, वैसे ही गांधी को लगने लगा कि मैं खोटा सिक्का हो गया हूं। मेरा कोई चलन नहीं रहा। मेरी कोई सुनता नहीं। गांधी के शिष्यों को भी लगता था कि इस बुड्ढे से अब छुटकारा हो जाए तो अच्छा है। क्योंकि यह झंझटें खड़ी करेगा और गोडसे ने मालूम होता है गांधी को इन्हीं की प्रार्थनाएं सुन कर गोली मार दी। गोडसे ने गांधीवादियों का ही जैसे काम कर दिया।

गांधीवादी से ज्यादा गांधी का शत्रु और कोई नहीं है। वाद में बांधते ही गांधी की मृत्यु है।

मैं गांधी को वाद से मुक्त रखना चाहता हूं, ताकि वे सदा जीवंत रहें। वाद की कब्र में उन्हें कैद नहीं करना है। निरंतर निष्पक्ष विचार से ही यह हो सकता है। विचार इसलिए सतेज रखना है। यही मेरा निवेदन है।

देख कबीरा रोया

दूसरा प्रवचन

एक और असहमति

## देख कबीरा रोया

मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूं और न ही मैंने अपनी किसी पिछले जन्म में ऐसे कोई अपराध किए हैं कि मुझे राजनीतिज्ञ होना पड़े। इसलिए राजनीतिज्ञ मुझसे परेशान ने हों और न ही चिंतित हों। उन्हें भयभीत होने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। मैं उनका प्रतिद्वंद्वी नहीं हूं, इसलिए अकारण मुझ पर रोष भी प्रकट न करें। लेकिन एक बात जरूर कह देना चाहता हूं। हजारों वर्ष तक, भारत ने नैतिक व्यक्ति ने जीवन के प्रति उपेक्षा का भाव ग्रहण किया था।

गांधी ने भारत की नैतिक परंपरा में उस उपेक्षा के भाव को आमूल तोड़ दिया है। गांधी के बाद भारत का नैतिक या धार्मिक व्यक्ति जीवन के और उसके पहलुओं के प्रति उपेक्षा नहीं कर सकता है। गांधी के पहले तो यह कल्पना ठीक थी कि कोई धार्मिक व्यक्ति जीवन की समस्या पर चाहे वह राजनीति हो, चाहे वह अर्थ हो, चाहे परिवार हो, चाहे सेक्स हो—इन सारी चीजों पर कोई स्पष्ट दृष्टिकोण न रखे। धार्मिक आदमी का काम था सदा से जीवन जीना सिखाना नहीं, जीवन से मुक्त होने का रास्ता बताना। धार्मिक आदमी का स्पष्ट कार्य था लोगों को मुक्ति की दिशा में गतिमान करना। लोग किस भांति आवागमन से मुक्त हो सकें, यही धार्मिक दृष्टि की उपदेशना थी। इस उपदेश का घातक परिणाम भारत को झेलना पड़ा।

मोक्ष है, इस जीवन के बाद और जीवन भी है और यह जीवन आने वाले जीवनों से जुड़ी हुई अनिवार्य कड़ी है। जो इस जीवन की अपेक्षा करता है, वह आने वाले जीवन के लिए नींव नहीं रखता। वह आने वाले जीवन को भी नष्ट करने का प्रारंभ करता है। इस जीवन के प्रति उपेक्षा नहीं चाहिए। धर्म ने अब तक उपेक्षा की थी, अब धर्म अपेक्षा नहीं कर सकता है, क्योंकि धर्म की उपेक्षा का यह परिणाम हुआ कि सारी पृथ्वी अधार्मिक हो गई। इस सारी पृथ्वी के अधार्मिक लोगों का हाथ नहीं है, इसमें इन धार्मिक लोगों की अपेक्षा है जो जीवन के प्रति पीठ करके खड़े हो गए। अब आने वाले भविष्य में धार्मिक व्यक्ति अगर जीवन के प्रति पीठ करता है, तो उस व्यक्ति को हम पूरे अर्थ में धार्मिक नहीं कह पाएंगे।

गांधी के बाद भारत में एक नया युग प्रारंभ होता है और वह नया युग यह है कि धर्म जीवन के प्रति भी रस लेगा, जीवन के समस्त पहलुओं पर धर्म भी अपना निर्णय देगा। इसके यह अर्थ नहीं है कि धार्मिक व्यक्ति दिल्ली की यात्रा करे, इसका यह अर्थ भी नहीं है कि धार्मिक व्यक्ति सक्रिय राजनीति में खड़ा हो जाए। लेकिन इसका अर्थ यह जरूर है कि धार्मिक व्यक्ति राजनीति के प्रति अपेक्षा ग्रहण नहीं कर सकते, क्योंकि राजनीति पूरे जीवन को प्रभावित करती है।

मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूं लेकिन आंखें रहते देश को रोज अंधकार में जाते हुए देखना भी असंभव है। धार्मिक आदमी की उतनी कठोरता और जड़ता में नहीं जुटा पाता हूं। देश रोज-रोज नीचे उतर रहा है। उसकी सारी नैतिकता खो रही है, उसके जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, जो भी सुंदर है, जो भी सत्य है, वह सभी कलुषित हुआ जा रहा है। इसके पीछे जानन और समझना जरूरी है कि कौन सी घटना काम कर रही है और चूंकि मैंने कहा कि गांधी के बाद नया युग प्रारंभ होता है, इसलिए गांधी से ही विचार करना जरूरी है।

गांधी एक धार्मिक व्यक्ति थे लेकिन गांधी को आस-पास जो लोग इकट्ठे हुए थे वे धार्मिक नहीं थे और इससे हिंदुस्तान के भाग्य के लिए एक खतरा पैदा हो गया। गांधी राजनीतिज्ञ नहीं थे। गांधी के लिए राजनीति आपद धर्म थी, तत्काल आवश्यकता थी। गांधी का मूल व्यक्तित्व नैतिक था। विवशता थी कि वे राजनीति में खड़े थे, लेकिन उस राजनीति में भी उनके प्राणों को वह राजनीति कहीं स्पर्श नहीं कर सकती थी। उससे वैसे ही दूर थे जैसा कमल पानी से दूर होता है।

लेकिन उनके आस-पास जो लोग इकट्ठे थे, वे राजनीतिज्ञ थे, वे नैतिक लोग नहीं थे। राजनीति उनका प्राण था। गांधी के साथ रहने की वजह से धर्म और नीति उनका आपद-धर्म बन गई थी। नैतिकता उनकी लिए मजबूरी थी। गांधी के साथ चलना था तो नैतिकता की विवशता उन्हें उठानी पड़ी। गांधी के लिए राजनीति बाहर-बाहर थी। अंतर में नीति थी। उनके अनुयायियों के लिए राजनीति भीतर थी। नीति बाहर-बाहर थी।

फिर जैसे ही सत्ता आई, एक क्रांतिकारी उलट-फेर हो गया। सत्ता आते ही गांधी काजो आपद-धर्म था—राजनीति—वह विलीन हो गया। गांधी शुद्ध नैतिक व्यक्ति रह गए और उनके अनुयायियों का जो आपद धर्म था—नीति—वह विलीन हो गई, वे शुद्ध राजनीतिज्ञ हो गए। सत्ता के आते ही गांधी शुद्ध नैतिक व्यक्ति रह गए और

उनके अनुयायी शुद्ध राजनीतिक व्यक्ति हो गए और उन दोनों के बीच जमीन-आसमान का अंतर हो गया। एक इतनी बड़ी खाई हो गई जो आजादी के पहले कभी भी नहीं थी। आजादी के पहले गांधी और गांधी के अनुयायी के बीच दूरी बहुत कम थी। झूठी ही सही, लेकिन अनुयायी के आस-पास नैतिकता की एक पर्त थी और झूठी ही सही, गांधी के आस-पास राजनीति का एक आवरण था। इस कारण बीच में एक सेतु था, एक संबंध था। सत्ता आने पर यह सेतु टूट गया और इस सेतु का टूट जाना गांधी को भी दिखाई पड़ गया। और गांधी ने कहा, अब कांग्रेस की कोई भी जरूरत नहीं। उसे लोक सेवक दल में परिवर्तित हो जाना चाहिए। क्योंकि गांधी की पैनी आंखों से यह दिखाई पड़ना कठिन नहीं हुआ कि अब यह जो राजनीतिक संस्था खड़ी रह जाएगी, तो यह राष्ट्र को नरक की यात्रा करा देगी।

बीस साल में उसने नरक की यात्रा करा दी है। गांधी, जिसकी आवाज हम चालीस वर्षों से सुनते थे, अचानक सत्ता रूपांतरित हो जाने पर, सत्ता हस्तांतरित हो जाने पर अनुभव करने लगे कि मेरी आवाज नहीं सुनता है। मैं एक खोटा सिक्का हो गया हूं। मेरा अब चलन नहीं रहा। गांधी ने यह कहा कि पहले मैं एक सौ पच्चीस वर्ष जीना चाहता था, लेकिन अब मेरी इच्छा वह भी नहीं रह गई। यह थोड़ा विचारणीय है।

गांधीवादी के ऊपर इससे बड़ा और आरोप नहीं हो सकता, और कोई बड़ा अपराध नहीं हो सकता है।

गोडसे के ऊपर गांधी के मरने का अपराध छोटा है, इस अपराध के मुकाबले। गांधी जिनके साथ लड़े और जिनके लिए लड़े, जीत हो जाने पर गांधी को यह कहना पड़े कि मैं खोटा सिक्का हो गया हूं, मेरी अब कोई सुनता नहीं, अब मुझे ज्यादा जीने की इच्छा नहीं होती—क्या यह गोडसे से भी बड़ी हत्या नहीं है? गोडसे ने जो गोली मारी वह जो परमात्मा की इच्छा के बिना गोडसे नहीं मार सकता था। और शायद गांधी को इससे सुंदर मृत्यु मिल भी नहीं सकती थी। लेकिन गांधी के पीछे चलने वाले लोगों ने गांधी को जिस बुरी तरह से निराश और हताश किया, वह अति आश्चर्यजनक है। और वे ही सारे लोग गांधी के मर जाने के बाद बीस वर्षों से गांधी का जय-जय गान और गांधी का गुणगान कर रहे हैं। वे ही कहते हैं कि गांधी पर विचार नहीं करना है, सिर्फ प्रशंसा करनी है।

वे ऐसा क्यों कहते हैं?

वे भलीभांति जानते हैं कि गांधी की आलोचना शीघ्र ही गांधीवादियों की आलोचना बन जाएगी। इसलिए गांधी की आलोचना मत करो, ताकि पीछे छिपे हुए गांधीवादी की आलोचना संभव न हो सके। गांधी की आड़ में एक खेल चल रहा है। इस खेल को गांधी की आलोचना और विचार के बिना नहीं तोड़ा जा सकता और इसलिए गांधीवादी एकदम भयभीत हो उठा। मैंने थोड़ी सी बातें कहीं और महीन भर से मैं इधर लौटा हूं। मुझे पता चला है कि महीने भर से सिवाय इसके कोई और बात नहीं है पत्रों में, चर्चाओं में, घर में, गांवों में। एक ही बात है।

इतनी आतुरता से उसने उत्सुकता क्यों ली है?

वह इतनी तीव्रता से मेरे ऊपर क्यों टूट पड़ा?

उसका कारण स्पष्ट है। गांधी की आलोचना अंततः गांधीवादी की आलोचना बन जाएगी। और गांधी तो आलोचना के बाद और निखर कर निकल आएंगे, जैसे सोना आग से निकल आता है। लेकिन गांधीवादी के प्राण निकल जाने वाले हैं। वह नहीं बच सकता है। उसके प्राण को खतरा है, गांधी को कोई खतरा नहीं है।

गांधी को क्या खतरा हो सकता है?

गांधी जैसे सच्चे आदमी को खतरे का कोई सवाल नहीं। आलोचना से खतरा सदा झूठे आदमियों को होता है और उन झूठे आदमियों की कतार गांधी के नाम पर खड़ी हो गई है। हमेशा जहां सत्ता होती है, जहां पद होता है वहां बेईमानी और चोरों की कतार इकट्ठी हो जाती है। यह हो ही जाएगी।

गांधी के साथ जो लोग थे आजादी की लड़ाई में, वह धीरे-धीरे बिखर कर अलग होते चले गए। नई शकलें पीछे से आनी शुरू हो गइ। ये जो नये लोग आए थे उन नये लोगों को सत्ता से प्रेम था। वे सत्ता के लिए आए थे और देश कहां जा रहा है और कहां जाएगा। उनको एक ही बात की चिंता है कि उनकी सत्ता, उनका पद, उनका सम्मान, उनकी

शक्ति किस तरह बनी रहे। वे इसी विचार में चिंतित, लीन, और परेशान हैं। सारे देश का क्या हो रहा है इससे कोई मतलब नहीं है, बड़ा सवाल अपने-अपने पद को बचा रखने का है।

गांधी ने कभी कल्पना भी नहीं की होगी कि जिस सेना को उन्होंने खड़ा किया था वह इस तरह की धोखेबाज साबित हो सकती है। लेकिन वह धोखेबाज साबित हो गई।

और उसमें एक भूल गांधी की भी थी और वह भूल समझ लेना जरूरी है, अन्यथा हम उस भूल को आगे भी दोहरा सकते हैं। वह भूल यह थी कि गांधी न कभी इस बात की चिंता न की कि ये जो लोग हमारे आस-पास इकट्ठे हैं, इनके जीवन में कोई धार्मिक किरण उतरी है? इनके जीवन में कोई परमात्मा का स्पर्श है? इनके जीवन में सत्य की भी कोई गहरी आकांक्षा पैदा हो रही है? इनके जीवन में कोई ध्यान है, कोई समाधि है? इनके जीवन में आत्मा से जुड़ने का कोई मार्ग, कोई द्वार खुल गया है? नहीं, इसकी उन्होंने चिंता नहीं की। वे केवल सत्य और अहिंसा की वैचारिक बातें करते रहे। उनके आस-पास का आदमी सत्य और अहिंसा को विचारपूर्वक स्वीकार करता रहा, लेकिन जो विचारपूर्वक स्वीकार होता है, वह जरूरी रूप से आत्मा में प्रविष्ट नहीं हो जाता है। विचार बाहर ही रह जाते हैं, भीतर नहीं आते। भीतर तो निर्विचार जाता है। विचार भीतर नहीं जाता। विचार तो बाहर रह जाता है। गांधी समझाने की कोशिश करते रहे सत्य अच्छा है, अहिंसा अच्छी है, अपरिग्रह अच्छा है। वह सब समझाते रहे। जो उन्हें अच्छा दिखाई पड़ता था, उन्होंने लोगों को समझाया और जिन्होंने समझा उन्होंने सुना। ठीक समझ में आया और उन्होंने थोड़ा-बहुत उस तरह का आचरण करने की प्रयास भी किए; लेकिन ध्यान रहे एक आचरण आत्मा से पैदा होता है, एक आचरण बाहर से थोपा जाता है।

जो आचरण हम ऊपर से थोपते हैं, वह आरोपित जो होता है। वैसा व्यक्तित्व, अभिनय जो होता है, वह ऊपर से थोपा हुआ होता है। वह प्राणों तक गहरा तो नहीं होता, कपड़ों की तरह बाहर होता है। यह तभी तक हमारे साथ रह सकता है, जब तक इसको टूटने का प्रतिकूल अवसर न मिल जाए। और जैसे ही प्रतिकूल अवसर मिलेगा, यह कचरा बह जाएगा, ये कपड़े बह जाएंगे और भीतर का नंगा आदमी साफ हो जाएगा।

नैतिक आदमी, जो धार्मिक नहीं है सिर्फ नैतिक है, उसके हाथ में सत्ता जाना हमेशा खतरनाक है। सत्ता में जाते ही नीति बह जाएगी और अनैतिक आदमी प्रकट हो जाएगा। लेकिन गांधी स्वयं भी नैतिक व्यक्ति ही थे। वे निरंतर धार्मिक होने के प्रयास में रत थे। लेकिन वह हो नहीं पाया।

उनका प्रयास अथक था। लेकिन धार्मिक होना मात्र प्रयास की बात नहीं है। वह तो दर्शन, अनुभूति और समाधि का परिणाम है।

अंततः तो वह प्रज्ञा का विस्फोट है, आचरण का अभ्यास नहीं।

लेकिन गांधी जिनसे प्रभावित थे—रस्किन, थोरो, टालस्टाय या रामचंद्र—वे सभी आचरणवादी थे। शायद जीवन के अंतिम काल में गांधी के तांत्रिक प्रयोगों से ऐसा लगता है कि जीवन भर की दमनवादी नैतिकता की व्यर्थता का बोध उन्हें भी हो गया था। लेकिन तक तक बहुत देर हो गई थी और फिर अपनी ही नैतिकता के जाल से ऊपर उठना आसान नहीं है। फिर भी गांधी की नैतिकता में एक सच्चाई थी। वह उनकी स्वेच्छा से की गई यात्रा थी। किंतु उनके शिष्यों के संबंध में तो यह भी नहीं कहा जा सकता है।

अनुयायी तो सदा अंधे होते हैं।

असल में जो अंधा नहीं होना चाहता है, वह अनुयायी भी नहीं होता है। अनुयायियों ने तो सिर्फ अनुकरण ही किया था। उन्होंने तो बस उधार वस्त्र ही पहन लिए थे। गांधी की आचरणवादिता का भी मैं समर्थक नहीं हूं।

मैं तो सदा अंतस की क्रांति से उत्पन्न सहज आचार का ही समर्थक हूं। असहज और अभ्यासजन्य का मैं विरोधी हूं। क्योंकि वह परमात्मा तक नहीं, बस एक पवित्र अहंकार तक ही ले जा सकता है। लेकिन फिर भी गांधी का आचरण स्वेच्छा से तो था ही। वह गलत था फिर भी किसी और के द्वारा थोपा हुआ नहीं था। पर उनके अनुयायियों की स्थिति तो और भी बुरी थी। और अंततः देश उनके ही हाथ में पड़ गया। उनकी अहिंसा दमन थी, उनका सत्य दमन था। और

इसलिए सत्ता ने सब बहा दिया। अहिंसा सहज हो तो उसे पालन करने की कोई जरूरत ही न हो। पालन हमें उसे ही करना पड़ता है जिसके विपरीत हमारे भीतर मौजूद होता है।

जिस आदमी को ब्रह्मचर्य पालन करना पड़ता है, उसके भीतर कामवासना मौजूद होती है, अन्यथा पालन किस चीज का करेंगे?

जिस आदमी को सत्य का पालन नहीं करना पड़ता है, उसके भीतर झूठ की लहर उठती रहती है।

संयमी आदमी जिसे हम कहते हैं, नैतिक आदमी, वह ऊपर कुछ होता है, भीतर ठीक उलटा होता है। और अगर प्रतिकूल स्थिति आ जाए तो जो भीतर है वही सच्चा साबित होगा। जो बाहर है वह सच्चा साबित होने वाला नहीं है। बाहर बहुत कमजोर चीजें हैं, भीतर असली प्राण है।

धार्मिक मनुष्य भीतर से रूपांतरित होता है, नैतिक मनुष्य बाहर से।

इसलिए नैतिक मनुष्य के हाथ में सत्ता पहुंच जाना हमेशा खतरनाक है।

गांधी और गांधीवादी नैतिक हैं। और इस रहस्य को नहीं समझ पाने के कारण देश अनिवार्यरूपेण एक ऐसी त्रुटि में पड़ गया, जिससे छुटकारा होने में बहुत समय लग सकता है।

इस देश को, इस देश के प्राणों को आगे विकसित करने के लिए नीति और धर्म का बुनियादी फासला हमें समझ लेना चाहिए, अन्यथा कल हम जिसे फिर शक्ति देंगे, फिर सत्ता देंगे, फिर हम नैतिक आदमियों को सत्ता दे सकते हैं। सत्ता में पहुंचने से हर तरह का नैतिक आदमी चाहे वह किसी पार्टी को हो, इसी तरह का सिद्ध होगा जिस तरह गांधी का आदमी सिद्ध हुआ। इसमें अंतर नहीं पड़ेगा। चाहे वह समाजवादी हो, चाहे वह साम्यवादी हो। अगर उसका सारा आचरण ऊपर से थोपा हुआ है और उसके प्राणों से कोई सच्चाई नहीं उठी है, तो वह सत्ता में पहुंच कर एकदम रूपांतरित हो जाएगा। महल के बाहर यह आदमी बहुत सेवक मालूम पड़ता था, महल के भीतर जा कर वह शासक हो जाएगा। महल के बाहर वह कहता था, मैं विनम्र हूं, आपके चरणों का दास हूं। महल के भीतर पहुंच कर वह आपको पहचान नहीं सकेगा कि आप कौन हैं और भीतर कैसे आ गए हैं। तो यह होगा।

अगर भारत को सच में ही सत्य का, समता का, स्वतंत्रता का एक समाज और एक देश निर्मित करना है तो हमें यह जान लेना जरूरी है कि भारत में जिनके हाथ में सत्ता जानी हो उन लोगों के आमूल व्यक्तित्व के रूपांतरण की दिशा में कुछ काम होना जरूरी है।

गांधी वह काम कर सकते थे। शायद गांधी को खयाल नहीं आ सका। उन्होंने केवल नैतिक शिक्षा दी। साथ में अगर उन्होंने योग की शिक्षा की भी चिंता की होती, समाधि और ध्यान की भी चिंता की होती, अगर उन्होंने सिर्फ रामधुन न करवाई होती, साथ में समाधि और ध्यान के भी गहरे प्रयोग चालीस वर्ष किए होते, तो इस भारत का भाग्य एक स्वर्णभाग्य बन सकता था। लेकिन वह नहीं हो सका और आज भी वह नहीं हो रहा है।

मैं देख रहा हूं कि इस देश को ऐसे व्यक्तियों की जरूरत है, एक ऐसे बड़े आंदोलन की जरूरत है, जो आंदोलनों ध्यान और समाधि के मार्ग से सत्ता के द्वार तक पहुंचना हो। तो हम इस देश को सुंदर बना सकेंगे, नहीं तो नहीं बना सकेंगे।

भारत की कल्पना बहुत पुरानी है। बहुत बार यूनान में भी प्लेटो ने यह कल्पना की थी कि कब ऐसा समय होगा कि दार्शनिक राज्य कर सकेंगे। गांधी के साथ आशा बंधी थी कि शायद दुनिया में पहली बार दार्शनिक का राज्य भारत में आ जाएगा। लेकिन गांधी के पीछे आने वाले लोगों ने सारी आशा पर पानी फेर दिया। नहीं, दार्शनिक का राज्य नहीं बन सका। न बनने का कारण यह है कि हम दार्शनिक ही बनाने में समर्थ न हो पाए—ऐसे लोग जिनके पास अंतर्दृष्टि हो।

अब फिर सत्ता की होड़ चल रही है और सत्ता के बाजार में जितने लोग हैं, उनके पास, किसी के पास कोई अंतर्दृष्टि नहीं है। उनके पास कोई प्रभु की तरह जाने वाला मार्ग नहीं है। उनके पास प्रकाश की कोई भीतरी किरण नहीं है। बस वह सोच-विचार और सत्ता की होड़ में लगे हैं। और तब आप हैरान हो जाएंगे यह बात जान कर कि आप एक को बदलेंगे दूसरे से और आप बदल भी नहीं पाएंगे और दूसरा भी पहले जैसा सिद्ध होगा, तीसरा भी पहले जैसा सिद्ध होगा।

## देख कबीरा रोया

मैं सुनता था, कोई मुझे कहता था कि अमेरिका में कुछ मनोवैज्ञानिकों ने एक अध्ययन किया। उन्होंने अध्ययन किया कि एक पति यदि अपने जीवन में आठ स्त्रियों को तलाक दे देता है या एक पत्नी अपने जीवन में आठ पतियों को तलाक दे कर बदलती है तो हर बार उसे पहले से बेहतर पति या पत्नी मिलती है या नहीं।

और अध्ययन से एक अजीब नतीजे पर पहुंच। वह इस नतीजे पर पहुंचे कि जो पति पहली पत्नी को खोज कर लाना है, दो साल बाद उसे तलाक देता है, दूसरी स्त्री को खोज कर लाता है, महीने दो महीने में पाता है कि उसने फिर पहली स्त्री को वापस खोज ली। पत्नी बदलती है पति को जिंदगी में आठ बार, लेकिन हर बार यह अनुभव होता है कि हर आदमी पुराना जैसा ही पति सिद्ध होता है। थोड़े दिन तक नई रौनक रहती है, फिर पुराना आदमी उसके भीतर से प्रकट हो जाता है। तो मनोवैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुंचे। .

यह प्रश्न व्यक्तियों के बदलने का नहीं है। जब तक एक पत्नी अपने मन को नहीं बदल लेती तो जिस मन से उसने पहले पति को चुना था। उसी मन से वह दूसरे पति को चुनेगी और तब इस बात की संभावना है कि दूसरा पति भी उन्नीस-बीस एक जैसे पति चुन लेगी। पति तो बदल जाएंगे, लेकिन चुनाव करने वाला मन, चुनाव करने वाला मस्तिष्क तो वही है।

अगर भारत के समाज को नई दृष्टि और नया मार्ग देना हो, तो हिंदुस्तान में जो लोग सत्ताधिकारियों को चुनते हैं, उनके मन का बदल जाना जरूरी है, अन्यथा हम रोज पुराने जैसे लोग चुन लेंगे। फिर नये कपड़े होंगे, नई शक्लें होंगी, नया झंडा होगा, नये नारे होंगे, लेकिन फिर वही आदमी चुन लेंगे जैसे हमने पहले चुने थे। और जैसे ही सत्ता में वे लोग जाएंगे, वे फिर पुराने आदमी साबित होंगे। उनमें कोई अंतर नहीं पड़ने वाला है।

गांधी का नैतिक आंदोलन सफल नहीं हो सका। आजादी मिली। स्वतंत्रता उपलब्ध हुई, लेकिन स्वतंत्रता से जो हमने चाहा था, जो सपना देखा था, वह सपना पूरा नहीं हो पाया।

हां, कुछ लोगों का सपना पूरा हुआ। बृहत्तर भारत का सपना पूरा नहीं हुआ। अंग्रेज पूंजीपति के हाथ से सत्ता भारतीय पूंजीपति के हाथ में चली गई। भारतीय पूंजीपति का सपना जरूर पूरा हुआ। लेकिन भारतीय पूंजीपति भारत नहीं है। दूसरे पूंजीपति पछताते होंगे कि जब गांधी जिंदा थे तो हमने भी सेवा क्यों नहीं कर ली।

उनके एक शिष्य पूंजीपति के पास, भारत जब आजाद हुआ तो मैंने सुना, संपत्ति तीस करोड़ थी। बीस साल आजादी के बाद उनके पास संपत्ति तीन सौ तीस करोड़ की है। बीस वर्षों में तीन सौ तीस करोड़? शास्त्रों में लिखा है सत्संग का फल होता है। इससे सिद्ध होता है कि सत्संग का फल होता है।

मुझे पहले शक होता था कि सत्संग से फल होता है कि नहीं। अब शक नहीं होता। तीस करोड़ रुपये से तीन सौ करोड़ बीस वर्षों में! संभवतः दुनिया के इतिहास में किसी एक परिवार ने इतने थोड़े समय में इतना धन संग्रह नहीं किया है। प्रत्येक वर्ष पंद्रह करोड़ रुपये! प्रत्येक महीने सवा करोड़ रुपये! प्रत्येक दिन चार और पांच लाख रुपये! पूरे बीस वर्ष!

लेकिन बृहत्तर भारत गरीब से गरीब होता चला गया। एक तरफ संपत्ति इकट्ठी होती चली गई, दूसरी तरफ दीनता और हीनता बढ़ती चली गई है। हिंदुस्तान के गांव के गरीब से पूछो, वह कहता है कुछ फर्क नहीं पड़ा। इससे तो ब्रिटिश राज्य अच्छा था। कोई नहीं कहना चाहता यह कि गुलामी अच्छी थी, लेकिन जब कोई गरीब कहता है कि इससे गुलामी अच्छी थी तो उसकी पीड़ा हम समझ सकते हैं। गरीब भी स्वतंत्र होना चाहता है। लेकिन स्वतंत्रता उसके लिए कुछ भी नहीं लाई। उसने भी सपने बांधे थे, उसने भी कल्पनाएं की थीं, उसने भी गोली खाई थी, वह भी जेल गया था, लेकिन उसे पता नहीं था कि यह स्वतंत्रता एक तरह के पूंजीपति के हाथ से दूसरी तरह के पूंजीपति के हाथ में हस्तांतरित हो जाएगी।

गांधी को भी यह कल्पना नहीं थी। गांधी भी सोचते थे कि पूंजीपति का हृदय परिवर्तन हो जाएगा। अच्छे आदमी हमेशा अच्छी बातें सोचते हैं, लेकिन सभी अच्छी बातें सही सिद्ध नहीं होतीं। गांधी भले आदमी थे। भले आदमी को कोई बुरा आदमी नहीं दिखाई पड़ता है, लेकिन ध्यान रहे बुरे आदमी को कोई भला आदमी नहीं दिखाई पड़ता है। बुरे आदमी को सब बुरे आदमी दिखाई पड़ते हैं, भले आदमी को सब भले आदमी दिखाई पड़ते हैं। लेकिन इन दोनों की दृष्टियां

अधूरी हैं और त्रुटिपूर्ण हैं। दोनों सब्जेक्टिव दृष्टियां हैं, आब्जेक्टिव नहीं हैं, जो है उसको नहीं देखते। जो हम देख सकते हैं उसको देख सकते हैं। गांधी को खयाल था कि हृदय-परिवर्तन हो जाएगा। और गांधीवादी कहे चले जाते हैं कि हृदय-परिवर्तन हो जाएगा। लेकिन जरा देखें तो, चालीस वर्ष की मेहनत के बाद गांधी एक पूंजीपति का हृदय-परिवर्तन नहीं कर पाए। और अगर खुद गांधी एक पूंजीपति का हृदय-परिवर्तन नहीं कर पाए तो गांधीवादी कितने हजार वर्षों में कर पाएंगे? इसका सोच जरूरी है, इसका विचार जरूरी है। गांधी नहीं कर पाए, गांधी जैसा महिमावान व्यक्ति पूंजीपति का हृदय-परिवर्तन नहीं कर पाया, बल्कि पूंजीपति ने उसकी आड़ से भी फायदा उठाने की कोशिश की है। तो यह गांधीवादी कैसे हृदय-परिवर्तन कर पाएंगे। नहीं, यह हृदय-परिवर्तन की बात के पीछे शोषण का यंत्र चलाए रखने का आयोजन चल रहा है। हृदय-परिवर्तन नहीं होगा। फिर हम चोरों का हृदय-परिवर्तन करने के लिए कोई व्यवस्था नहीं करते। हम नहीं कहते कि पुलिस नहीं रखेंगे चोर के लिए दंड नहीं देंगे। हम चोर का हृदय-परिवर्तन करेंगे। नहीं, चोर के हृदय-परिवर्तन की फिक्र हम नहीं करते। हम कहते हैं कि कोई चोरी करेगा तो दंड पाएगा, लेकिन शोषक के हृदय-परिवर्तन की फिक्र हम करते हैं। हम कहते हैं कि शोषक को दंड नहीं देना है, उसका हृदय-परिवर्तन करना है। और बड़े मजे की बात यह है कि चोर बहुत छोटा चोर है, शोषक बहुत बड़ा चोर है।

मैंने सुना है कि चीन में एक अदभुत विचारक हुआ और एक बार वह राज्य का कानून-मंत्री हो गया। कानून-मंत्री होते ही पहले दिन अदालत में बैठा तो एक चोर का मुकदमा आया। एक आदमी ने चोरी की थी। चोरी पकड़ी गई, सामान पकड़ा गया। उस आदमी ने स्वीकार कर लिया कि मैंने चोरी की है। साहूकार भी खड़ा था और कहता था कि इसे दंड दें, इसने चोरी की है। उस विचारक ने कहा, दंड जरूर दूंगा और उसने फैसला लिखा, उसने कहा कि छह महीने चोर को सजा और छह महीने साहूकार को सजा। साहूकार ने कहा, तुम पागल हो गए हो? दुनिया में कभी साहूकार की सजा हुई है? जिनकी चोरी हुई है उनको सजा दोगे? यह कौन सा कानून है, यह कहां का न्याय है? उस विचारक न कहा, जब तक सिर्फ चोरों को सजा मिलती रहेगी, तक तक दुनिया में चोरी बंद नहीं हो सकती, क्योंकि तुमने गांव की सारी संपत्ति एक कोने में इकट्ठी कर ली है। अब गांव में चोरी नहीं होगी तो क्या होगा। एक आदमी के पास गांव की सारी संपत्ति इकट्ठी हो जाए तो गांव के आदमी कितने दिन तक धर्मात्मा रह सकेंगे! चोरी होगी। चोरी उनकी मजबूरी हो जाएगी। तो मैं तो छह महीने की सजा चोर को दूंगा और छह महीने की सजा तुम्हें भी। क्योंकि चोर पीछे पैदा हुआ है, शोषण पहले है। तब पीछे चोरी है। पूरा हिंदुस्तान चोर होता चला जा रहा है और सारे नेता चिल्लाते हैं कि चोरी नहीं होनी चाहिए, बेईमानी नहीं होनी चाहिए, भ्रष्टाचार नहीं होना चाहिए। भ्रष्टाचार होगा, चोरी होगी, बेईमानी होगी, बढ़ेगी; क्योंकि सबसे चोरी बड़ी चोरी और बेईमानी शोषण की जारी है और देश गरीब होता चला जा रहा है। नहीं, गरीब देश चोरी से नहीं बच सकता, बेईमानी से नहीं बच सकता, भ्रष्टाचार से नहीं बच सकता, रिश्वत से नहीं बच सकता।

जब संपत्ति एक तरफ इकट्ठी होती चली जाती है तो संपत्तिहीन कितने दिन नैतिक हो सकता है और कितने दिन तक धार्मिक हो सकता है? प्राण बचाने को भी उसे अनैतिक होना पड़ता है। और नेता भी भली-भांति जानते हैं कि न चोरी रुकेगी, न बेईमानी रुकेगी। बीस वर्षों में वह रोज बढ़ती चली गई है। बीस वर्ष में हमारे व्यक्तित्व का सारा महत्वपूर्ण हिस्सा नीचे गिरता चला गया है और हमारा नंगापन प्रकट होता चला गया। लेकिन हम कह चले जाते हैं कि नीति की शिक्षा दो स्कूलों में और कालेजों में, धर्म की शिक्षा दो, गीता पढ़ाओ, राम-राम जपाओ। लेकिन सब बेईमानी की बातें हैं। गीता पढ़ाने से, राम-राम जपाने से कोई बंद नहीं होगी, भ्रष्टाचार बंद नहीं होगा, अनीति बंद नहीं होगी। इस देश में अनीति उस दिन बंद होगी, जिस दिन इस देश में शोषण का तंत्र टूटेगा। उसके पहले अनीति बंद नहीं हो सकती है।

लेकिन शोषण के तंत्र को तोड़ने की बात करें तो वह गांधी की दोहाई देते हैं। वे कहते हैं कि गांधी कहते थे, हृदय-परिवर्तन करना होगा। वे कहते हैं कि हम गांधी के प्रतिकूल नहीं जा सकते। गांधी कहते हैं, हृदय-परिवर्तन करना होगा। गांधी भले आदमी थे। वे सोचते थे कि हृदय-परिवर्तन हो जाना चाहिए। वे सोचते थे, जैसा उनका हृदय था वैसा सब का हृदय होगा। वैसा सब का हृदय नहीं है। हृदय-परिवर्तन नहीं होगा। हृदय-परिवर्तन करना पड़ेगा, होगा नहीं। और करना पड़ने का मतलब यह है कि देश के तंत्र को, देश की व्यवस्था को एक निर्णय लेना होगा कि शोषण हमें

समाप्त करना है और किसी भी मूल्य पर समाप्त करना है। जैसे हम चोरी समाप्त करते हैं, बेईमानी को तोड़ने की कोशिश करते हैं, हत्यारे की कोशिश करते हैं रोकने की, उसी तरह हमें शोषण को भी रोकना पड़ेगा। तभी यह बंद होगा।

कल ही मैं किसी से बात कर रहा था तो उन्होंने कहा कि आपके भी बहुत से पूंजीपति मित्र हैं, उनमें से किसी को आपने बदला अब तक? मैंने उनसे कहा कि मैं मानता ही नहीं कि बदला जा सकता है। इसलिए बदलने का सवाल नहीं। फिर मैं यह भी नहीं मानता कि पूंजीपति को बदलना है। पूंजीपति को नहीं बदलना है, पूंजीवाद को बदलना है। पूंजीपति को बदलने से क्या होगा, कुछ भी नहीं हो सकता। बड़ा तंत्र है पूंजीवाद का, पूंजीपति, कसूर भी नहीं है उसका। कोई मजदूर भी शिकार है इस तंत्र का, पूंजीपति भी शिकार है इस तंत्र का। वे दोनों ही इसके शिकार हैं इस बड़े तंत्र के जो पूंजीवाद है। इस बड़े तंत्र के, पूंजीवाद के तंत्र से पूंजीपति भी उतना ही परेशान और पीड़ित हिस्सा है, जितना कि मजदूर और दलित पीड़ित हिस्सा है। एक दलील और पीड़ित है संपत्ति के न होने से; एक पीड़ित और परेशान है संपत्ति के होने से और चारों तरफ निर्धन की कतार जुड़ी होने से। एक आदमी अगर एक गांव में स्वस्थ हो और सारा गांव बीमार हो तो सारा गांव बीमारी से परेशान रहेगा और वह आदमी जो अकेला स्वस्थ रह गया है, स्वास्थ्य से परेशान रहेगा कि अब बीमार न पड़ जाऊं। अब बीमार न पड़ जाऊं। चारों तरफ बीमारी ही बीमारी है और यह बीमार सब मिल कर मुझे बीमार न कर दें। वह स्वास्थ्य का सुख नहीं ले पाएगा, चारों तरफ टी.बी., कैंसर और घाव भरे लोग घूम रहे हों।

एक गांव से सारे लोग सड़क पर सो रहे हों और एक आदमी महल बना ले तो महल में आराम से सो सकेगा? कैसे सो सकेगा? द्वार पर पहरेदार रखना पड़ेगा। पहरेदार के ऊपर पहरेदार रखना पड़ेगा, क्योंकि पहरेदार भी रात को घुस सकता है महल में और छुरा भोंक सकता है। कैसे सो सकेगा आराम से! और इतनी दीनता, दरिद्रता उसके आस-पास फैल जाए तो उसके चित्त पर कोई परिणाम होगा कि नहीं? वह आदमी है या पत्थर? उसके चित्त को शांति कैसे हो सकेगी? मैं बड़े धनपति को जानता हूं। वे भी मेरे पास आते हैं और कहते हैं मन को शांत करने का कोई उपाय बताइए—मन बड़ा अशांत रहता है। मन अशांत नहीं रहेगा तो क्या होगा? जहां हमारे चारों तरफ दुख होगा, इतना दारिद्रय, इतनी दीनता होगी, हम कब तक अपने महल में यह विश्वास रख सकेंगे कि सब ठीक चल रहा है? यह कैसे हो सकेगा और वह नीचे जो बढ़ती हुई दीनता और दरिद्रता है उसकी लहरें, उसकी आहें, उसके रुदन, उसके उपद्रव रोज-रोज महलों से टकराएंगे। रोज महलों की दीवालें घबड़ाएंगी कि कब गिर जाएं, कब गिर जाएं। उनके बचाने में उनके प्राण लग जाते हैं। जिसको हम पूंजीपति कहते हैं वह भी पीड़ित है, वह भी विक्टिम है।

पूंजीपति के दो विक्टिम हैं। एक वे जिनके पास पूंजी नहीं है और एक वे जिनके पास पूंजी है। जिस दिन पूंजीवाद जाएगा उस दिन गरीब गरीबी से मुक्त होगा और अमीरी अमीरी से मुक्त होगा और ये दोनों रोग हैं। इसलिए पूंजीवाद के जाने का मतलब पूंजीपति का अहित नहीं है। पूंजीवाद के जाने पर ही वह जो पूंजीवाद से पीड़ित व्यक्तित्व है वह भी मुक्त हो कर मनुष्य का व्यक्तित्व बन सकेगा। जब तक कोई पूंजीपति है, तब तक मनुष्य नहीं हो पाता। तब तक आदमी नहीं हो पाता। जब तक वह खिल नहीं पाता, तब तक वह सहज नहीं हो पाता, तब तक इतने ज्यादा गलत समाज में इतने गलत ढंग से उसे जीना पड़ता है कि वह इतने टेंशन में, इतने तनाव में, इतनी अशांति में जीता है कि वह कैसे सहज हो सकता है? वह सहज नहीं हो पाता।

मैं कलकत्ते में एक घर में ठहरा हुआ था। उस घर में पति और पत्नी के अतिरिक्त कोई भी नहीं था। बस वे दो ही प्राणी थे। बड़ा था महल। सब थी सुविधाएं। सब कुछ था उनके पास। रात बारह बजे जब मैं थक गया दिन भर के बाद और सोने जाने लगा तो उस घर के गृहपति न कहा, क्या आप अब सो जाएंगे। मैंने कहा, अब बारह बज गए, क्या अब भी मैं जागता रहूं? उन्होंने कहा, ठीक है आप सो जाइए, लेकिन मैं सोचता था कि थोड़ी देर और बातें करते। मैंने कहा, प्रयोजन? 'मुझे रात भर नींद नहीं आती।' क्या हो गया तुम्हें, नींद क्यों नहीं आती? इतनी अच्छी गद्दियां तुम्हारे पास हैं। इन पर तो किसी को नींद नहीं आती है? वे कहने लगे, 'नींद, नींद मुझे बहुत वर्षों से नहीं आती है। बस दिन-रात चिंता ही चिंता। आज इस फैक्टरी में गड़बड़ है। कल उस फैक्टरी में गड़बड़ है। वहां कम्युनिस्ट उपद्रव कर रहे हैं, वहां सोशलिस्ट उपद्रव कर रहे हैं, वहां ऊपर सरकार गड़बड़ किए चली जाती है, यहां नीचे सब गड़बड़ में कैसे नींद आए?'

इसको आप समझ रहे हैं, यह आदमी बहुत सुख में है। यह पूंजीपति बहुत सुख में है तो आप भूल में हैं, बिलकुल भूल में हैं। संपत्ति सुख ला सकती थी, लेकिन पूंजीवाद के कारण संपत्ति भी दुख है। हीनता तो दुख है ही, संपत्ति भी अभी दुख है। संपत्ति जिस दिन वितरित होगी और समाज में जब दीन-हीन, रुग्ण और अपाहिज का वर्ग विलीन होगा और जब मनुष्य मनुष्य की भांति एक समानता के तल पर खड़ा होगा, जब समाज से बेईमानी मिटेगी, चोरी मिटेगी, गुंडागर्दी मिटेगी, नहीं तो नहीं मिट सकती है। यह सारी की सारी समाज-व्यवस्था जो हमें दिखाई पड़ती हैं, यह बाइ-प्रोडक्ट है, शोषण की, एक्सप्लायटेशन की और ऊपर के नेता चिल्लाए चले जाते हैं कि समझाओ बच्चों को। बच्चे कैसे नीति समझेंगे? नहीं समझ सकते, लेकिन वे दलील देते हैं कि गांधी जी कहते थे हृदय-परिवर्तन करना है, इसलिए कोई जोर जबरदस्ती नहीं करनी है। लेकिन तुम हैदराबाद में पुलिस-एक्शन ले सकते हो, तुम रजवाड़ों को मिटाने के लिए जोर जबरदस्ती कर सकते हो। तब तुम्हें खयाल नहीं आया कि राजाओं का हृदय-परिवर्तन करना चाहिए, लेकिन शोषण के मामले में एकदम हृदय-परिवर्तन और अहिंसा की ऊंची-ऊंची बातें याद आने लगती हैं।

इसका मतलब है कुछ जरूर। तुम बोलते जरूर हो, पर वाणी तुम्हारी नहीं है, वाणी शोषक की है जो तुम्हारी पीठ के पीछे खड़ा है और बोल रहा है। यह वाणी तुम्हारी नहीं है गांधीवादियों! यह तुम नहीं बोल रहो हो, तुम्हारी जबान बिकी हुई है, तुम्हारी बुद्धि बिकी हुई है। तुम्हारे पीछे जो खड़ा है वह बोल रहा है और कह रहा है कि अगर वह वाणी नहीं बदली तो अगले इलेक्शन में मुश्किल में पड़ जाओगे। यह धन-धंधा फिर हमने नहीं मिलने वाला है। ये पैसे फिर हमसे नहीं मिलेंगे। तो वाणी सत्ता से जो बोल रही है वह संपदाशाली की वाणी है। सत्ता से बोलने वाले के पास अपनी अब कोई जवान नहीं है। और वह अपनी इस झूठी जबान को गांधीवाद का नाम दे कर सुंदर, सत्य दिखलाना चाहता है। नहीं, चाहे गांधी जी ने कहा हो, चाहे किसी ने भी कहा हो कि हृदय-परिवर्तन से कुछ होगा, वह नहीं हो सकता है। गांधी जी के चालीस साल का अनुभव यह कहता है कि वह नहीं हो सकता है और अब तो गांधी जैसा व्यक्ति भी हमारे पास नहीं है जो हृदय-परिवर्तन के लिए जोर डाल सके। अब कौन बदलेगा हृदय, कैसे बदलेगा?

विनोबा ने इधर कोशिश की थी एक। गांधी के पीछे गांधी से मिलता-जुलता कोई आदमी था, तो वही है। उन्होंने कोशिश की थी। बहुत श्रम किया, लेकिन कोई परिणाम नहीं निकला। जमीन मिली, दान मिला। इस देश में दान तो हजारों वर्षों से मिलता है। दान कोई नई बात नहीं है। दान भी मिला, जमीन भी मिली, गरीब को थोड़ी-बहुत राहत भी मिली होगी; लेकिन शोषण का तंत्र इस तरह थोड़े ही टूटता है? जिस आदमी ने दान दिया एक तरफ जमीन का, वह घर जा कर फिर योजना बना रहा है कि जितनी जमीन हाथ से निकल गई है, जल्दी से कैसे वापस उतनी जमीन कर ली जाए। इससे शोषण-तंत्र थोड़े ही बदलेगा कि एक आदमी ने दान दिया, आठ-दस लाख का और घर जा कर उसने योजना बनाई कि अगले वर्ष दस लाख कैसे वापस कमा लूं! उसका हृदय थोड़े ही बदल गया है। रुपया देने से थोड़े ही यह समाज बदलेगा। यह समाज तो बदलेगा इस तंत्र के बदलने से। इसकी सिस्टम, इसकी व्यवस्था बदलने से।

विनोबा ने दस-पंद्रह साल दौड़-धूप कर बेचारे ने पैदल भाग-भाग कर गांव-गांव अपना जीवन नष्ट किया। कोई परिणाम नहीं हुआ। हां, जमीन मिली, और वह सर्वोदयवादी कहते हैं कि वही परिणाम है। देखो, इतने लाख एकड़ जमीन मिल गई। जमीन के मिलने से कुछ भी होने वाला नहीं है। इस पूंजीवाद के तंत्र को, शोषण के तंत्र को जमीन के बंट जाने से, कुछ थोड़ी सी जमीन गरीब को मिल जाने से कोई फर्क नहीं पड़ता। बल्कि पूंजीपति, पूंजीशाही और गांधीवादी इससे खुश हैं कि विनोबा ने थोड़ी-बहुत जमीन बांटी। थोड़ा-बहुत दान दिलवाया। उससे गरीबी को थोड़ी राहत मिली। राहत मिलने से हिंदुस्तान में आने वाली समाजवादी क्रांति में रुकावट पड़ती है। जितनी राहत मिलती है, उतनी क्रांति में रुकावट पड़ती है। जितना गरीब को ऐसा लगता है कि बहुत अच्छा है, सब ठीक है, किसी तरह चल रहा है, थोड़ी जमीन भी मिल गई है एक दो एकड़, अब कुछ हो जाएगा, उतना ही वह जो सर्वहारा है—वह जिसके पास कुछ भी नहीं है—वह क्रांति करने के लिए तत्पर नहीं हो पाता। विनोबा ने भला काम किया, लेकिन उन्हें पता नहीं कि वे हिंदुस्तान की शोषण की व्यवस्था के हाथ में खेल गए। इसीलिए दिल्ली के सत्ताधीश, करोड़पति, उनके चरणों में जा कर बैठते हैं और नमस्कार करते हैं। वह नमस्कार विनोबा के नहीं, वह नमस्तार क्रांति में पड़ती हुई रुकावट को है।

बीस साल के भूदान-आंदोलन ने भारत की क्रांति में बाधा पहुंचाई है, समय को लंबा किया है। शोषण का तंत्र नहीं टूटा, लेकिन शोषण का तंत्र सहने योग्य बन जाए, उसकी थोड़ी सी कोशिश भर हो पाई है और कुछ भी नहीं हो सका। नहीं, इस तरह के कामों से कुछ भी नहीं हो सकता है। हिंदुस्तान को अपनी पूरी समाज-व्यवस्था अनिवार्यरूपेण बदल लेना जरूरी है। और न हृदय-परिवर्तन के लिए प्रतीक्षा करने की जरूरत है—सिवा सत्ताधिकारी के जिसके पास अपनी वाणी नहीं है। जब तक इस देश का लोकमत, जब तक इस देश की लोकात्मा, जब तक इस देश के पूरे प्राण इस बात को नहीं समझेंगे कि हम सब चाहे गरीब, चाहे अमीर, एक ही शोषण-तंत्र के परेशान और पीड़ित अंग हैं और शोषण के तंत्र को हटा देना है तभी कुछ हो सकेगा। सर्वोदय से समाज नहीं आएगा, लेकिन समाजवाद से सर्वोदय आ सकता है। समाजवाद के बाद ही सर्वोदय आ सकता है, क्योंकि सर्वोदय का अर्थ है सबका उदय, सबका हित। सबका हित तभी हो सकता है जब सबका हित समान हो। अभी गरीब और अमीर का हित समान नहीं है। इसलिए सर्वोदय नहीं हो सकता है। उनके हित प्रतिकूल हैं, विरोधी हैं, शत्रु के हित हैं। उनके हित में समानता नहीं है, इसलिए अभी समान हित का उदय नहीं हो सकता। अभी सर्वमंगल नहीं हो सकता। सर्वोदय से समाजवाद नहीं आएगा। सर्वोदय की जितनी बातें चलेंगी, समाजवाद के आने में उतनी देर होगी। उतना समय जाया होगा। लेकिन समाजवाद आए तो सर्वोदय निश्चित आ जाएगा। सर्वोदय समाजवाद की छाया है। जैसे ही शोषण का तंत्र टूटता है, तब सबका समान हित रह जाता है। तब वर्गीय हित नहीं रह जाते। जब श्रेणीगत हित नहीं रह जाते। तब क्लास इंट्रेस्ट नहीं रह जाता। जब हम समान हो जाते हैं और तब इस देश का उदय हो सकता है। इस देश का श्रम भी तभी जागेगा, उत्साह भी तभी जागेगा। प्राण श्रम करने के लिए, सृजन करने के लिए तभी आतुर होंगे जब प्रत्येक को ऐसा मालूम पड़ेगा कि देश हमारा है। अभी प्रत्येक को ऐसा नहीं मालूम पड़ता।

और यह जान कर आप हैरान होंगे कि जब तक प्रत्येक को यह अनुभव न हो जाए कि देश हमारा है, दीनतम को यह अनुभव न हो जाए कि देश मेरा है—यह उसे कब अनुभव होगा? यह उसे तभी अनुभव होगा कि देश की जो संपदा है—वह मेरी है। देश की संपदा कुछ लोगों की और देश मेरा, यह बात बड़ी गड़बड़ है। यह नहीं हो सकता। संपदा कुछ लोगों की और देश मेरा! देश का मतलब क्या है? देश का मतलब है, देश की संपदा; देश का मतलब है देश का सब कुछ। भूमि, आकाश, और हवा, संपत्ति और मनुष्य की शक्ति और सब कुछ। मेरा है यह देश तभी कह सकता हूं बल से, जब इस देश की सारी संपत्ति में मैं भागीदार हूं, समान हूं। लेकिन जब मैं समान भागीदार नहीं हूं तो यह यह देश मेरा कैसा है। यह दस-पांच लोगों का होगा देश। यह सत्ताधारियों का होगा देश। यह दीन का, दरिद्र का देश कैसे है? और इसलिए इस देश में एक देश का भाव पैदा नहीं हो पा रहा है, एक समाज का भाव पैदा नहीं हो पा रहा है। इस देश में एक अटूट एकता पैदा नहीं हो पा रही है। यह पैदा नहीं होगी। यह इंटिग्रेशन की सारी बातचीत चलेगी और कुछ भी नहीं होगा। इंटिग्रेशन, एकता, इस देश में समाजवाद का परिणाम होगी। उसके पहले नहीं हो सकती।

ये बातें मैं कहता हूं तो वे कहते हैं कि मैं गांधी जी का दुश्मन हूं। गांधी जी का मैं दुश्मन हूं या दोस्त? अगर गांधी जी की कहीं भी आत्मा होगी तो यह सोचती होगी कि जब आप ताली बजाएं समाजवाद के लिए तो आकाश में अगर वे कहीं भी होंगे तो उन्होंने भी ताली बजाई होगी। आपकी ताली के साथ उनकी ताली रही होगी। और अगर मेरी आवाज उन तक पहुंचती होगी तो उन्हें लगता होगा कि मैं कहा रहा हूं कि यह देश तक होगा खुशहाल, जब प्रत्येक व्यक्ति इस देश की संपत्ति का समान मालिक होगा। तो गांधी खुश होंगे या दुखी होंगे? तो मैं गांधी के पक्ष में बोल रहा हूं या विपक्ष में बोल रहा हूं, यह मैं आप पर छोड़ देता हूं। मैं गांधीवादी के विरोध में बोल रहा हूं। गांधी के विरोध में नहीं बोल रहा हूं।

एक बार कराची में एक बड़ी कांफ्रेंस में कांग्रेस के कुछ लोगों ने गांधी का विरोध किया। काले झंडे दिखाए और नारा लगाया कि 'गांधीवाद मुर्दाबाद।' गांधी मंच पर थे, माइक पर थे। उन्होंने उत्तर में कहा कि ध्यान रहे, गांधी मर जाएगा, लेकिन गांधीवाद अमर रहेगा। मैं उनसे कहना चाहता हूं, गलत बात कह दी उन्होंने। लेकिन अब तो कोई उपाय नहीं। उनसे शब्द बदलवाने का, लेकिन फिर भी निवेदन तो कर देना चाहिए। मेरा वश होता तो उनसे मैं कहता, लेकिन आज तो कह देना चाहिए। मैं कहना चाहता हूं, गांधी अमर रहेंगे, गांधीवाद नहीं। गांधी की प्रतिभा, गांधी का व्यक्तित्व,

गांधी की करुणा, गांधी का प्रेम, गांधी की अहिंसा, गांधी का वह महिमामंडित स्वरूप अमर रहेगा, गांधीवाद नहीं। क्योंकि गांधीवाद के अमर रहने का मतलब गांधीवादी का अमर रहना है। गांधीवाद से मुक्त हो जाना अत्यंत आवश्यक है। जितने शीघ्र हम मुक्त हो सकें और जितने शीघ्र हम वर्गविहीन और शोषणमुक्त समाज को जन्म दे सकें, उतना हितकर है, उतना उचित है। करोड़ों-करोड़ों वर्ष के भारत का स्वप्न पूरा हो सकेगा।

भारत के ऋषियों ने, भारत के संतों ने, सपना ही यह देखा है कि एक पृथ्वी ऐसी हो जहां सब बंधु हों, लेकिन शोषण से भरी पृथ्वी बंधुओं की पृथ्वी कैसे हो सकती है? एक सपना देखा है कि प्रत्येक आदमी की आत्मा समान है, बराबर है, लेकिन आत्मा समान और बराबर कब होगी? जब तक शरीर के समान अवसर और सुविधा नहीं मिलती, तब तक आत्मा की समानता का कोई व्यावहारिक अर्थ नहीं है। आत्मा तभी प्रकट होती है जब शरीर हो। और आत्मा की समानता भी उसी दिन प्रकट होगी जिस दिन शरीर के जगत में समानता की व्यवस्था हो, अन्यथा आत्मा की समानता भी कैसे प्रकट हो सकती है? करोड़ों-करोड़ों वर्ष से जिसने जीवन को सोचा है, जाना है उसके प्राणों में एक ही प्रार्थना रही है सारे लोगों को समान शांति, समान आनंद उपलब्ध हो। लेकिन वह कैसे उपलब्ध होगा? अभी तो जीवन की समान जरूरतें भी उपलब्ध नहीं हैं, जीवन को विकसित करने के समान अवसर भी उपलब्ध नहीं है। कितने गांधी झोपड़ों में मर जाते होंगे और पैदा नहीं हो पाते होंगे। कितने बुद्ध और महावीर शूद्रों के घर में जन्मते होंगे और क ख ग भी नहीं सीख पाते होंगे। कितने ऋषि और मुनि पैदा नहीं हो सके, क्योंकि जहां वे पैदा हुए वहां ज्ञान की कोई खबर, कोई हवा नहीं पहुंच सकी। हजारों वर्ष से भारत शूद्र हैं। एक शूद्र बुद्ध की हैसियत को उपलब्ध हुआ? एक शूद्र राम बना? एक शूद्र कृष्ण बना? एक शूद्र पतंजलि बना? नहीं बन सका। क्या शूद्र के घर आत्माएं पैदा नहीं होतीं, प्रतिभाएं पैदा नहीं होतीं?

अंग्रेजों की कृपा थी। एक डाक्टर अंबेदकर पहली बार हुआ। एक कीमत का आदमी शूद्रों में। एक आदमी पूरे इतिहास में। यह भी पैदा नहीं होता। इसे मौका मिला इसलिए पैदा हुआ। कितनी आत्माओं को मौका नहीं मिला, जो पैदा हो सकती थीं। कितना अनंत उपकार हुआ है जगत का। कुछ थोड़े से लोग अवसर पाते हैं। उन थोड़े से लोगों के थोड़े से बच्चे आगे बढ़ पाते हैं। और सब तो सड़ता है, मर जाता है। उसके जीवन में ने कोई ऊंचाई पैदा होती, न कोई शिखर छूता, न कोई संगीत बचता, न कोई प्रभु के मंदिर की घंटी सुनाई पड़ती है। यह कब तक चलेगा?

लोग समझते हैं कि समाजवाद धर्म का विरोधी है। गलत है यह बात। समाजवाद से ज्यादा धार्मिक और कोई आंदोलन जगत में नहीं है। लोग समझते हैं कि समाजवाद ईश्वर का विरोधी है। गलत है यह बात। जब जमीन पर पूरा समाजवाद होगा तभी हम पहली दफा ईश्वर की तरफ उठ सकेंगे, ईश्वर की तरफ आंख उठा सकेंगे। समाजवाद के बाद ही धार्मिक जीवन का ठीक-ठाक समुचित विकास होता है। लेकिन गांधी जी के सामने स्वतंत्रता का सवाल बड़ा था। समाजवाद का सवाल बड़ा नहीं था। स्वभावतः परिस्थिति नहीं थी। गांधी जी के सामने सवाल स्वतंत्रता का सवाल बड़ा था। समाजवाद का सवाल बड़ा नहीं था। स्वभावतः परिस्थिति नहीं थी। गांधी जी के सामने सवाल था कि देश परदेशी गुलामी से कैसे मुक्त हो। अगर वे जिंदा रहते तो शायद वे आर्थिक गुलामी से, देशी गुलामी से भी मुक्त करने के लिए कोई प्रयास करते। लेकिन वे जिंदा नहीं रहे। आजादी जरूरी थी उस वक्त। इसलिए उन्होंने जो भी चिंतन और विचार विकसित किया, वह मूलतः स्वतंत्रता को ध्यान में रख कर था। उनका चिंतन समानता को ध्यान में रख कर समुचित रूप से विकसित नहीं हो सका। लेकिन उन पर ही हम रुक जाएंगे या आगे बढ़ेंगे?

स्वतंत्रता आ गई। जैसी भी समझिए क्लीव, इम्पोटेंट, अधूरी, जैसी भी आ गई। अब इस स्वतंत्रता के अवसर का उपयोग क्या हो सकता है? एक ही उपयोग हो सकता है कि समानता भी आए और ध्यान रहे जब तक समानता पूरी तरह न आए तब तक स्वतंत्रता सिर्फ धोखा होती है, कामचलाऊ होती है, क्योंकि जिनके पास पेट में रोटी भी नहीं है, उनके लिए स्वतंत्रता का क्या अर्थ है, क्या उपयोग है, क्या प्रयोजन है? जिनके पास वस्त्र भी नहीं हैं उनके लिए स्वतंत्रता शब्द सुनाई तो पड़ता है, लेकिन उसका कुछ अर्थ, प्रयोग नहीं होता कि स्वतंत्रता यानी क्या है। जब तक आर्थिक समानता न हो तब तक राजनीतिक स्वतंत्रता आत्मवंचना है। सेल्फ डिसेप्शन है। लेकिन गांधी के सामने वह सवाल नहीं था। हमारे सामने वह सवाल है और हमें गांधी के आगे सोचना होगा, आगे विचार को ले जाना होगा। देश ने एक आजादी की

लड़ाई लड़ी थी। अब देश को फिर एक लड़ाई लड़नी है समानता की। नहीं किसी और से लड़नी है, लड़नी है अपने ही तंत्र से, अपने ही शोषण की व्यवस्था से। नहीं किसी व्यक्ति से, समाज की व्यवस्था से।

और यह व्यवस्था बदलें तो ही गांधी की आत्मा प्रसन्न हो सकती है। लेकिन गांधीवादियों ने गांधी को कहां-कहां बिठा रखा है, पता है? पुलिसथाने में, हेड कांस्टेबल के पीछे गांधी की तस्वीर लगी है। पुलिसथाने में बैठा है हेड कांस्टेबल, मां-बहन की गालियां दे रहा है और पीछे राष्ट्रपिता की तस्वीर लगी है। अदालत में जहां सब तरह की बेईमानी चल रही है, रिश्वतखोरी चल रही है वहां गांधी की तस्वीर लगी है। तुमने गांधी को कोई पंचम जार्ज समझ रखा है? तुम गांधी के साथ अच्छा सलूक कर रहे हो? तुमने गांधी को कहां बिठा दिया है? लेकिन तुम्हें गांधी से कोई मतलब नहीं। तुम्हें स्वयं से मतलब है। तुम गांधी की तस्वीर खड़ी करके अपने को छिपाने की कोशिश कर रहे हो। लेकिन कितनी देर तक इस देश की जनता को धोखा दिया जा सकेगा? तुम तो नहीं छिप सकोगे। खतरा यह है कि गांधी का सम्मान समाप्त न हो जाए। गांधीवादियों से गांधी को बचा लेना बहुत जरूरी है, अन्यथा गोडसे उनको नहीं मार पाया, गांधीवादी उनको मार डाल सकते हैं।

देख कबीरा रोया

तीसरा प्रवचन

अतीत के मरघट से मुक्ति

आज ही एक पत्र में मुझे स्वामी आनंद का एक वक्तव्य पढ़ने को मिला। और बहुत आश्चर्य भी हुआ, बहुत हैरानी भी हुई। स्वामी आनंद से किसी ने पूछा कि मैं जो कुछ गांधी जी के संबंध में कह रहा हूं उनके संबंध में आपके क्या खयाल हैं? स्वामी आनंद ने तत्काल कहा, उस संबंध में मैं कुछ भी नहीं कहना चाहता हूं। शिष्टाचार वश, चाहे उनके मुंह से ऐसा निकल गया हो, क्योंकि यह कहने के बाद वे रुके नहीं और जो कहना था वह कहा। ऊपर से ही कह दिया होगा कि कुछ नहीं कहना चाहता हूं, किंतु भीतर आग उबल रही होगी वह पीछे से निकल आई, तो रुकी नहीं। आश्चर्य लगा मुझे कि पहले कहते हैं कि कुछ भी नहीं कहना चाहता और फिर कहते भी हैं! आदमी ऐसा ही झूठा और प्रवंचक है। शब्दों में कुछ है, भीतर कुछ है। कहना कुछ है, कहना कुछ और चाहता है। उन्होंने जो कहा वह और भी हैरानी का है।

स्वामी आनंद मुझसे भलीभांति परिचित थे। लेकिन, ऐसी जानकारी भी उनकी होगी, यह मुझे पता नहीं था। उन्होंने कहा, नहीं कुछ कहना चाहता हूं और फिर कहा, कि अगर एक कौआ मस्जिद पर बैठ कर अपने को मुल्ला समझने लगे, तो इसमें कुछ कहने के बात नहीं। स्वामी आनंद से मैं परिचित हूं। लेकिन मुझे इसका परिचय नहीं था कि उनका कौओं से परिचय है। कौवे मस्जिद पर बैठ कर क्या सोचते हैं? स्वामी आनंद किसी जन्म में, अगर कौआ न रहे होंगे, किसी मस्जिद के ऊपर बैठ कर मुल्ला होने की सोची होगी। अन्यथा कौवे क्या सोचते हैं, कैसे पता लगा सकते हैं? कौआ की बुद्धि मुल्ला होने से ऊपर जा भी नहीं सकती। कौओं को छोड़ कर शायद ही कोई और मुल्ला होना चाहता हो। जो मुल्ला हैं वे कौवे की बुद्धि से ज्यादा नहीं होते। और फिर मुल्ला होने का स्वामी आनंद को पता नहीं कि मुल्ला होना कब संभव होता है। जब कोई किसी पंथ को मानता हो, संप्रदाय को मानता हो, वाद को मानता हो, किसी गुरु को मानता हो तो मुल्ला हो सकता है। न तो मैं किसी पंथ को मानता रहा, न किसी वाद को मानता रहा, न किसी संप्रदाय को मानता रहा। मेरा मुल्ला होना बिलकुल मुश्किल है। लेकिन स्वामी आनंद मुल्ला हैं और कहना चाहिए कठमुल्ला हैं।

गांधी जी के एक धर्म बनाने की कोशिश की जा रही है। गांधीवाद को एक चर्च बनाने की कोशिश की जा रही है। गांधी स्वयं जिंदगी भर यह चिल्ला-चिल्ला कर कहते रहे गए कि मेरी मूर्तियां मत बना देना, मेरा मंदिर न बना देना, लेकिन यह साजिश जारी है, उनकी मूर्तियां बनाई जा रही हैं। अभी मेरे एक मित्र ने गांधी-पुराण भी लिख डाला है। और उसमें इस बात की व्यवस्था की है कि जैसे और पुराण हैं, विष्णु-पुराण आदि, वैसा गांधी को अवतार बताने की कोशिश की है। बहुत शीघ्र गांधी के पास एक धर्म खड़ा करने की कोशिश चल रही है। स्मरण रहे, जब भी किसी व्यक्ति के पास धर्म खड़ा हो जाता है, तो व्यक्ति तो मर ही जाता है। मुल्लाओं और पंडितों की बन आती है। जीसस के पास ईसाई पादरी इकट्ठा हैं और

जीसस की आवाज को दुनिया तक नहीं पहुंचने देते। जैसे ही किसी व्यक्ति के आस-पास संगठन बनता है, संप्रदाय बनता है, सत्य की हत्या हो जाती है।

मैंने सुना है, एक बार किसी आदमी को सत्य मिल गया था, तो शैतान के शिष्यों, डिसाइपल्स ऑफ डेविल ने भाग कर शैतान को अपने गुरु को खबर दी कि पता है, तुम आराम से सो रहे हो। एक आदमी को सत्य मिल गया है। हमारी सल्तनत डगमगा रही है। कुछ करना चाहिए, शीघ्रता से। क्योंकि अगर आदमियों को सत्य मिल जाएगा तो शैतान का क्या होगा? शैतान ने कहा कि क्या करोगे, अब सत्य मिल चुका। तुम पहले कहां थे, क्यों नहीं आकर पहले ही कहा, हम सत्य मिलने में बाधा डालते। अब तो एक ही रास्ता है। अब तुम जाओ शीघ्रता से, गांव-गांव और डंडे और घंटी लेकर पीटो, गांव-गांव में यह आवाज फैला दो कि एक आदमी को सत्य मिल गया है। जो भी चाहे चले। शैतान के शिष्यों ने कहा, इससे क्या होगा? शैतान ने कहा, पंडित और मुल्ला सुन लेंगे यह और जहां भी उन्हें पता चल गया कि किसी आदमी को सत्य मिल गया है तो पंडित और मुल्ले वहां जाकर अड्डा जमा लेंगे। और एजेंट बन जाएंगे। जनता और सत्य के बीच पंडित से बड़ी दीवाल और कोई भी नहीं खड़ी की जा सकती है। तुम जाओ और जल्दी गांव-गांव खबर कर दो।

और मैंने सुना है कि शैतान के शिष्य गए और उन्होंने गांव-गांव में खबर कर दी। हजारों लोग वहां चलने लगे। उस सत्य के खोजी के आस-पास पंडितों की दीवाल खड़ी हो गई। व्याख्याकारों की, टीकाकारों की। वे कहने लगे कि क्या चाहते हो, हम बताते हैं। वह आदमी, वह सत्य का खोजी, उस भीड़ में दब गया। मंदिर बन गया वहां एक, उसकी लाश पर। हजारों लोग पूजा करते हैं उस आदमी की। उसकी किताबें हैं। लेकिन उस आदमी को, जिसको सत्य मिला था, उसकी कोई किरण किसी तक अभी तक नहीं पहुंच पाई है। दुनिया में सत्य की हत्या का एक उपाय है। सत्य की हत्या करनी हो तो शीघ्रता से संप्रदाय बना दें। लेकिन स्वामी आनंद मुल्ला हो सकते हैं। गांधी का एक संप्रदाय बनाए हुए हैं। अन्यथा मेरी बातों से इतनी पीड़ा और परेशानी की जरूरत न थी। वे मेरी बातों का उत्तर दें, मेरी बातों की चर्चा करें। मैं जो कहता हूं गलत हो सकता है। मुझे गलत बताएं, समझाएं। लेकिन, सुनने से उसमें क्रोध की क्या जरूरत है? क्रोध वहां आता है जहां वेस्टेट इंट्रेस्ट हों। जहां न्यस्त कोई स्वार्थ हो तब क्रोध आता है, अन्यथा क्रोध की क्या जरूरत है? अन्यथा यह चिल्लाने की क्या जरूरत है कि मेरी किताबों को आग लगा दो। यह कहने की क्या जरूरत है कि मुझे आने मत दो, सभा मत होने दो।

ये सभी बातें सुन कर, मुझे दादा धर्माधिकारी एक घटना सुनाते थे, वह याद आई। वे कहते थे कि पंजाब में था और पंजाब के सरदारों की सभा में बड़ा शोरगुल होता था। जहां दादा को बोलने के लिए बुलाया था। जो अध्यक्ष हैं उन्होंने डंडा उठा कर टेबल पर पटका और कहा, चुप होते हो कि नहीं। डंडे से सिर तोड़ दूंगा। चुप हो जाओ। वह सभा एकदम चुप हो गई। फिर डंडा बजा कर उन्होंने कहा कि अब सुनो। अब दादा धर्माधिकारी अहिंसा पर भाषण देंगे। तो दादा कहते थे, मैंने अपनी खोपड़ी ठोंक ली और मैंने कहा, क्या खाक भाषण दूंगा। अहिंसा पर। डंडा बता कर कहता है वह आदमी चुप हो जाओ, नहीं तो खोपड़ी तोड़ देंगे और अहिंसा पर भाषण होता है। बड़ा सही अहिंसावादी रहा होगा। गांधी की आलोचना करके अहिंसावादियों की असलियत का मुझे भी पहली दफा पता चला है। कि उनकी असलियत क्या है! हाथ में उनके डंडे हैं और अगर अहिंसा की बात नहीं मानेंगे आप, तो डंडे से आपको अहिंसा की बात समझाएंगे।

लेकिन, यह देश अब बहुत दिन इस तरह के धोखे में नहीं रखा जा सकता है। बहुत लंबी कथा है, इसके धोखे की। बहुत लंबी यात्रा है इसके दुर्भाग्य की। विचार के लिए आज तक इस देश में परिपूर्ण स्वतंत्रता नहीं मिली। इसलिए हम जगत में पिछड़ गए हैं और पीछे पड़ गए हैं। हिंदुस्तान ने कभी भी तीव्र विचार के लिए आमंत्रण नहीं दिया। कभी भी विचारपूर्ण विद्रोह के लिए साहस नहीं दिखाया। नये विचार के भय दिखाया, घबराहट दिखाई। हमेशा उसको मानना चाहा कि जो हमारी पुरानी किताब में लिखा है, वही सही होना चाहिए। पुराने ने कुछ सही होने का ठेका ले लिया है! पुराना ही सत्य होना चाहिए, जैसे कि सत्य को जानने के लिए आगे कोई पैदा नहीं होगा। वे सब लोग पीछे पैदा हो चुके हैं, जिन्होंने सत्य जाना है। अब आगे लोग व्यर्थ पैदा हो रहे हैं। उन्हें कोई अनुभव नहीं होगा, कोई सत्य नहीं होगा। यह हमारी प्रवृत्ति है—सब कुछ पीछे हो चुका, सत्य भी हो चुका, स्वर्णयुग भी हो चुका, सब तीथ□कर, सब महावीर, सब पैगंबर, सब पीछे हो चुके। अब आगे कुछ होने को नहीं है। इस विचार ने ही कि सब विचार किया जा चुका, अब आगे कुछ विचार करने को नहीं

है—भारत के विचार की हत्या कर दी। नहीं, बहुत विचार करने को शेष है, बहुत नई खोज होने को शेष है, बहुत से सत्यों का उदघाटन होगा, जो अब तक नहीं हुआ। बहुत से पर्दे उठेंगे, बहुत से रहस्य उदघाटित होंगे। जीवन समाप्त नहीं हो गया है। जीवन की यात्रा जारी है। लेकिन, अगर कोई कौम ऐसा समझ ले कि सब हो चुका, अब उस पर कोई विचार नहीं करना है, आगे कुछ नया विचार हो नहीं सकता, तो उस कौम की अगर प्रतिभा नष्ट हो जाए तो इसमें क्या आश्चर्य!

भारत के पास अदभुत प्रतिभा थी। आज भी प्रतिभा है, सोई हुई है। लेकिन उसका नया अवतरण, नया विकास, नया ऊर्ध्वगमन उस प्रतिभा का नहीं हो पाता है, क्योंकि हमारी धारणा यह है कि अब नया कुछ होने को नहीं है। जब नया कुछ होने को नहीं है, तो नया नहीं हो सकेगा। क्योंकि हम जो विचार करते हैं, जो धारणा बताते हैं वैसा ही हमारा जीवन हो जाता है। न तो महावीर पर रुक गए हैं हम, न कृष्ण पर और न गांधी पर रुकने की कोई जरूरत है। जिंदगी रुकना जानती ही नहीं। लेकिन जहां-जहां गुरुडम खड़ी हो जाती है वहीं जीवन की धारा को बांध बना कर रोकने की कोशिश की जाती है, कि बस यहीं, अब इससे आगे नहीं।

गांधी रुक जाएंगे, जीवन तो नहीं रुकेगा। मैं रुक जाऊंगा, जीवन तो नहीं रुकेगा। आप रुक जाएंगे, जीवन तो नहीं रुकेगा। यह मोह बिलकुल पागल मोह है कि मैं रुकूं, उसी के साथ जीवन भी रुक जाए। यह बिलकुल पागल मोह है, यह बिलकुल ही विक्षिप्त मोह है। मैं रुक जाऊंगा, ठीक है, लेकिन जीवन तो आगे जाएगा, जीवन नये किनारे छुएगा और नये मार्ग चुनेगा। जीवन नया अनुभव करेगा। मेरे अनुभव के साथ जीवन सदा के लिए रुक जाए, यह जरूरी है, यह उचित है, यह योग्य है? मैं कोई जीवन हूं पूरा? महापुरुष भी पैदा होते हैं और विलीन हो जाते हैं। जीवन तो सतत चलता रहता है। लेकिन जिन समाजों के मन में यह धारणा बैठ जाती है कि हम रुक जाएं अतीत पर, वे समाज भविष्य की तरफ गति करना बंद कर देते हैं। उनका जीवन 'स्टेगनेंट', रुका हुआ अवरुद्ध हो जाता है—जैसे गंगा रुक जाए। रुका हुआ पानी गंदा हो जाता है। यह भारत का समाज इतना गंदा इसीलिए हो गया है। यह समाज रुका हुआ पानी है। रुके हुए समाज का फिर जीवन तो आगे नहीं बढ़ता। धूप पड़ती है, ताप पड़ता है, सड़ांद आती है, गंदगी बनती है, भाप बन कर पानी उड़ता है और कचरा पैदा होता है। और कुछ भी नहीं होता। कभी आपने तालाब को सागर तक पहुंचते देखा है? सरिताएं बहती हैं सागर तक। सरिताएं, जो कि भागती हैं अज्ञात की तरफ—खोज करती हैं अनजान की, अननोन की। डबरा, तालाब तो अपने में बंद होकर बैठ जाता है और कहीं जाता ही नहीं। वह घेरे में घूमता रहता है। अपना वाद का घेरा है, उसी में घूमता रहता हूं। फिर, वह सागर तक भी नहीं पहुंच पाता है और जो जल सागर तक न पहुंच पाए वह जल कभी भी असीम अनुभव को उपलब्ध नहीं हो पाएगा।

जीवन भी अनंत तक पहुंचने में है। व्यक्ति आएंगे महान से महान। व्यक्ति आएंगे और विलीन हो जाएंगे और जीवन की धारा आगे बढ़ती रहेगी। कोई महापुरुष तो चाहते हैं कि जीवन की धारा आगे बढ़े, लेकिन महापुरुषों के पास जो लघु मानव हैं, छोटे-छोटे मानव इकट्ठे हो जाते हैं, वे जीवन की धारा को रोकने की कोशिश करते हैं। क्योंकि, उनकी कीमत तभी तक है जब तक जीवन उनके महापुरुषों के पासा रुका रहे। और अगर, जीवन आगे बढ़ गया और महापुरुष भूल गए तो इन जनों का क्या होगा जो आस-पास बैठ कर दुकान खोले हुए थे? इनका क्या होगा? इनकी दुकान तभी चलेगी, जब तक जीवन इनके महापुरुषों की लाश के पास रुका रहे।

भारत न यह भूल बहुत कर ली है। आगे यह भूल नहीं की जानी है। भारत का सारा मस्तिष्क अतीतोन्मुख है, पीछे की तरफ देखता है। आगे की तरफ देखता ही नहीं। रूस के बच्चे चांद पर बस्तियां बसाने का विचार करते हैं और भारत के बच्चे? भारत के बच्चे रामलीला देखते हैं। कब तक हम रामलीला देखते रहेंगे। कितनी रामलीला देखी जा चुकी है? राम बहुत प्यारे हैं, लेकिन कितनी बार? क्या हम यही करते रहेंगे? क्या हमारी चेतना एक वर्तुल में घूमती रहेगी? क्या हम आगे नहीं बढ़ेंगे? कोई नई लीलाएं नहीं होंगी? कोई नये राम पैदा नहीं होंगे? कोई नया कृष्ण पैदा नहीं होंगे? बस? पीछे और पीछे? भगवान ने बड़ी भूल की है भारत के साथ! उसकी बड़ी कृपा होती, अगर वह भारतीयों की आंखें खोपड़ी में सामने की तरफ न लगा कर पीछे की तरफ लगाता। उससे उनको बड़ी सुविधा होती। उससे हम निरंतर पीछे की तरफ देखने में समर्थ हो जाते। लेकिन, भगवान बड़ा नासमझ है। हम उसकी नासमझी को बर्दाश्त थोड़े ही करते हैं! हम अपनी खोपड़ी

पीछे की तरफ मोड़ कर, पीछे की तरफ लाइट होगी। चलना आगे हैं, वह तो ठीक है, लेकिन देखना तो पीछे है। जहां उड़ती धूल रह जाती है, उसे देखना है। जहां से रथ गुजर गए, उनकी उड़ती धूल रह जाएगी। राम कर रथ निकल चुका, महावीर का रथ निकल चुका, गांधी का रथ निकल चुका। कब तक हम उस धूल का देखते रहेंगे? कब तक उस धूल को पूजते रहेंगे? आगे नहीं बढ़ना है?

और ध्यान रहे, जीवन जाता है सदा आगे की तरफ। जीवन कभी पीछे की तरफ नहीं लौटता है, नहीं लौट सकता है। कोई मार्ग नहीं है पीछे, पीछे सिर्फ स्मृति है। कोई मार्ग नहीं है पीछे। हम याद कर सकते हैं, पीछे जा नहीं सकते। समय में एक क्षण भी तो पीछे नहीं लौटा जा सकता। एक कदम भी तो हम पीछे नहीं जा सकते। जो समय का क्षण बीत गया, उसमें हम अब कभी भी नहीं जा सकते। वह सदा-सदा को बीत गया। उसमें लौटने को कोई उपाय ही नहीं है। वह सेतु गिर गया, वह मार्ग नष्ट हो गया। वहां हम कभी नहीं जा सकते। पास्ट में, अतीत में जाने का कोई द्वार ही नहीं है और जब अतीत में हम जा नहीं सकते तो हम एक काम कर सकते हैं। अतीत की स्मृति कर सकते हैं, याद कर सकते हैं।

लेकिन ध्यान रहे, जितनी हमारी ऊर्जा अतीत की स्मृति में और याद में नष्ट होती है, उतनी ऊर्जा भविष्य में जाने के लिए कम पड़ती जाती है। जितनी हमारी दृष्टि अतीत से बंध जाती है, उतना ही हम आगे की तरफ देखने में असमर्थ हो जाते हैं। और यह भी ध्यान रहे, चलना आगे है और देखना अगर पीछे रहा, तो गड्ढे में गिरे बिना कोई उपाय नहीं रहेगा। गड्ढे में गिरना पड़ेगा। भारत सैकड़ों बार गड्ढे में गिरता रहा है। हजार बार गड्ढे में गिरा है। दुर्घटना की हमारी लंबी कथा में और क्या है? कितनी गुलामी—कितनी दीनता—कितनी दरिद्रता! लेकिन हमारी आदत पीछे देखने की कायम—बरकरार—है। पीछे देखते हैं। आगे चलते हैं। गिरेंगे नहीं तो और क्या होगा?

एक ज्योतिषी यूनान में एथेंस के पास एक गांव से गुजरता था। सांझ थी। चांद उगा होगा। आकाश में वह चांद को देखता था, तारों को देखता था तो एक गड्ढे में गिर पड़ा। आकाश की तरफ देख रहा था। जमीन का गड्ढा नहीं दिखाई पड़ा था। एक बूढ़ी औरत ने उसे गड्ढे से बाहर निकाला। उसके दोनों पैर टूट गए थे। उसने बूढ़ी औरत को धन्यवाद दिया और कहा कि मां, बहुत-बहुत धन्यवाद! मैं तेरी क्या सेवा कर सकता हूं। इतना मैं कहता हूं, शायद तुझे पता नहीं होगा, मैं यूनान का सबसे बड़ा ज्योतिषी हूं। अगर तुझे चांद-तारों के संबंध में कुछ जानना हो तो मेरे पास आ जाना। उस बूढ़ी औरत ने कहा, पागल में तेरे पास चांद-तारों के संबंध में पूछने आऊंगी? जिसे अभी जमीन के गड्ढे नहीं दिखाई पड़ते हैं उसके चांद-तारे को देखने का कोई भरोसा है? उसका कोई विश्वास किया जा सकता है? पहले, बेटे! जमीन के गड्ढे देखने सीखो, फिर आकाश के चांद-तारे देखना। ठीक ही कहा उस बूढ़ी औरत ने। अभी जमीन का गड्ढा दिखाई नहीं पड़ता हो तो चांद-तारों के ज्ञान का भरोसा क्या है?

जिन्हें आगे हाथ-पैर दिखाई नहीं पड़ता वे हजारों मील पीछे की यात्रा की कथाएं दोहरा रहे हैं। इतिहास की धूल—बीत गए रथों के चक्कों के चिह्न उन्हीं पर हम रुके हैं। दुर्भाग्य है, इसलिए भविष्य में रोज टकरा जाते हैं। इसलिए भविष्य को हम निर्मित नहीं कर पाते। भविष्य का क्षण आ जाता है और हम बिलकुल अनजान, बेहोश खड़े रह जाते हैं। जब क्षण आकर पकड़ लेता है, तब हम चौंक कर खड़े हो जाते हैं। हमारी समझ में नहीं आता कि क्या करें? हमारे खयाल में नहीं आता। जब तक हम सोच नहीं पाते तब तक समय बीत जाता है। समय किसी की प्रतीक्षा करता है? समय रुका नहीं रहता है। जो उसकी पहले से तैयारी करते हैं, वे उस समय का उपयोग कर पाते हैं। जो उसके सामने बैठे रहते हैं, जब समय आ जाता है। हम उस तरह के लोग हैं कि घर में आग लग जाती है तब हम कुआं खोदने बैठ जाते हैं। हम कहते हैं आग लगी है, अब कुआं खोदना चाहिए। जब तक हम कुआं खोद पाते हैं, तक तक घर कभी का जल कर राख हो जाता है। घर में आग लगी हो तो कुआं तैयार होना चाहिए, तब आग बुझाई जा सकती है। लेकिन हमें फुरसत कहां कि हम भविष्य के कुएं निर्मित करें? हमें फुरसत कहां, हमें ध्यान कहां? हमारी कल्पना नहीं जाती, वहां तक। बस, पीछे और पीछे!

गांधी ने पुनः पीछे की दृष्टि हम पकड़ा दी। गांधी कहने लगे, रामराज्य चाहिए। बड़ी अजीब बात है। राम बहुत प्यारे हैं, लेकिन रामराज्य? रामराज्य बिलकुल दूसरी बात है। गांधी को राम से बहुत प्रेम था, उचित ही है। राम जैसे व्यक्ति को प्रेम किया जा सकता है। प्रेम भारी रहा होगा। उनके रग-रग में, रोम-रोम में भर गया था। गोली लगी गोडसे की, तो, न तो

मां की याद आई, न पिता की याद आई, न गांधीवादियों की याद आई। याद आई राम की। राम! प्राणों के प्राण में वह आवाज घुस गई होगी, वह प्रेम घुस गया होगा। गोली प्राणों में पहुंची तो वहां राम के सिवाय कुछ भी नहीं पाया उसने। राम उनका बहुत प्रेम था और उसी प्रेम के वश वे रामराज्य की बातें करने लगे। लेकिन, राम से प्रेम ठीक है, रामराज्य से प्रेम खतरनाक बात है।

रामराज्य पूंजीवाद से भी पिछड़ी हुई व्यवस्था है, सामंतवाद है। रामराज्य भविष्य की समाज-योजना नहीं है। अतीत की, पिछड़े हुए, बीते हुए, जा चुके समाज की व्यवस्था है। रामराज्य नहीं लाना है हमें, लाना है भविष्य का राज्य। रामराज्य तो बीत गया। एक तो हम उसे लाना भी चाहें तो नहीं ला सकते। और हम ला भी सकते हों तो हमें कभी लाने का विचार भी नहीं करना चाहिए। क्योंकि रामराज्य तो पिछड़ा हुआ, आज से बदतर समाज और समाज-व्यवस्था है। करोड़ों-करोड़ों गुलाम हैं। स्त्रियों की इज्जत कितनी गई होगी, वह सीता की इज्जत से पता चल जाता है। एक साधारण से आदमी की आवाज पर सीता को उठा कर फेंका जा सकता है जंगल में। साधारण स्त्री की क्या हैसियत रही होगी? स्त्री की यह हैसियत है!

रात बहुत प्यारे हैं और यह ध्यान रहे, कि यह भूल हम हमेशा करते हैं। हम क्या भूल करते हैं, वह भूल हमें समझ लेनी चाहिए ताकि हम आगे न कर सकें। दो हजार साल बाद न तो मुझे कोई याद रखेगा, न आपको कोई याद रखेगा। लेकिन गांधी याद रह जाएंगे। दो हजार साल बाद लोग सोचेंगे—कितना महान व्यक्ति था गांधी, कि इतने महान लोग गांधी के समाज के रहे होंगे। हम तो भूल जाएंगे। हमारी तो कोई रूपरेखा भी नहीं छूट जाएगी। हमारे तो कोई पदचिह्न कहीं भी दिखाई नहीं पड़ेंगे। हमारी तो कोई आकृति कहीं नहीं रह जाएगी। हम कैसे जीते थे। हम किन वासनाओं से भरे हुए थे, किन क्रोधों से, किन घृणाओं से, किन हत्याओं से भरा हमारा जीवन था। सब विलीन हो जाएगा। हवा में धुआं हो जाएगा। गांधी की प्रतिमा रह जाएगी। दो हजार साल बाद लोग सोचेंगे, गांधी का समाज कितना अच्छा रहा होगा। गलत बात सोच लेंगे वे।

गांधी हमारे प्रतिनिधि नहीं थे, अपवाद थे। हम गांधी जैसे नहीं हैं। हमारा गांधी से कुछ लेना-देना नहीं है। हम गांधी से बिलकुल उलटे हैं। लेकिन, दो हजार साल बाद जिससे हम बिलकुल उलटे हैं उसी आदमी से हम जाने जाएंगे। हमारा युग गांधी-युग कहा जाएगा। हमें कहा जाएगा, गांधी-युग के लोग कैसे अदभुत रहे होंगे। हमारा यह अनुमान झूठा है। राम बहुत प्यारे हैं, राम का समाज नहीं। बुद्ध बहुत प्यारे हैं, बुद्ध का समाज नहीं। क्राइस्ट बहुत प्यारे रहे होंगे, क्राइस्ट का समाज नहीं। एक-एक व्यक्तियों के आधार पर पूरे समाज का निर्णय लेने की भूल बहुत हो चुकी, आगे यह भूल नहीं होनी चाहिए। और फिर ध्यान रहे, हमें यह भी समझ लेना जरूरी है कि गांधी इतने बड़े महापुरुष दिखाई पड़ते हैं। महापुरुष, जो इतना बड़ा दिखाई पड़ता है, वह हमारी क्षुद्रता के अनुपात में दिखाई पड़ता है। जिस दिन महान मनुष्यता पैदा होगी, उस दिन महापुरुषों का युग समाप्त समझ लेना चाहिए। मनुष्यता क्षुद्र है, दीन-हीन है इसलिए महापुरुष दिखाई पड़ते हैं। महापुरुष तो हमेशा पैदा होते रहेंगे, लेकिन महान मनुष्य के बीच उनका कोई पता लगाना आसान नहीं रह जाएगा।

तो, मैं कहता हूं कि राम दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि समाज राम से भी विपरीत रहा होगा। बुद्ध दिखाई पड़ते हैं क्योंकि बुद्ध से विपरीत समाज रहा होगा। बुद्ध की सफेद उज्ज्वल रेखा किसी काले समाज के ब्लैक-बोर्ड के सिवाय दिखाई नहीं पड़ सकती। फिर यह भी ध्यान रख लेना जरूरी है कि अगर हम बुद्ध की, महावीर की, राम की, कृष्ण की, लाओत्से की, जरथुस्त्र की, कंफ्युशियस की शिक्षाओं को देखें, तो उन शिक्षाओं से बहुत-कुछ नतीजे लिए जा सकते हैं।

एक बड़े मजे की बात है, जिस पर हम कभी ध्यान ही नहीं देते। महावीर सुबह से शाम तक लोगों को समझाते हैं—हिंसा मत करो, हिंसा मत करो। अहिंसा-अहिंसा। इससे क्या मतलब है? इससे मतलब है कि लोग हिंसक थे। यदि लोग अहिंसक थे तो महावीर पागल थे जो उनको समझा रहे थे कि हिंसा मत करो। बुद्ध सुबह से सांझ तक समझा रहे हैं कि चोरी मत करो, झूठ मत बोलो और बेईमानी मत करो, पर स्त्री का गमन मत करो। किसको समझा रहे हैं? लोग अगर अच्छे थे, समाज अगर शुद्ध था तो वे शिक्षाएं किसके लिए हैं। ये शिक्षाएं बताती हैं कि आदमी कैसे रहे होंगे। जिनको ये शिक्षाएं दी जा रही थीं वे आदमी कैसे रहे होंगे? वे ही शिक्षाएं हमें आज देनी पड़ रही हैं। जो शिक्षाएं तीन हजार वर्ष पहले लागू थीं,

वे ही आज भी लागू हैं। इससे सिद्ध है कि समाज जैसा आज है, तीन हजार वर्ष पहले ऐसा ही था। समाज ऊंचा नहीं था। समाज में बुनियादी कोई फर्क नहीं पड़ गया। लेकिन हमारे खयाल में नहीं आ पाता कि शिक्षाएं किन्हें देनी पड़ती हैं, किसलिए देनी पड़ती हैं?

एक चर्च में एक फकीर बोलने गया। चर्च के लोगों ने कहा था उसे कि सत्य के संबंध में हमें समझाओ। उस फकीर ने कहा, सत्य के संबंध में? लेकिन यह तो चर्च है, यहां सत्य के संबंध में समझाने की जरूरत क्या है? यहां तो सत्यवादी लोग ही आए हुए हैं, क्योंकि मंदिरों में, चर्चों में सत्यवादी ही आते हैं। लेकिन लोग नहीं माने। उन्होंने कहा, नहीं-नहीं, आप तो सत्य के संबंध में हमें समझाइए। वह फकीर खड़ा हुआ। उसने मंच पर खड़े होकर पूछा कि इसके पहले कि मैं कुछ कहूं, मैं थोड़ा जांच-परख कर लेना चाहता हूं। मैं तुमसे यह पूछता हूं कि मित्रो! तुम सब बाइबिल पढ़ते हो? उन सबने हाथ मिलाया कि हां, हम बाइबिल पढ़ते हैं। उस फकीर ने पूछा कि तब मैं तुम्हें बता दूं कि ल्यूक का उनहत्तरवां अध्याय जैसा कोई बाइबिल में है ही नहीं और तुम सब कहते हो कि हां पढ़ा है। तब सब ठीक है। फिर सत्य के संबंध में बोलने के कुछ सार है, लेकिन उस फकीर न कहा कि यह जो आदमी सामने बैठा है, यह बड़ा अदभुत आदमी मालूम पड़ता है। आश्चर्य! मेरे दोस्त! तुम चर्च में आ कैसे गए? क्योंकि चर्च में धार्मिक आदमी शायद ही जाते हों? तुमने हाथ क्यों नहीं उठाया? उस आदमी ने कहा, महाशय, जरा जोर से बोलिए, मुझे कम सुनाई पड़ता है। क्या आप कहते हैं उनहत्तरवां अध्याय ल्यूक का? रोज पढ़ता हूं, पढ़ता नहीं, रोज पाठ करता हूं। मैं समझा नहीं, इसलिए चुपचाप रहा कि कोई झंझट में न पड़ जाऊं।

समाज की शिक्षाएं समाज की खबर लाती हैं कि कैसे लोग होंगे। शिक्षाएं उन्हें देनी पड़ती हैं जो शिक्षाओं के प्रतिकूल होते हैं। जिस दिन दुनिया पर धर्म आ जाएगा उस दिन धर्म की शिक्षाओं को देने की आवश्यकता कम हो जाएगी। जिस गांव में मरीज कम होंगे वहां डाक्टर बसने की कोशिश नहीं करेंगे। जिस गांव में स्वास्थ्य हो उस गांव में चिकित्सक की क्या जरूरत होगी? हम बहुत गौरवांवित होते हैं यह बात सुन कर, कि दुनिया कि तीथ□कर, बुद्ध और अवतार हमारे यहां ही पैदा होते हैं। थोड़ा समझ-सोच कर इसमें गौरव अनुभव करना है। यह इस बात का सबूत है कि हमारा समाज एक अधार्मिक समाज है, जहां धार्मिक शिक्षक को बार-बार पैदा होने की जरूरत पड़ती है। यह सबूत गौरव का नहीं है। किसी घर में रोज-रोज डाक्टर आता हो तो मुहल्ले में नहीं कह सकते हैं कि हम बड़े स्वस्थ लोग हैं। हमारे यहां डाक्टर रोज आता है। धर्मगुरुओं की इतनी लंबी कतारें इस बात की खबरें हैं कि यह समाज अधार्मिक समाज है और अगर हम पीछे लौटने की बात करते हैं तो हम मुल्क को आत्महत्या, स्यूसाइड सिखा रहे हैं। मुल्क मर जाएगा पीछे लौटने की बातों में। क्योंकि, पहले तो लौट नहीं सकते, लौटने की कोशिश में और नासमझी के प्रयास में वह आगे नहीं जा सकेगा जहां वह जा सकता था।

नहीं, रामराज्य नहीं चाहिए, चाहिए भविष्य का समाज। लौटा हुआ, बीता हुआ, गया हुआ सामंतवादी समाज नहीं चाहिए, चाहिए शोषण से मुक्त वर्गविहीन आगे का समाज, भविष्य का समाज। लौटना नहीं है पीछे, जाना है आगे। लेकिन, हमारी सारी प्रवृत्ति, हमारा सारा चिंतन, हमारी सारी बुद्धि, हमारे व्यक्तित्व का सारा निर्माण, हमारी कंडीशनिंग, हमारे सारे संस्कार पीछे ले जाने वाले हैं—आगे ले जाने वाले नहीं। इसलिए भारत में कोई क्रांति नहीं हो पात है। क्रांति का मतलब होता है आगे जाना। जो आगे जाना ही नहीं चाहता है वह क्रांति कैसे करेगा? इसलिए भारत के पास पांच हजार वर्षों में क्रांति का कोई भी उल्लेख नहीं है। इतने संत, इतने महात्मा, इतने विचारक! लेकिन विद्रोह? विद्रोह बिलकुल भी नहीं। रेवोल्यूशन जैसी चीज ही नहीं। विद्रोह तो वे करते हैं जो आगे जाना चाहते हैं। जो आगे जाना चाहते हैं उन्हें अतीत को इनकार करना पड़ता है। जो आगे जाना चाहते हैं, उन्हें पीछे जड़ों को काटना पड़ता है। जो आगे जाना चाहते हैं उन्हें पीछे का मोह छोड़ना पड़ता है। लेकिन हम, अगर हमारा वश चले तो हम अपनी मां के गर्भ में ही रह जाएं, वहां से भी बाहर न निकलें। अगर कोई बच्चा सच्चा भारतीय हो तो उसे इनकार कर देना चाहिए कि मैं मां के गर्भ के बाहर नहीं आता। मां के गर्भ में बड़ी शांति से जी रहा हूं, संतोष से। इतना सुख कहां मिलेगा? मिलता भी नहीं। कितना ही अच्छा मकान बताएंगे, कितनी अच्छी कोच बनाएंगे, कितने ही अच्छे गद्दे और तकिए लगाएं, मां के पेट में जो कम्फर्ट, जो सुख, जो सुविधा, जो शांति है वह कहां मिलेगी?

# देख कबीरा रोया

मनोवैज्ञानिक तो कहते हैं कि मां के पेट में बच्चा जो सुख जान लेता है, उसी सुख के कारण वह उसी तरह की चीजें बनाता चलता है। ये इतने मकान, अच्छे गद्दे, तकिए, कारें, इस सबके भीतर खोज यह चल रही है कि मां के गर्भ में जैसी शांति और सुख मिलता था, वैसा मिल जाए, लेकिन बच्चे को मां के पेट के बाहर आना पड़ता है। बड़ी 'रेवोल्यूशन' हो जाती है, बड़ी क्रांति हो जाती है, सारा जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता होगा, क्योंकि न वहां खाने की फिक्र थी, न नौकरी की, न इंप्लाइमेंट' की, न कोई और झंझट थी। वहां सारा जीवन चुपचाप चलता था और चौबीस घंटे तंद्रा में, निद्रा में सोने का आनंद था। वह कोई दुख न था, सब सुख था। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मोक्ष का खयाल गर्भ के अनुभव से ही पैदा हुआ था। वहां सब कुछ था, कुछ कमी न थी। वही मन में, कहीं स्मृति में मनुष्य की, गहरे में गूंजता रहता है कि कोई एक ऐसी जगह होनी चाहिए जहां सब सुख होगा, कोई दुख न होगा। कोई एक ऐसा स्थान होना चाहिए जहां सब शांति होगी, कोई अशांति नहीं होगी। कोई एक स्थान होना चाहिए जहां कुछ भी नहीं करना पड़ेगा और सब हो जाएगा। वही कहीं बीच में छिपी हुई स्मृति मां के गर्भ की है। लेकिन बच्चा अगर कह दे कि नहीं जाता यात्रा पर जीवन की, तो क्या होगा उसका अर्थ? मां को उसे छोड़ना पड़ता है, मां से अलग खड़ा होना पड़ता है। थोड़े दिन मां से चिपटा रहता है, फिर अपने पैर से चलने लगता है, फिर धीरे-धीरे मां और उसके बीच फासला बढ़ता चला जाता है। फिर कल और स्त्री उसके जीवन में आएगी और शायद मां को भी भूल जाएगा। वह अपनी यात्रा पर जा चुका जहां वह मां से पूरी तरह स्वतंत्र हो गया है। जीवन की यात्रा आगे की तरफ है—आगे की तरफ, रोज आगे की तरफ। पिछला छोड़ देना पड़ता है, चाहे कितना ही सुविधापूर्ण रहा हो। आगे की असुविधाएं झेलनी पड़ती हैं ताकि हम और नई सुविधाओं के जीवन को उपलब्ध हो सकें। पहला कितना ही अच्छा घर रहा हो, उसे छोड़ देना पड़ता है ताकि अनजान और नये घर हम बना सकें।

जीवन की खोज निरंतर अतीत से मुक्त होने की खोज हैं। और, भारत के लिए चिंता करने जैसी बात है। भारत अतीत से चिपटा हुआ है। उसका मन वहीं रखा रह गया है। उसने जोर से पकड़ लिया है अतीत को। वह मां के गर्भ को पकड़े है और कहता है कि नहीं, हम यहां से आगे नहीं जाएंगे। इस वजह से हम सिकुड़ गए हैं, इस वजह से हमारी ऊर्जा क्षीण हुई है, इस वजह से हमारी प्रतिभा नष्ट हुई है, इस वजह से हम बौने हो गए हैं, इस वजह से हम सिर उठा कर अज्ञात की यात्रा पर जाने को भयभीत हैं, डर लगता है अनजान में, घबड़ाहट लगती है। अपने घर में रहो, यह प्रवृत्ति है। यह भारत को हिंदुस्तान के भीतर कैद कर दिया। भारत नहीं जा सका विस्तार पर। लेकिन, अपने को समझाने की हम बहुत होशियारी की बातें सोचते हैं। हम कहते हैं, हम आक्रमण नहीं करना चाहते हैं, इसलिए हम अपने घर में बैठे रहते हैं। हम अहिंसक हैं इसलिए हम कहीं नहीं जाना चाहते। लेकिन अहिंसक से अहिंसक आदमी को जरा सा उकसा दो और उसके भीतर से खूंखार आदमी खड़ा हो जाता है। अहिंसक आदमी को जरा सा कुछ कह दो उसके भीतर से क्रोध उबलने लगता है। यह कैसा अहिंसक आदमी है? कैसी है यह अहिंसा?

चीन का हमला हुआ, पाकिस्तान का हमला हुआ और अहिंसक आदमी को आप देख लेते कि अहिंसा कहां गई। वह बाहर ही है सारी की सारी, भीतर कुछ भी नहीं है। हिंदुस्तान में कवि कविताएं करने लगे कि सिंहों को छेड़ो मत, हम बब्बर शेर हैं। लेकिन घर के बाहर कविता सुना रहे हैं लोगों को, कहीं जा नहीं रहे हैं। सारा हिंदुस्तान कविता कर रहा है जैसे कि कविताओं से कोई युद्ध जीते जाते हैं। दुनिया में ऐसा कविताओं का बुखार, जुनून कभी नहीं आया होगा जैसा हिंदुस्तान में आया है। गांव-गांव में कवि पैदा हो गए हैं, जैसे बरसात में मेंढक पैदा हो जाते हैं और वे सब कहने लगे कि हम शेर हैं, सोते हुए शेर को मत छेड़ो। तुम्हारी कविता से तुम शेर सिद्ध हो जाओगे? तुम्हारी यह बहादुरी, तुम कविताओं से जो बता रहे हो और कवि-सम्मेलन के मंच पर हाथ-पैर फेंकते हो, इससे कुछ हो जाएगा? नहीं, हिंसा तो भीतर बहुत है, लेकिन साहस भी नहीं है बाहर जाने का। तो वह हिंसा कविताओं में निकलती है, कहीं बातचीत में निकलती है, क्षुद्रता में निकलती है। लेकिन, बाहर हम नहीं गए इस देख के। उसका कारण यह है कि हम पकड़ते हैं, रुकते हैं। गांव रुक जाता है। किसी तरह इसी में गुजर कर लेंगे, कहां जाएं, कौन झंझट ले, कौन अनजान, अपरिचित में उतरे?

सारी दुनिया विकसित हुई, वह इसलिए कि वह अनजान में चले जाएंगे। और हमें, मजबूरी में ही जाना पड़े तो बात दूसरी, जहां तक हमारी सामर्थ्य चलेगी हम जाने-माने को छोड़ कर अनजान में चले जाएंगे। और हमें, मजबूरी में ही जाना

पड़े तो बात दूसरी—पीछे लौट कर पकड़ते हैं। अगर मैं कोई बात कहूं तो आप कहेंगे, यह आदमी अनजाना है, पता नहीं यह आदमी कौन है, क्या है? इसकी बात माननी ठीक है क्या? अपने कृष्ण की बात ठीक है, तीन हजार साल से सुनते हैं, वही ठीक होनी चाहिए। और इसलिए, अगर हिंदुस्तान में किसी को नई बात भी कहनी हो तो उसको एक झूठ का आडंबर पहनाना पड़ता है। उसे कहना पड़ता है, जो मैं कह रहा हूं यही गीता में भी कहा हुआ है, तब कहीं वह बात स्वीकृत होगी, नहीं तो नहीं। अजीब बेईमानियों करवाना चाहते हैं। जब वह पहले यह सिद्ध करे कि यह गीता में कहा हुआ है तब कोई सुनने को राजी होगा। तब ठीक है, तब बोलो, तब पुराना परिचित ही बोल रहा है, फिर कोई डर नहीं है तुमसे।

इसीलिए हिंदुस्तान में प्राचीन ग्रंथों की हजारों टीकाएं हो गई है। गीता की कोई एक टीका की भी जरूरत नहीं है। गीता इतनी साफ किताब है, इतनी स्पष्ट, कि गीता की किसी टीका की जरूरत नहीं है। टीकाकार, और धुआं पैदा कर देगा। गीता को समझाने के लिए टीकाकार की जरूरत है? कृष्ण ने इतनी स्पष्ट बात कही है, इतनी सीधी, कि अब टीकाकारों की क्या जरूरत है? लेकिन एक हजार टीकाएं हैं और हजार मतलब वाली। इससे क्या सिद्ध होता है? इससे दो ही बातें सिद्ध होती हैं—या तो कृष्ण का दिमाग खराब रहा होगा कि एक ही बात में हजार मतलब रहे होंगे, तो कोई मतलब ही न रहा, मतलब यह रहा। हजार मतलब जिस बात के हों उसमें कोई मतलब ही न रहा। और या फिर, ये हजार टीका कार क्या कह रहे हैं। ये जो कहना चाहते हैं वे उसको जबरदस्ती बेचारे कृष्ण के ऊपर थोप रहे हैं, इसलिए हजार टीकाएं पैदा हो गई हैं। नहीं तो हजार टीकाओं की क्या जरूरत है? जो इन्हें कहना है, सीधा नहीं कह सकते। क्योंकि यह मुल्क सुनेगा ही नहीं, यह नये को सुनने को राजी नहीं। उसको गीता में प्रवेश करके और उसके गीता की शकल में लाकर खड़ा करना पड़ेगा। जब वह बिलकुल गीता की बात जंचने लगेगी तब कोई मानेगा। और इसमें गीता के साथ जो हत्या हो रही है, जो अत्याचार हो रहा है, वह चलेगा। गीता की जो शुद्धि है वह नष्ट होगी।

अभी मेरे खिलाफ इन लोगों ने इधर कुछ पत्र लिखे हैं। उन्होंने क्या लिखा? उन्होंने कहा कि गांधी जी विनम्र थे। वे कभी यह नहीं कहते थे कि यह मैं कह रहा हूं। वे कहते थे यह गीता में लिखा है, यह महावीर ने कहा है, यह टालस्टाय कहता है, यह रस्किन कहता है, यह श्रीमद्‌राजचंद्र कहते हैं। मैं तो वही कह रहा हूं। यह विनम्रता नहीं है, यह इस मुल्क के बुनियादों रोगों में से एक रोग है। जो मैं कह रहा हूं, वह मुझे कहना चाहिए कि मैं कह रहा हूं, चाहे गलत हो, चाहे सही हो। मैं जो कह रहा हूं उसे कृष्ण के ऊपर थोपना अत्याचार है। यह बिलकुल क्राइम है कि मैं कहूं कि वह कृष्ण कर रहे हैं। मुझे क्या पता कि कृष्ण क्या कह रहे हैं? कृष्ण के अतिरिक्त और कोई दावा नहीं कर सकता है इस बात के कहने का कि कृष्ण क्या कह रहे हैं! कौन दावा करेगा? कृष्ण की चेतना जिसके पास न हो, वह कैसे जानेगा कि कृष्ण क्या कह रहे हैं? क्यों फिजूल कृष्ण के ऊपर सवारी करते हो? क्यों किसी के कंधे पर सवार होते हो? अपने दो छोटे पैरों से ही खड़े हो जाओ। लेकिन नहीं, यह अहंकार है! अपने पैरों से खड़े होना अहंकार है और कृष्ण के कंधों पर खड़े हो जाना अहंकार नहीं है। कृष्ण के कंधों पर खड़े होकर आसानी से आप ज्यादा ऊंचा दिखाई पड़ेंगे, अपने पैरों पर खड़े होकर उतने ही ऊंचे दिखाई पड़ेंगे जितने आप हैं।

अहंकार किससे ज्यादा सिद्ध होगा? परंपरा का सहारा अहंकार की पुष्टि के लिए लाया जा सकता है। और या फिर, लोग इतने नासमझ हैं कि वे सुनने के भी राजी नहीं नये को। इसलिए पुरानी शराब को बोतल में नई शराब भर कर पिलानी पड़ेगी। नहीं, मैं इनकार करता हूं इस बात को क्योंकि यह पूरे मुल्क की प्रतिभा को नुकसान पहुंचाने की तरकीब है। मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि हमें ईमानदारी से, स्पष्टता से यह कहना चाहिए कि यह मैं सोचता हूं। वह गलत हो सकता है, वह सही हो सकता है। यह मूल्यवान नहीं है, लेकिन मूल्यवान यह है कि हम अपने तईं सोचना शुरू करें। हम कब तक कृष्ण और महावीर और बुद्ध को सताते रहेंगे। अगर वे कहीं मोक्ष में होंगे तो बहुत परेशान हो गए होंगे। रोज उनकी टांग खींचो और उनको जमीन पर लाओ। उनकी हुज्जत हो गई होगी, घबड़ा गए होंगे कि कहां के दुष्ट के मुल्क में पैदा हो गया कि सुबह से सांझ परेशान किए रहते हैं। नहीं, परेशान हो गए होंगे और कितने हैरान होते होंगे कि क्या-क्या शकल बनाई जा रही है उनकी बातों की। जो उन्होंने कभी भी नहीं कहा होगा, वह हजार साल में उनके नाम पर थोप दिया गया। जो उन्होंने

सोचा भी नहीं होगा वह उनकी वाणी का हिस्सा बन गया। क्या-क्या हम थोप सकते हैं जिसका कोई हिसाब नहीं। हमारे मन में जो होगा, हमें उनके ऊपर थोपना पड़ेगा।

जैनों के चौबीस तीथकर हैं। उनमें एक तीथकर मल्लिनाथ हैं। दिगंबर कहते हैं, वह पुरुष हैं मल्लिनाथ। श्वेतांबर कहते हैं कि वह मल्लीबाई है, स्त्री है। बड़ा मजा है। यह भी संदिग्ध हो गया है कि कोई आदमी स्त्री था कि पुरुष। अजीब इतिहास लिख रहे हैं आप, कि यह भी पक्का नहीं है कि एक तीथकर स्त्री था कि पुरुष। नहीं, यह तो पक्का रहा होगा, लेकिन दिगंबरों की मान्यता यह है कि स्त्री मोक्ष जा ही नहीं सकती तो फिर तीथकर स्त्री कैसे हो सकती है? स्त्री रही होगी तो उसने मल्लीबाई को मल्लिनाथ कर डाला, क्योंकि वह तो अपनी धारणा के हिसाब से उनको खड़ा होना पड़ेगा, तीथकर को। महावीर की शादी हुई कि नहीं, महावीर को लड़की पैदा हुई कि नहीं, इसमें भी झगड़े हैं। श्वेतांबर कहते हैं कि शादी हुई, लड़की हुई, दामाद था। दिगंबर कहते हैं, यह कभी हुआ ही नहीं। तीथकर जैसा आदमी और शादी करेगा, बाल ब्रह्मचारी। तो बाल ब्रह्मचारी की जिसकी धारणा है, थोप देंगे। मानने को राजी नहीं हैं कि उनकी स्त्री थी या उनके लड़की हुई है। यह सवाल ही नहीं, यह बात गलत है। अब एक ही महावीर को मानने वाले, दो वर्ग! अजीब बातें कर रहे हैं। यह क्या है?

हम अपनी धारणा थोपते हैं शास्त्रों पर, सिद्धांतों पर, महापुरुषों पर। हम पूजा कर रहे हैं या अत्याचार कर रहे हैं? यह क्रिमिनल एक्ट है, यह बिलकुल अपराधपूर्ण है और मुल्क को सख्ती से मुमानियत होनी चाहिए कि कोई आदमी कृष्ण की तरफ से बोलने का हकदार नहीं है, न महावीर की तरफ से अपनी बात कहे। अगर महावीर के लिए भी कहना है तो यह कहे कि यह मैं कहता हूं महावीर के संबंध में। महावीर कहते होंगे कि नहीं कहते होंगे, मुझे कुछ भी पता नहीं है। हम वही समझ सकते हैं, जो हमारी स्थिति है।

एक दिन, एक रात बुद्ध प्रवचन करते थे। प्रवचन के बाद रोज का उनका नियम था कि वह भिक्षुओं को सोने के पहले कहते कि अब जाओ रात्रि का अंतिम कार्य करो। वे दस हजार भिक्षु उनके साथ होते थे और रात्रि का अंतिम कार्य ध्यान था। सोने के पहले ध्यान करो, फिर सो जाओ। तो रोज-रोज कहने की यह जरूरत न थी कि ध्यान करो। तो वे इतना कहते कि जाओ, रात्रि का अंतिम कार्य करो। उस दिन कोई चोर भी आया था सांझ को, एक वेश्या भी आई थी। चोर ने सुना कि जाओ और रात्रि का अंतिम कार्य करो और उसने कहा, बहुत रात्रि हो गई, चांद कितना चढ़ गया है। जाऊं अपना धंधा करूं। वैसे रात भर गंवा दूंगा धर्म में, तो मुश्किल हो जाएगी। धर्म में थोड़ा-बहुत वक्त गंवाया जा सकता है, फिर धंधा करने जाना ही पड़ता है, चाहे चोर हो, चाहे साहूकार हो। वेश्या ने सुना कि रात्रि हो गई है, अंतिम कार्य करो। वेश्या बोली, अरे, ग्राहक आ चुके होंगे, मैं जाऊं! बुद्ध ने एक ही बात कही। भिक्षु ध्यान करने चले गए, चोर चोरी करने चला गया, वेश्या अपनी दुकान पर चली गई। बुद्ध ने जो कहा था, वह एक था, लेकिन व्याख्याएं तीन हो गइ।

जो कहा जाता है वह एक हैं, जितने लोग सुनते हैं व्याख्याएं उतनी हो जाती हैं। लेकिन, कृपा करके अपनी व्याख्या को किसी के ऊपर न थोपें, इतना ही कहें, ऐसा मैं समझता हूं। लेकिन, इस मुल्क में थोपा जा रहा है, निरंतर थोपा जा रहा है। इस मुल्क में कोई गीता की टीका न लिखे तो वह ज्ञानी ही नहीं है। कोई गीता की टीका लिखे तभी ज्ञानी हो सकता है। और अगर कभी भी कहीं अदालत होगी, मोक्ष में, तो ये गीता के टीकाकार एक-एक बंधे हुए नजर आएंगे, क्योंकि कृष्ण इन पर मुकदमा चलाएंगे कि सज्जन, तुम मेरे पीछे क्यों पड़े थे? मुझे जो कहना था वह मैंने कह दिया था, तुम कृपा करते। मैंने कह दी थी बात, पूरी तरह। मेरी बात साफ थी। तुम कैसे अर्थ समझाने गए बीच में, कि इसका यह अर्थ है।

यह जो प्राचीनवादिता, यह जो प्राचीन का मोह, यह जो अतीत को जकड़ कर पकड़ लेना, यह हम कब तोड़ेंगे? क्या हमको दिखाई नहीं पड़ता कि सारा जगत आगे बढ़ता चला जा रहा है, भविष्योन्मुख है? हम अतीत के मोह में मर जाएंगे, मर ही गए हैं, करीब-करीब मर गए हैं। इकबाल ने गाया है कि 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी' अब इकबाल तो मर चुके अन्यथा उनसे मिल कर कहता कि महाशय, कुछ भी बात नहीं है। बात कुल इतनी है कि हस्ती बहुत पहले मिट चुकी, तो हम मिटें भी तो मिटें क्या? खाक? मिटने के लिए हस्ती चाहिए ने पहले? आदमी जिंदा हो तो मर सकता है और मर ही गया हो तो अब क्या करेगा? मरने के लिए भी जिंदगी चाहिए। मरा हुआ आदमी फिर नहीं मरता। एक दफा मर गया,

फिर तो मरते ही नहीं। यह कौम इसलिए नहीं कि हमारी कोई बड़ी खूबी है जिससे हमारी हैसियत नहीं मिटती। हमारी खूबी यह है कि हैसियत हम खो चुके, अतीत के साथ। हमारी कोई मौजूदा हैसियत नहीं है, हमारी कोई वर्तमान प्रतिभा नहीं है, हमारी सारी प्रतिभा अतीत में खो चुकी है। आज क्या है हमारे पास? अभी क्या है? वर्तमान संपत्ति क्या है हमारे व्यक्तित्व की, वह हमारी खो चुकी इसलिए मिटने को कुछ बचा नहीं। लेकिन यह दुखद है और गांधी की चिंतन फिर पुरातन की तरफ ले जाने वाला है। देश को ले जाना है आगे, रोज-रोज आगे। रोज भूलते जाना है उसको, जो बीत गया है।

एक गांव में एक पुराना चर्च था। वह कहानी कह कर और थोड़ी सी बातें कह करके मैं अपनी बात पूरी करूंगा। एक गांव में एक चर्च था। एक बहुत पुराना गांव और बहुत पुराना चर्च। वह चर्च इतना पुराना था कि हवाएं चलती थीं तो उसकी दीवालें हिलती थीं कि अब गिरीं, तब गिरीं। बादल गरजते थे तो लगता था कि गिर गया चर्च, बिजली चमकती थी तो लगता कि गिरेगी चर्च पर। ऐसे चर्च में कौन प्रार्थना करने जाएगा? कोई प्रार्थना करने नहीं जाता था। प्रार्थना करने वाले जीवन को दांव पर लगा कर तो प्रार्थना करने जाते नहीं। सुविधा होती है तो जाते हैं। जिनको सुविधा होती है वे ज्यादा जाते हैं, जिनको कम सुविधा होती है वे कम जाते हैं। लेकिन, वहां, तो जान को खतरा था, वहां कौन प्रार्थना करने जाता। चर्च खाली पड़ा था। चर्च के संरक्षकों की कमेटी मिली। उन्होंने कहा बड़ी मुश्किल है। वह कमेटी भी बाहर मिली, वह भी कोई भीतर नहीं मिली, क्योंकि नेता हमेशा अनुयायियों से ज्यादा होशियार होते हैं। जहां अनुयायी नहीं जाते वहां नेता जाते ही नहीं। आप इस खयाल में मत रहना कि नेता अनुयायियों के आगे जाते हैं। यह सिर्फ भ्रम है अखबार में।

नेता हमेशा अनुयायियों के पीछे जाते हैं और फॉलो करते हैं फॉलोअर को। जब देख लेते हैं कि अनुयायी यहां जा रहा है तब वे उचक कर भाग कर साथ हो जाते हैं। तो आपको आगे दिखाई पड़ते हैं, वे होते हैं हमेशा पीछे। पहले पता लगा लेते हैं कि अनुयायी क्या मानता है, क्या विश्वास करता है, वही कहते हैं जो आप मानते हैं। जो आप मानेंगे वही बात करते हैं और उसी तरह जीते हैं। तो, वह भी बेचारे नेता थे, कह काहे के लिए भीतर जाते जहां अनुयायी नहीं जाते थे। वे भी बाहर मिले, दूर कंपाउंड से कि कहीं कोई दीवाल गिर न जाए। उन्होंने वहां तय किया कि लोग बड़े खराब हो गए हैं, कोई मंदिर में आता ही नहीं, लोग बिलकुल नास्तिक हो गए हैं, लोग बिलकुल अधार्मिक हो गए हैं और सबने सिर हिलाया कि बात सच है। हालांकि उनमें से भी कभी कोई भी नहीं आता था।

लेकिन, एक जवान आदमी पहुंच गया था। उसने कहा कि महाशयो, सिर्फ लोगों को दोष मत दो, चर्च इतना पुराना हो गया है कि उसमें जाना खतरनाक है। देखें, हम भी अपनी कमेटी की बैठक बाहर कर रहे हैं, चलें हम भीतर। वे लोग बोले कि यह तो सच है, चर्च बहुत पुराना हो गया है। क्या करना चाहिए? तो कमेटी ने एक प्रस्ताव पास किया कि अब बहुत हो गई प्रतीक्षा। तब फिर अब पुराने चर्च में कोई नहीं जाएगा। तो हम सर्व सम्मति से एक प्रस्ताव पास करते हैं कि पुराना चर्च गिरा दिया जाना चाहिए। उन्होंने दूसरा प्रस्ताव भी पास किया और पुराने को गिरा कर हमें एक नया चर्च बनाना है। यह भी सर्वसम्मति से पास हो गया और तीसरा प्रस्ताव पास किया विस्तार से और उसमें लिखा कि हम नया चर्च वैसा ही बनाएंगे जैसा पुराना था, ठीक पुराने जैसा। वैसा ही मकान, उसी नींव पर, नींव पुरानी रहेगी, चर्च नया रहेगा, नये दरवाजे नहीं। ठीक पुराने चर्च जैसा ही, पुरानी जगह पर ही, पुरानी दीवालों के अनुकूल दीवालें, पुरानी नींव पर नई दीवालें, ऐसा हम चर्च बनाएंगे। इसे भी सर्वसम्मति से स्वीकार किया और फिर चौथा प्रस्ताव स्वीकार किया कि जब तक नया चर्च न बन जाए, तब तक पुराना गिराएंगे नहीं।

वह चर्च अभी तक खड़ा हुआ है। वह कब गिरेगा? वह कभी नहीं गिरेगा। जो पुराने को गिराने की सामर्थ्य नहीं रखते वे नये का निर्माण करने की सामर्थ्य खो देते हैं। जो पुराने को ध्वंस करने की हिम्मत रखते हैं केवल वे ही नये का सृजन कर पाते हैं। जो पुराने की मौत देखते हैं वे ही केवल नये को जन्म दे सकते हैं। और हम पुराने की मृत्यु देखने में असमर्थ हो गए हैं। हम पुराने को नष्ट करने में असमर्थ हो गए हैं, इसलिए नये का जन्म नहीं हो पा रहा है।

लेकिन ध्यान रहे, जीवन नये के साथ है, पुराने के साथ मौत है। अगर मर ही जाना हो बिलकुल, तो पुराने को कस कर पकड़ लेना चाहिए। घर में मां मर जाती है, पिता मर जाते हैं, बहुत प्यारे हैं, लेकिन फिर मरते ही लाश को घर में नहीं रखते। फिर यह नहीं कहते कि मां बहुत प्यारी थी। हम लाश को कैसे घर के बाहर ले जाएं, हम कैसे मरघट ले जाएं। हम

तो इसी से चिपके हुए बैठे रहेंगे। नहीं, फिर लाश को ले जाना पड़ता है, दुख में, पीड़ा में। मरघट पर आग लगानी पड़ती है, जलाना पड़ता है उस मां को जिससे इतना प्रेम किया था, जिससे जनम पाया था, जो सब कुछ थी। वह मर गई तो उन्हें भी मरघट पर ले जाना पड़ता है, मजबूरी में जलाना पड़ता है। रोते हैं, लेकिन जला कर वापस लौट आते हैं।

अगर किसी घर में लोग पागल हो जाएं और जितने बूढ़े लोग मरते जाएं उनकी लाश इकट्ठी कर लें तो उस घर की आप सोचते हैं, क्या हालत होगी? उस घर में नये बच्चे पैदा होने के पहले इनकार कर देंगे कि क्षमा करिए, इन लाशों के इस ढेर में हम जनम नहीं लेना चाहते। और, नये बच्चे पैदा भी हो जाएंगे तो पैदा होते ही पागल हो जाएंगे, क्योंकि जिस घर में इतनी लाशें हैं वहां नये बच्चे पागल होने कि सिवाय और कुछ नहीं हो सकते। लेकिन नहीं, लाशें हम जला आते हैं। लेकिन, इतिहास की लाशें हम संजोते चले जाते हैं, मस्तिष्क पर रखते चले जाते हैं। इतिहास भी कभी जला देने जैसा हो जाता है, इतिहास भी कभी भूल जाने जैसा हो जाता है, अतीत भी कभी मरघट पर पहुंचाने जैसा हो जाता है, ताकि शक्ति और ऊर्जा नये के जन्म की दिशा में अग्रसर हो सके।

नहीं, धर्म नहीं कहता है कि पीछे जाओ। धर्म तो कहता है आगे और आगे। और अंत में अननोन, अज्ञात, परमात्मा है, वहां चलना है। निकलती है गंगा हिमालय से, गंगोत्री से भागती है। गंगोत्री पर रुक नहीं जाती। अनजान पहाड़ों में, घाटियों में, वादियों में भागती, दौड़ती है, पत्थरों से टकराती है। न मालूम कितने रास्ते हैं। रास्ते में न कोई पुलिसवाला उसे मिलता है, जिससे पूछ ले कि सागर कहां है, न कोई पुरोहित मिलता है कि पूछ ले कि सागर कहां हैं। कोई नहीं मिलता, कोई गाइड नहीं, कोई मार्गदर्शक नहीं, भागती चली जाती है। अपने भागने पर भरोसा है। भागती है, अनजान भागती रहती है और एक दिन सागर के पास पहुंच जाती है। गंगोत्री में रुक जाती तो सागर नहीं हो सकती थी। गंगोत्री में नहीं रुकी, भागी, तो गंगोत्री में क्षीण सी धारा थी, सागर के पास पहुंच कर विराट हो गई और सागर में गिरते ही तो सागर हो गई। जाना है अनंत तक, जाना है आगे और आगे भविष्य में वहां जहां अनंत का सागर है। जो पीछे रुक गए हैं, उन्होंने अपने हाथ से अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली है।

मैं भविष्य को, उस आने वाले सूरज को जो उगेगा, उस भवन को जो हम बनाएंगे, उसके लिए कामना जगाना चाहता हूं, उसके लिए आकांक्षा और अभीप्सा जगाना चाहता हूं। लेकिन, हमारे सारे शिक्षक पुराने से बंधे हैं, हमारे सारे शिक्षक प्रतिगामी हैं, हमारे सारे शिक्षक रिएक्शनरी हैं, हमारे सारे शिक्षक कहते हैं, वह जो था, वही ठीक था। एक बार इस देश को निर्णय करना होगा कि जो था अगर वह ठीक था तो हम गलत क्यों हो गए हैं? जो था, अगर वह ठीक था तो हम उसी से पैदा हुए हैं, उसी के तो बाइ-प्रोडक्ट हैं। जो था अगर वह ठीक था तो हम ऐसे क्यों हैं? बेटा सबूत है अपने बाप का। अगर बाप ठीक था तो यह बेटा गड़बड़ कैसे? फल सबूत है, अपने बीज का। अगर बीज मीठा था तो फल कड़वा कैसे?

फल यह नहीं कह सकता कि बीज तो ठीक था, लेकिन हम गड़बड़ हो गए हैं। नहीं, बीज से ही फूल होते हैं। बीज तो खो गए हैं, उनका तो अब कुछ पता नहीं। अब तो फल सबूत देंगे कि बीज कैसे थे। हम सबूत हैं, अपने पूरे अतीत के। हमारे अतिरिक्त और कोई सबूत नहीं है। हम कैसे हैं, यह सबूत है हमारे पूरे इतिहास का। क्योंकि उस पूरे इतिहास की यात्रा से हम जन्मे हैं, उस यात्रा से हम पैदा हुए हैं। अगर वह ठीक था तो हम गलत क्यों हैं? अगर हम गलते हैं तो हमें जानना पडेगा, हालांकि इस बात को जानने में पीड़ा होती है, बड़ा दुख होता है कि हम अगर गलत हैं तो हमारे अतीत की प्रक्रिया गलत थी और हमें नई प्रक्रिया और नई जीवन दिशा को चुनना जरूरी हो गया है।

देख कबीरा रोया

चौथा प्रवचन

संचेतना के ठोस आयाम

मित्रों ने बहुत से प्रश्न पूछे हैं।

कुछ मित्रों ने कहा है कि गांधीजी यंत्र के विरोध में नहीं थे और मैंने कल सांझ कहा कि गांधीजी यंत्र, विकसित तकनीक के विरोध में थे।

## देख कबीरा रोया

गांधी की उन्नीस सौ पांच से लेकर उन्नीस सौ अड़तालीस तक की चिंतना को हम देखेंगे तो इसमें बहुत फर्क होता हुआ मालूम पड़ता है। वे बहुत सजग निरीक्षक थे। वे रोज रोज, उन्हें जो गलत दिखाई पड़ता, उसे छोड़ देते हैं, जो ठीक दिखाई पड़ता उसे स्वीकार लिए हैं। धीरे-धीरे उनका यंत्र-विरोध कम हुआ था, लेकिन समाप्त नहीं हो गया था। उन्नीस सौ पैंतालीस में पंडित नेहरू को लिखे किसी पत्र में उन्होंने कहा है कि उन्नीस सौ पांच में लिखी गई किताब 'हिंद स्वराज्य' से मैं अभी भी अक्षरशः सहमत हूं। उस किताब में उन्होंने यंत्रों के संबंध में बहुत अवैज्ञानिक दृष्टि प्रकट की है। रेल, टेलीफोन, टेलिग्राफ सभी के प्रति शत्रुता प्रकट की है। इसलिए यंत्रों का विरोध बाद में वे शायद प्रकट तो कम करते थे, लेकिन वह उनके भीतर भलीभांति मौजूद था और मिट ही नहीं गया था। फिर भी आशा की जा सकती है कि यदि वे बीस वर्ष भी जीवित रहते तो शायद उनका यंत्र-विरोध और भी कम हो गया होता।

लेकिन वे जीवित नहीं रहे और हमारा दुर्भाग्य सदा से यह है कि जहां हमारा महापुरुष मरता है वहीं उसका जीवन-चिंतन भी हम दफना देते हैं। महापुरुष तो समाप्त हो जाते हैं। उनकी जीवन-चिंतना आगे बढ़ती रहनी चाहिए। जहां महापुरुष समाप्त होते हैं वहीं उनका जीवन-दर्शन समाप्त नहीं हो जाना चाहिए। महापुरुष का शरीर समाप्त हो जाता है, उसका जीवन-चिंतन देश को आगे बढ़ाते रहना चाहिए। लेकिन हम इतने भयभीत हैं, हम इतने डरे हुए लोग हैं कि हम चिंतन को आगे ले जाना नहीं चाहते, हम चिंतन को वहीं ठोंककर रोक देना चाहते हैं, उसके ही विरोध में मैं कह रहा हूं।

यह प्रश्न गांधीजी का ही नहीं है। इस पूरे देख की चिंतना यंत्र-विरोधी रही है। यंत्र-विरोधी हमारी चेतना नहीं होती तो हमने यंत्र बहुत पहले विकसित कर लिए होते। हमारे पास बुद्धि की कमी नहीं थी। हिंदुस्तान में इतने बुद्धिमान आदमी पैदा हुए हैं जितना कोई भी देश गौरव नहीं कर सकता है। बुद्ध और महावीर, नागार्जुन और धर्मकीर्ति, वसुबंधु और दिग्नान, शंकर और रामानुज, वल्लभ और निम्बार्क हमारे पास अदभुत बुद्धिमान लोगों का लंबा सिलसिला है। इतने बुद्धिमान लोग पैदा हुए, लेकिन एक आइंस्टीन और एक न्यूटन हमने पैदा नहीं किया। तीन हजार वर्ष के इतिहास में हमारे पास एक न्यूटन, एक आइंस्टीन कहने जैसा नहीं है। आइंस्टीन और न्यूटन से भी महत्वपूर्ण विचारक हमारे पास थे, लेकिन हमारे देश के विचार ने कभी भी वैज्ञानिक दिशा में कोई गति नहीं की। यह आकस्मिक नहीं है, यह एक्सिडेंटल नहीं है। इसके पीछे हमारे चिंतन का हाथ है। हमारी मान्यता यही है कि मनुष्य को विस्तार से बचना चाहिए। हमारी धारणा यह रही है कि जितनी चादर हो उस चादर के भीतर अपने पैर सिकोड़कर रखना चाहिए, चादर के बाहर पैर नहीं निकलने चाहिए। बुद्धिमान हम उसको कहते हैं जो चादर के भीतर रहता है। चादर के भीतर हम कितने सिकुड़ कर रहें, हम रोज बड़े होते जाते हैं और चादर रोज छोटी होती जाती है। जीना एक पीड़ा और कठिनाई हो जाती है लेकिन चादर के बाहर पैर नहीं फैलाने हैं।

जीवन का नियम है विस्तार, और हमने संकोच के नियम को आधार बनाया हुआ है। जो समाज विस्तार के सिद्धांत को स्वीकार किए हुए हैं उन्होंने यंत्र को विकसित किया है, क्योंकि यंत्र मनुष्य का विस्तार है। हमारे पैर हैं, हम पैर से चलते हैं। पैर से हम कितने तेज चल सकते हैं? कार हमारे पैर का विस्तार है, हमने पैर का और विस्तार किया और कार तेज गति से दौड़ती है। हवाई जहाज हमारे पैर का और भी बड़ा विस्तार है, अंतरिक्ष यान हमारे पैर का और भी बड़ा विस्तार है। यंत्र का अर्थ क्या है?

यंत्र का अर्थ है कि जो मनुष्य को उपलब्ध नहीं हैं उपकरण, उनका विस्तार या जो उपकरण उपलब्ध हैं उनका विस्तार।

अगर हम संतोष को स्वीकार करते हैं, संकोच को कि जीवन जैसा है, जितना है उतने ही चादर के भीतर उसे जी लेना है तो हम यांत्रिक, वैज्ञानिक, टेक्नालॉजिकल माइंड पैदा नहीं कर सकते। वह सवाल बहुत बड़ा नहीं है कि गांधी यंत्र के विरोध में हैं या पक्ष में हैं। चर्खा भी यंत्र है। दलील तो दी जा सकती है कि तकली भी यंत्र है। यंत्र तो है ही। किसी दिन वे भी मशीन थीं, आज भी मशीन तो हैं ही। छोटी हैं, दस हजार वर्ष पुरानी हैं। इससे क्या फर्क पड़ता है। यंत्र तो है ही। नहीं, सवाल यंत्र के विरोध का नहीं है, सवाल टेक्नालॉजिकल माइंड और एंटी-टेक्नालॉजिकल माइंड का है। सवाल है कि तकनीकी मस्तिष्क में हम विश्वास करते हैं या तकनीकी-विरोधी मस्तिष्क में विश्वास करते हैं।

# देख कबीरा रोया

चीन ने कोई तीन हजार वर्ष पहले मशीनें ईजाद कर ली थी, लेकिन चीन में यंत्र-विरोधी विचारणा का प्रभाव था। यह यंत्र विरोधी धारणा कहती थी कि यंत्र की कोई जरूरत नहीं है। आदमी परिपूर्ण है। परमात्मा ने आदमी को पूरी तरह पैदा किया है। उसके किसी चीज की कोई जरूरत नहीं है। वह अपने सारे अंगों से ही सारा काम कर सकता है। इस दर्शन का इतना प्रभाव पड़ा है कि तीन हजार वर्ष पहले जो मशीनें चीन ने विकसित की थीं, वे वहीं रह गइ। उनकी आगे कोई गति न हो सकी। उन्हीं मशीनों को यूरोप ने पिछले तीन सौ वर्षों में विकसित किया और यूरोप ने धन के अंबार लग दिए। चीन ने अगर तीन हजार वर्ष पहले वे मशीनें विकसित की होती तो चीन शायद पृथ्वी पर आज सभ्यता में अग्रणी हो सकता था, लेकिन गलत दर्शन के परिणाम से यंत्र वहीं ठहर गए और रुक गए।

हिंदुस्तान बैलगाड़ी पर चल रहा है हजारों साल से। जो बैलगाड़ी के चाक का नियम है, वही हवाई जहाज का नियम है। उसमें कोई बुनियादी फर्क नहीं पड़ गया है, उसका ही विस्तार है। लेकिन हम बैलगाड़ी पर ही रुक गए। हमारा मस्तिष्क यंत्र के विस्तार की कामना से भरा हुआ नहीं है और गांधी ने फिर हमें विकेंद्रीकरण सिखाया है। और विकेंद्रीकरण का क्या मतलब है? डिसेंट्रलाइजेशन का क्या मतलब होता है? विकेंद्रीकरण का मतलब होता है कि छोटे यंत्र, बड़े यंत्र नहीं। क्योंकि जितने बड़े यंत्र होंगे उतना केंद्रीकरण होगा। जितना बड़ा केंद्रीकरण होगा उतने बड़े यंत्रों का हम प्रयोग कर सकते हैं। जितनी विकेंद्रित व्यवस्था होगी उतने छोटे यंत्र होंगे, एक-एक आदमी जिनको चला सके, दो-चार आदमी मिल कर चला सकें, छोटे-छोटे गांव में चलाएं जा सकें। विकेंद्रीकरण का अर्थ होगा कि बहुत बड़े यंत्रों का प्रयोग नहीं हो सकता है और जो दुनिया है वह बहुत बड़े यंत्रों पर निर्भर होगी।

फिर मेरा यह कहना है, यह सवाल अगर यंत्रों का ही होता तो मैं गांधीजी का विरोध भी नहीं करता। यह सवाल यंत्रों का ही नहीं मनुष्य की चेतना के विकास का भी है। शायद आपको पता न हो हम जितने बड़े उत्पादन के यंत्रों का प्रयोग करते हैं, मनुष्य के मस्तिष्क की अभिव्यक्ति और विकास की संभावना उतनी ही बढ़ती है। यह एकदम से आश्चर्यजनक मालूम पड़ेगा। लेकिन आपने कभी खयाल किया है कि एक आदमी बैलगाड़ी चलाता है जीवन भर। बैलगाड़ी चलाने के लिए कोई बुद्धिमत्ता कि लिए चुनौती नहीं मिलती। चुनौती का कोई सवाल नहीं है, कोई चैलेंज नहीं है वहां, लेकिन उसी आदमी को कल हवाई जहाज चलाना पड़े तो हवाई जहाज मस्तिष्क को ज्यादा चुनौती देता है, ज्यादा समझ, ज्यादा अवेयरनेस, ज्यादा होश, ज्यादा कांशसनेस रखनी पड़ती है, हमारे मस्तिष्क को उतनी चुनौती मिलती है और मस्तिष्क उसी अनुपात में विकसित होता है। जिन कौमों ने छोटे यंत्रों या यंत्रों के बिना काम चलाया, उनकी सामाजिक चेतना और मस्तिष्क के विकास में अवरोध पड़ा है।

पहली दफा जो बंदर जमीन पर खड़ा हुआ होगा दो पैर से, बाकी बंदर उस पर हंसे होंगे कि यह बिलकुल नासमझ है, लेकिन डार्विन कहता है कि वह बंदर जो दो पैर से खड़े हो गए—पहले तो बंदर हंसे होंगे और उन्होंने समझा होगा कि यह पागल है। वह ऑकवर्ड भी लगा होगा कि दो पैर से खड़े हुआ! सब बंदर चार पैर से चलने वाले थे, लेकिन जो बंदर दो पैर से खड़ा हो गया उसने टेक्नोलॉजिकल रेवल्यूशन को जन्म दे दिया। उसने तकनीक के विकास की पहली सीढ़ी रख दी। उसने यह कहा है कि जो काम दो पैर से हो सकता है उसको चार हाथ-पैर से करना गलत है। तकनीक शुरू हो गया। उसने दो हाथ मुक्त कर लिए और दो से चलने का काम करने लगा।

क्या आपको पता है, अगर उस बंदर ने दो हाथ मुक्त की नहीं किए होते तो मनुष्य की कोई सभ्यता का कभी जन्म नहीं होता। ये जो दो हाथ मुक्त हो गए, उन दो खाली हाथों ने मनुष्य की सारी सभ्यता विकसित की है। बंदर ही रुक गए हैं चार हाथ-पैर से चलने वाले। दो हाथ-पैर से चलने वाले बंदर ने जमीन-आसमान का फर्क पैदा कर लिया। आज कोई कहे कि बंदर और हम एक ही जाति के हैं, तो हमारा मन मानने को राजी नहीं होता हमारे और बंदर के बीच इतना फासला पड़ गया, लेकिन यह फासला एक टेक्नोलॉजिकल फर्क से पड़ा कि कुछ बंदरों ने दो हाथ मुक्त कर लिए। दो हाथ खाली हो गए स्वतंत्र हो गए काम करने को। दो पैर से काम चलने लगा और उन दो स्वतंत्र हाथों ने सारी सभ्यता, मकान, मंदिर, ताज, मस्जिद, साहित्य, संगीत, धर्म, इन सबकी फिक्र की।

## देख कबीरा रोया

बहुत शीघ्र संभावना है कि मनुष्य समस्त यंत्रों को स्वचालित निर्मित कर लेगा। वे कहते हैं कि आनेवाले पचास वर्षों में हमारे सामने सबसे बड़ा सवाल यह होगा कि हम यंत्रों से सब पैदा कर लेंगे। मनुष्य के श्रम की कोई जरूरत न रह जाएगी। मनुष्य खाली हो जाएगा। वह खाली मनुष्य क्या करेगा, यह हमारे सामने सवाल है। अगर सारे यंत्र स्वचालित हो गए और मनुष्य का श्रम उनसे मुक्त हो गया तो मेरी दृष्टि में मनुष्य की चेतना में आमूलभूत परिवर्तन हो जाएगा, क्योंकि पहली दफा चेतना पृथ्वी से पूरी तरह मुक्त हो जाएगी—श्रम से और उस श्रम से शून्य अवस्था में जो खोज, जो यात्रा चेतना की होगी, वह उन्हें किस लोक में ले जाएगी कहना कठिन है।

शायद आपको पता नहीं कि जगत की सारी संस्कृति लिज़र, विश्राम से पैदा हुई है। जगत का सारा सत्य लेजर, विश्राम से पैदा हुआ है। जगत में जो भी श्रेष्ठतम उपलब्धि हुई है वह उन लोगों से उपलब्ध हुई है जो श्रम से किसी भांति मुक्त हो गए। एथेंस में जितनी संस्कृति विकसित हुई, वह इसलिए विकसित हो सकी कि एथेंस में एक वर्ग, गुलामों के वर्ग ने सारा श्रम किया और दूसरे अभिजात वर्ग ने, बुर्जुआ ने कोई श्रम नहीं किया। वे भी श्रमहीन लोग थे। वे भी तो कुछ करेंगे जीने के लिए। उन्होंने फिलासफी लिखी। उन्होंने साक्रेटीज, अरस्तू और प्लेटो को जन्म दिया।

भारत में भी ब्राह्मणों ने हिंदुस्तान के सारे साहित्य को, सारे विचार को जन्म दिया, क्योंकि ब्राह्मण श्रम से मुक्त हो गया था, अन्यथा कोई उपाय न था। शूद्रों ने एक उपनिषद लिखी? शूद्रों ने आयुर्वेद खोजा? शूद्रों के ऊपर क्या उपलब्धि है भारत में? शूद्र के नाम पर कोई उपलब्धि नहीं है बेचारे के क्योंकि वह चौबीस घंटे श्रम में लीन है।

हिंदुस्तान की सारी संस्कृति का जन्मदाता ब्राह्मण है। और ब्राह्मण क्यों हैं जन्मदाता? ब्राह्मण इसलिए जन्मदाता है कि उसके हाथ से सारा श्रम समाप्त हो गया, उसका व्यक्तित्व पूरा का पूरा विश्राममय हो गया, चेतना को ऊपर उठाने का मौका मिल गया, चेतना आकाश की यात्रा करने लगी।

मनुष्य-जाति के जीवन में एक आध्यात्मिक क्रांति हो जाएगी उस दिन, जिस दिन हम सारी मनुष्य-जाति को श्रम से मुक्त कर लेंगे। जब तक हम मनुष्य-जाति को श्रम से मुक्त नहीं करते हैं, तब तक मनुष्य के जीवन में बहुत बुनियादी रूपांतर नहीं हो सकता है।

गांधीजी के जो विश्वास हैं, उनके हिसाब से मनुष्य जाति श्रम से कभी मुक्त नहीं होगी। अगर एक आदमी अपने लायक ही कपड़ा बनाना चाहे तो कम से कम उसे तीन-चार घंटे रोज चरखा चलाना पड़ेगा। वर्ष भर में अपने लायक कपड़ा बनाना चाहे तो उसे तीन-चार घंटे चरखा चला लेना पड़ेगा। अगर उसके ऊपर निर्भर कोई एक व्यक्ति है तो उसके आठ घंटे चरखा चलाने में व्यतीत हो जाना चाहिए। जो आदमी आठ घंटे चरखा चलाएगा—सिर्फ कपड़ा बनाने के लिए वह और भी कुछ करेगा या नहीं और इतनी क्षुद्र चीजों में उसकी जाति के जीवन में चेतना के जन्म, चेतना के विकास का प्रश्न है।

अभी अमेरिका और रूस ने जो अंतरिक्ष यान भेजे, उप अंतरिक्ष यानों में जो यात्री गए, उनके अनुभव आपको पता हैं? उन्होंने लौट कर क्या खबर दी हैं? उन्होंने खबरें दी है कि अंतरिक्ष में परिपूर्ण शून्य है, सन्नाटा है। वहां टोटल साइलेंस है, वहां कोई आवाज नहीं, क्योंकि वहां कोई हवा नहीं। अगर बोलिएगा भी तो ओंठ हिलेंगे, आवाज नहीं होगी। वहां कभी कोई आवाज नहीं हुई।

अंतरिक्ष परिपूर्ण शून्य है। उस शून्य में जा कर अंतरिक्ष यात्री को क्या अनुभव हुआ कि यह मस्तिष्क पूरा का पूरा फटने लगता है, घबड़ाने लगता है। इतनी शांति कभी देखी नहीं, इतनी शांति कभी झेली नहीं। हमेशा शोरगुल, आवाज, रात सोते हैं तब भी बाहर आवाजें चल रही हैं, उनके मस्तिष्क को आदत पड़ गई है। मस्तिष्क उनसे कंडीशंड हो गया है।

अंतरिक्ष में जाने पर उसको पता चला कि मस्तिष्क तो फट जाएगा। इतनी शांति को सहना मुश्किल है। तो रूस से और अमेरिका में उन्होंने कृत्रिम घर बनाए हैं जिनमें इतनी शांति पैदा करने की कोशिश की है जितनी अंतरिक्ष में हैं। वहां यात्री को पहले ट्रेनिंग दी जाएगी, लेकिन उस कमरे में बैठ कर आधे घंटे, पंद्रह मिनट में घबड़ा कर आदमी बाहर आ जाता है कि वहां घबड़ाहट होती है, लेकिन धीरे-धीरे उस शून्य को सहने की सामर्थ्य उसकी विकसित हो जाएगी। उसका अर्थ आप समझते हैं? उसका अर्थ यह है कि जो लोग अंतरिक्ष यान में यात्रा करेंगे उनके मस्तिष्क की बनावट में बुनियादी फर्क

हो जाएगा उतनी शांति को सहने के कारण और यह हो सकता है कि एक बिलकुल दूसरे तरह के मनुष्य का जन्म हो जाए जिसकी हमें कोई कल्पना भी नहीं हो सकती।

जीवन और उत्पादन के साधन, वाहन-कम्युनिकेशन के साधन अंततः चेतना में परिवर्तन लाते हैं। अपने देखा, जो जंगल में आदिवासी रहता है, उस आदिवासी ने कोई साक्रेटीज पैदा किया? कोई बुद्ध पैदा किया? कोई महावीर पैदा किया? कोई गांधी पैदा किया? वह कैसे पैदा करेगा? उसके उत्पादन के साधन इतने आदिम हैं कि उन आदिम उत्पादनों के साथ मस्तिष्क इतनी ऊंचाइयां नहीं ले सकता है जितनी ऊंचाइयां विकसित साधन के साथ ली जस सकती हैं। आपको खयाल है, आज भी हिंदुस्तान में श्री राधाकृष्णन व्यक्तियों को हम विचारक कहते हैं। श्री राधाकृष्णन टीकाकार हो सकते हैं, विचारक जरा भी नहीं। कोई एक मौलिक विचार को जन्म नहीं दिया है। पश्चिम में हाइडिगेर हैं, जास्पर्श है या सार्त्र है या कामू है या सरल है। इनकी कोटी का एक विचारक आप पैदा नहीं कर कर सकते हैं आज।

आप जिसको विचारक कहते हैं, क्या वही विचारक है? गीता पर एक आदमी टीका लिख देता है तो विचारक हो जाता है, लेकिन गीता पैदा कर सके ऐसा एक विचारक आप पैदा नहीं कर सकते हैं। बस टीकाकार पैदा कर सकते हैं। उन्हीं को विचारक मानकर शोरगुल मचाते रहते हैं। हाइडिगेर की हैसियत का एक विचारक हम पैदा नहीं कर सकते। उसका कारण? उसका कारण यह नहीं कि हमारे पास बुद्धि कम है, उसका कारण यह नहीं कि हमारे पास प्रतिभा नहीं है, उसका कारण है कि हमारा पूरा सामाजिक परिवेश उतनी प्रतिभा को चैलेंज देने वाला नहीं जहां से हाइडिगेर या जास्पर्श जैसे लोग पैदा हो सकें। लेकिन हम बैठे हुए हैं और हमारा विचार चरखा और तकली की प्रशंसा करता रहेगा और हम विचार करने को राजी नहीं हैं।

इस बात को समझ लेना आप ठीक से कि अगर पचास वर्ष में पश्चिम में सब स्वचालित यंत्र हो गए, अंतरिक्ष की यात्रा शुरू हुई तो इस बात का डर है कि पश्चिम में एक नए मनुष्य का, एक नई ह्यूमेनिटी का जन्म हो जाए और पूरब के लोगों में और पश्चिम के लोगों में इतना फासला पड़ जाए हजार दो हजार वर्षों में, जितना बंदर और आदमी के बीच फासला पैदा हो गया है। लेकिन हमें कोई बोध नहीं है इस बात का। हम कहेंगे, हम तो स्वावलंबन की बातें कर रह हैं। हम हमेशा से इस तरह की बात कर रहे हैं—हमेशा नुकसान उठाते रहे हैं, लेकिन हम जानने को भी राजी नहीं होना चाहते।

हिंदुस्तान एक हजार साल से गुलाम था और हजारों साल से निरंतर हारता रहा है, जीत का उसने कभी कोई सपना नहीं देखा, जीत का कभी मौका नहीं पाया। हम क्यों हारते रहे? कभी आपे सोचा? हम हारते इसलिए रहे हैं कि जब भी दुश्मन हमारे ऊपर आया, उसके पास युद्ध की विकसित टेक्नोलॉजी थी। हमारे पास विकसित टेक्नोलॉजी न थी। सिकंदर आया वह घोड़े पर सवार होकर आया। पोरस सिकंदर से कमजोर आदमी नहीं था और उसके बहादुर सैनिक थे, लेकिन पोरस के पास टेक्नोलॉजी जो थी वह अविकसित थी। वह हाथियों पर लड़ने गया था। हाथी कोई युद्ध का अस्त्र नहीं है। हाथी बारात निकालनी हो तो बहुत ठीक है, लेकिन युद्ध के मैदान पर हाथी पिछड़ा हुआ साधन है घोड़े के मुकाबले। घोड़ा तेज है, हाथी से ज्ञानवान है, ज्यादा चंचल है। हाथी जगह घेरता है, घोड़ा तेजी से गति करता है।

सिकंदर के मुकाबले पारस के हाथी मरे। सिकंदर से पारस नहीं हारा है और हाथी जब घबड़ा गए युद्ध में तो उन्होंने अपनी सेनाओं को कुचल डाला। बाबर हिंदुस्तान आया। बाबर के पास बारूद थी। हमारे पास बारूद का कोई उत्तर न था। बारूद से हारने के सिवाय कोई रास्ता न था। हम बाबर से नहीं हारे, हम बारूद से हरे। बाबर में हमें हराने की हिम्मत न थी, लेकिन हमारे पास कोई टेक्नीक न थी। अंग्रेज हिंदुस्तान में आए, हमारे पास बंदूकें थीं अंग्रेज के पास विकसित तोपें थीं। हम अंग्रेजों से नहीं हारे, बंदूकें तोपों से हारेंगी ही, इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं है।

और जब हम फिर वही बातें किये चले जा रहे हैं कि टेक्नोलॉजी नहीं, बड़े यंत्रों का क्या करना है, बड़े विकास का क्या करना है, चरखा-तकली से चलाना है, उसी से चला रहे हैं हम पांच हजार वर्षों से और रोज मात खाते रहे हैं। रोज जमीन चाटते रहते है, हमें बहुत शीघ्र बीस वर्षों में सारी दुनिया के सामने खड़े हो जाना है अन्यथा हम कहीं कि नहीं रह जाएंगे तो हम उसके विरोध में टूट पड़ेंगे कि हमारे महापुरुषों की आलोचना हो गई। यह महापुरुष की आलोचना का सवाल नहीं है, मुल्क की जिंदगी का सवाल है।

मैं जो विकसित टेक्नीक के पक्ष में बोल रहा हूं वह इसलिए नहीं कि मुझे चरखे से कोई दुश्मनी है, न तकली से मुझे दुश्मनी है, न मैं इस खयाल का हूं कि चरखा तकली चलने बंद हो जाने चाहिए। जब तक कोई उपाय नहीं है वह चले, लेकिन मजबूरी हो उनका चलाना, हमारा सिद्धांत नहीं। यही फर्क समझ लेना जरूरी है। विवशता हो हमारी, हम मजबूर हैं, इसलिए कुछ नहीं कर पा रहे हैं तो चला रहे हैं लेकिन जैसे ही मौका मिलेगा हम उनके मुक्त हो जाएंगे। यह हमारी दृष्टि हो, वे हमारे प्रतीक न बन जाएं। हमारी कमजोरी के प्रतीक हों, हम नहीं विकसित कर पाए इसके प्रतीक हों। उनको हम छाती का शृंगार न बना लें और यह न घोषणा करते फिरें कि हम बहुत ऊंचा काम कर रहे हैं।

नहीं, खादी से मेरा कोई विरोध नहीं है लेकिन खादी को मैं कोई आर्थिक संयोजन का सिद्धांत नहीं मानता हूं। खादी कोई आर्थिक चीज नहीं हो सकती। खादी का एक एस्थेटिक मूल्य हो सकता है, एक सौंदर्यगत मूल्य हो सकता है, किसी आदमी को हाथ से बनाई हुई चीज पहनने में रस हो सकता है। दुनिया कितनी ही विकसित हो जाए तो भी घर के उद्योग जारी रहेंगे।

होटलों में कितना ही अच्छा खाना बनने लगे, तो भी कोई गृहिणी अपने घर खाना पसंद करेगी यह भी हो सकता है कि घर बनाया हुआ खाना होटल से अच्छा न हो तो भी घर का खाना खाने का आनंद अलग है। लेकिन उसका मूल्य एस्थेटिक है। उसका मूल्य आर्थिक नहीं है, उसका मूल्य वैज्ञानिक नहीं है। अगर मेरी मां मुझे कुछ खाना बना कर खिलाती है, हो सकता है होटल के रसोइए बेहतर बनाते हों, लेकिन होटल के रसोइए के खाने से मुझे मेरी मां का खाना अच्छा लगेगा। लेकिन मैं यह कभी नहीं कहूंगा कि यह डायटीशियन के हिसाब से ज्यादा बेहतर खाना है। मैं इतना ही कहूंगा कि यह मेरी मां बौर मेरा एक प्रेम है और एक लगाव है इसलिए यह मुझे अच्छा लग रहा है। इसका संबंध फीलिंग से हुआ, डाइट की दृष्टि से ऊंचा होता है तो फिर मैं गड़बड़ में पड़ गया। तो फिर मैं कठिनाई में पड़ गया।

खादी एक एस्थेटिक मूल्य रखती है। जिन्हें प्रीतिकर हो खादी पहन सकते हैं, जिन्हें प्रीतिकर हो चरखा चला सकते हैं। किसी को रुकावट डालने की कोई जरूरत नहीं, लेकिन खादी को आर्थिक संयोजन का, इकोनॉमिक लर्निंग का हिस्सा नहीं समझा जा सकता और खादी को आर्थिक सिद्धांत नहीं माना जा सकता।

मैं खुद खादी पहनता हूं। मुझे खुद दूसरे के कपड़े के बजाय यदि ज्यादा पोइटिक, ज्यादा काव्यात्मक मालूम पडती है। मुझे खुद खादी में ज्यादा पवित्रता, ज्यादा स्वच्छता, ज्यादा सफेदी मालूम पड़ती है, लेकिन यह मेरी व्यक्तिगत पसंद हुई। यह हॉबी कि लिए मंहगे ये मंहगा खर्च करना पड़ता है—सो खादी काफी मंहगी हॉबी है। जो धोती दस रुपये में मिल सकती है मिल की वैसी खादी पचास रुपये में मिलेगी और वह पचास में भी सिर्फ इसलिए मिलती है, पहनने वाले को पंद्रह रुपये सरकार दे रही है। यह हैरानी की बात है। जिसको शौक हो वह पैंसठ, सत्तर, अस्सी खर्च करे। लेकिन जो खादी नहीं पहनता है उससे, पंद्रह रुपये उसकी जेब में से निकाल कर मुझे खादी पहनाई जाए यह समझ के बाहर है। इसका कोई अर्थ नहीं, यह खतरनाक बात है।

लेकिन हम विचार करने को राजी होने को राजी नहीं हैं। हम सोचने को भी राजी नहीं हैं। इससे क्या पता चलता है? सोचने से इतना भयभीत होने का मतलब क्या होता है? इसका साफ मतलब यह होता है कि बहुत भलीभांति जानते हैं कि इन चीजों पर सोचा तो सोचने में चीजें बह जाएंगी, ये बच नहीं सकती। जब आदमी डरता है कि जिन चीजों के सोचने से चीजें के मिट जाने का डर है, अनकांशसली वह अनुभव करता है कि हमने सोचा कि ये गई, तो वह सोचने से भयभीत हो जाता है। फिर वह कहता है कि सोचो मत, जो है वह ठीक है, आंख बंद रखो। आंख बंद करने का मतलब यह है कि आप जानते हैं कि आंख खुलते ही जो दिखाई पड़ेगा वह वही नहीं होने वाला है, जो आप समझते रहे। वह तथ्य दूसरा है जो आंख खुलने से दिखाई पड़ेगा। इसलिए कमजोर लोग आंख बंद करना शुरू कर देते हैं, लेकिन अगर पैर में पीड़ा है और उसे छिपा लें आप तो स्वस्थ नहीं हो जाते और अगर कोई कहे कि जरा आप कपड़ा उठाइए और आप कहें कि क्यों कपड़ा उठाऊं, तुमने मेरी कपड़ा उठाने की बात की तो उससे भी आप स्वस्थ नहीं हो जाते, बल्कि आपकी यह घबड़ाहट बताती है कि कपड़े के पीछे कुछ आप छिपाये हैं जिसे आप जानते भी हैं और नहीं भी जानना चाहते हैं; जिसे आप पहचानते भी हैं लेकिन पहचानना भी नहीं चाहते हैं, मुस्कुराना चाहते हैं, पीठ फेर लेना चाहते हैं।

जब भी कोई कौम विचार करने से डरने लगती है तो समझ लेना कि उस कौम ने कुछ बेवकूफियां पाल रखी हैं जिनकी वजह से वह विचार करने से डरती है।

सत्य कभी भी विचार करने से भयभीत नहीं होता है, असत्य हमेशा विचार करने से भयभीत होता है।

हमारे महापुरुष असत्य हैं या सत्य, अगर उन पर विचार करने से भय मालूम होता है तो तुम समझ लेना कि तुम बहुत भीतर मन में जानते हो कि ये महापुरुष हमारे बनाए हुए हैं, ये असली महापुरुष नहीं है। लेकिन अगर तुम विचार करने की हिम्मत कर सकते हो तो ही पता चलता है कि तुम ने स्वीकार किया है कि महापुरुषों में बल है। हमारे विचार करने से वह नष्ट हो जाने वाला नहीं है। जो व्यर्थ होगा वह जल जाएगा। हम सोने को आग में डालने से डरते नहीं, क्योंकि जो कचरा होगा वह जल जाएगा और जो सोना है वह बच कर बाहर निकल जाएगा। लेकिन कचरा ही कचरा पास में हो तो उसको फिर हम आग में डालने से बहुत डरेंगे।

मैं गांधी को आग में डालने से नहीं डरता हूं, क्योंकि मैं जानता हूं कि उनमें बहुत कुछ सोना है। कचरा जल जाएगा और सोना निखर कर बाहर आ जाएगा। लेकिन उनके भक्त बहुत भयभीत होते हैं। उनके भक्त क्या डरते हैं कि गांधी जल जाएंगे उन पर विचार करने से? उनके एक भक्त ने अभी चिट्ठी लिखी है कि मैं और कुछ भी करूं, कम से कम गांधी को सिर्फ गांधी न कहा करूं। उन्होंने सलाह दी है कि मैं गांधी को 'महात्मा गांधीजी' कहूं।

यह थोड़ा सोचने जैसा है कि हम गांधी को गांधीजी कहें, इसमें ज्यादा आदर है या गांधी कहने में ज्यादा आदर है। परमात्मा के साथ हम जी नहीं लगाते कि परमात्मा जी। परमात्मा को हम कहते हैं परमात्मा। परमात्मा को हम कहते हैं तू। आप आइएगा तो मैं आपसे कहूंगा आप। परमात्मा को हम कहते हैं तू, हे परमात्मा तू! तू अनादर नहीं है और गांधी अनादर है? इतना प्रेम है मेरे मन में कि जी लगाने से मुझे नहीं लगता है कि गांधीजी की इज्जत कम होती है। जी हम उनके साथ लगाते हैं जिनके साथ लगाने जैसा भीतर कुछ भी नहीं, बाहर से जी लगा कर इज्जत जोड़ देते हैं।

महावीर को मैं महावीर कहता हूं, उनको महावीर जी कहने से ऐसा लगेगा कि कोई किराने की दुकान के मालिक हैं। गौतम बुद्ध को मैं बुद्ध कहता हूं। बुद्ध जी लगाने से वे ओछे और छोटे पड़ जाएंगे। जहां आदमी आप से ऊपर उठता है और तू में प्रविष्ट हो जाता है। इसलिए मैं जी वगैरह नहीं लगाऊंगा और न महात्मा कहूंगा, लेकिन यह घबराते कैसे हैं लोग कि जी नहीं लगाया तो मुश्किल हो गई। से अपनी ही बुद्धि से सोचते हैं। जितनी उनकी हैसियत है। अगर उनसे कोई जी न लगाया और आप न कहें तो वह बेचैनी में पड जाएगा। ये बेचारे अपनी ही शक्ल में महापुरुषों को भी सोचते रहते हैं। नहीं, मैं नहीं लगाऊंगा और आप लगाते हैं तो आपसे कहूंगा कि मत लगाना, अपमानजनक, इनसल्टिंग है।

हम अपने महापुरुषों को तो इतने प्रेम से पुकार सकते हैं, बीच में जी और आदर सब लगाने की जरूरत नहीं है। शायद आपको खयाल न हो कि हम जब आदर प्रकट करते हैं तो हम क्यों प्रकट करते हैं? जब हम शब्दों में आदर बताते हैं तो क्यों बताते हैं? शब्दों में आदर इसलिए बताना पड़ता है कि अगर शब्द में न बताएं तो और तो कोई आदर हमारे पास नहीं है। शब्द ही आदर है।

जब हृदय में आदर होता है तो शब्दों में हम विचार नहीं करते, फिक्र नहीं करते और जब हृदय में आदर नहीं होता तो हम शब्दों की बहुत फिक्र करते है कि क्या कहें क्या नहीं कहें, कौन-सा शब्द उपयोग किया, कौन सा नहीं किया।

बर्नार्ड शा की एक घटना मुझे याद आती है। उसका संक्षिप्त नाम था जे.बी.एस. क्यों नहीं लिखते हो अब? उसने कहा कि सिर्फ मेरी मां थी जिसका मेरे ऊपर इतना प्रेम था जो मुझे जार्ज कहती थी। वह चली गई दुनिया से। अब उतना प्रेम मेरे ऊपर किसी का भी नहीं है कि कोई मुझे जार्ज कहे। वह सब मुझे बर्नार्ड या कहते हैं। बर्नार्ड या उतना प्यारा नाम नहीं है। मेरी मां उठ गई दुनिया से। उसका प्रेम उतना था कि मुझसे जार्ज कहती थी। वह जार्ज मैंने अलग कर दिया। अब कोई मुझे उस नाम से बुलाएगा नहीं। कोई जार्ज नहीं कहेगा। बर्नार्ड शा ने कहा कि मेरी मां के मरने से मैं पहली दफा बढ़ा हो गया हूं। मेरी मां जिंदा थी तो मैं बूढ़ा नहीं था। मुझे लगता था कि मैं भी बच्चा हूं, क्योंकि मुझे जार्ज कहकर बुलाती थी। इतना प्रेम था उसका। अब मैं बूढ़ा हो गया, अब मेरी मौत करीब आने लगी। अब मुझे लगता है कि इतना प्रेम कोई भी मुझे नहीं करता है।

प्रेम के अपने रास्ते होते हैं, श्रद्धा के अपने रास्ते हैं। लेकिन जो न प्रेम जानते हैं, न श्रद्धा जानते हैं सिर्फ थोथा शिष्टाचार जानते हैं, उन बेचारों को प्रेम और श्रद्धा के रास्ते का कोई पता नहीं होगा। वे शिष्टाचार में ही सब कुछ समझते हैं जिनके बीच प्रेम नहीं है। जिनके बीच प्रेम हैं उनके बीच शिष्टाचार समाप्त हो जाता है। महापुरुष हम उसे कहते हैं जिसके पास समाज का शिष्टाचार समाप्त हो गया है, उससे हम सीधी-सीधी बात कर सकते हैं। इसलिए मैं क्षमा नहीं मांगूंगा कि मैं गांधीजी नहीं कहता या महात्मा नहीं लगाता। नहीं, कभी नहीं लगाऊंगा, लगाने की कोई जरूरत नहीं है।

कुछ मित्रों ने पूछा है कि गांधी ने, गांधी के विचार ने देश को आजादी दिलाई। मैं मना नहीं करता। यह भी मैं मना नहीं करता कि उन्होंने देश के लिए कितना काम किया है। शायद इस देश के पूरे इतिहास में किसी एक मनुष्य ने देश के लिए इतना काम नहीं किया है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि हम उनके प्रति अंधे हो जाएं। वे भी पसंद नहीं करेंगे कि हम उनके प्रति अंधे हो जाए, वे भी पसंद नहीं करेंगे कि हम उनके प्रति सोचना-विचारना बंद कर दें। उनका हमारे ऊपर ऋण बहुत ज्यादा है। इसलिए तो मैं सोचता हूं कि उन पर हमें बार-बार विचार करना चाहिए। उन पर बार-बार विचार करने का अर्थ ही यही होता है कि मैं मानता हूं कि उनका ऋण हमारे ऊपर बहुत ज्यादा है और उस ऋण होने का एक ही रास्ता है कि हम निरंतर सोचें, निखारे उनके विचार को और उनके विचार में जो श्रेष्ठतम है उसके अनुकूल देश को ले जा सके।

लेकिन श्रेष्ठतम का पता कैसे चलेगा? एक बड़ी जिंदगी बहुत बड़ी जिंदगी क्या है श्रेष्ठ, क्या भविष्य के योग्य, क्या व्यर्थ हो गया, क्या अप्रासंगिक हो गया, क्या समय के बाहर हो गया—यह सब सोचना पड़ता है। महापुरुष भी पचास वर्ष, साठ वर्ष, सत्तर वर्ष जीता है तो सत्ता वर्ष में हजारों घटनाएं घटती हैं। वे सारी की सारी घटनाएं देश के भविष्य के लिए उपयोगी नहीं होती। नहीं हो सकती हैं। उनमें से क्या हैं, छांट लेना हैं, लेकिन हम ऐसे अंधे लोग हैं कि जब हम किसी को महापुरुष कहते हैं तो उसके सब कुछ को महापुरुष मान लेते हैं। इससे बुनियादी भूल पैदा हो सकती है।

महापुरुष जो करता है, महापुरुष जिस समय में जीता है, जिस सामयिक प्रसंगों पर चुनौती झेलता है उसमें से बहुत-सा उसी दिन व्यर्थ हो जाता है। उसमें से बहुत-सा बाद में व्यर्थ हो जाता है। शाश्वत बहुत थोड़ा रह जाता है। अधिकतम तो कंटेंप्रेरी प्रॉब्लम होता है, इटरनल प्रॉब्लम तो बहुत कम होता है और गांधी के जीवन में बुद्ध और महावीर के बजाय कंटेंप्रेरी प्रॉब्लम ज्यादा होता है। इसलिए महावीर और बुद्ध की बात में सनातन प्रश्न ज्यादा है, क्योंकि उन्होंने समाज और जीवन के रोजमर्रा के प्रश्नों को छुआ ही नहीं।

गांधी ने जीवन और समाज के रोजमर्रा के प्रश्नों को छुआ है। गांधी के व्यक्तित्व और विचार में, गांधी के कर्म में और जीवन में नब्बे प्रतिशत सामयिक है, दस प्रतिशत सनातन है। उस सामयिक से हमको छुटकारा पाना होगा और सनातन की खोज करनी पड़ेगी, लिखा नहीं है कि क्या सनातन है और क्या सामयिक है, खोज करनी पड़ेगी, सोच करना पड़ेगा, कांट-छांट करनी पड़ेगी। जो गांधी व्यतीत हो गए, अतीत हो गए, उन्हें हटा देना होगा। जो गांधी आगे भी साथ के होंगे, कल भी सार्थक होंगे, उनको बचा लेना होगा। अंततः निखरते वही सूत्र शेष रह जाएंगे जो सनातन हैं, जिनका समय से कोई संबंध नहीं है, जिनका मनुष्य के शाश्वत जीवन से संबंध है। तब हम गांधी को निखार पाएंगे।

लेकिन भक्त अंधा होता है, वादी अंधा होता है। वह करता है कि हम पूरा मानेंगे या बिलकुल नहीं मानेंगे। वह दो ही बातें मानता है। या तो पागल अनुगमन या पागल विरोध। जीवन में इस तरह हां और ना उत्तर नहीं होते। जीवन बहुत जटिल है। जीवन कोई इकट्ठा हां और नहीं है कि हमने कह दिया ना। भक्त कहता है कि या तो हम कहेंगे ना, कहेंगे कि नहीं मानता गांधी को या कहेंगे कि मानते हैं तो पूरा नहीं मानते हैं। ये दोनों ही दृष्टियां गलत हैं। सोचना होगा, अपने विवेक से खोजना होगा, देखना होगा, परखना होगा, जांच करनी होगी, प्रयोग करने होंगे और तब जो विवेक से अनुकूल बचता जाएगा वही शाश्वत होता चला जाएगा। शेष समय की परिधि में खोता चला जाएगा। खो ही जाना चाहिए। समय के साथ ही वह खो जाना चाहिए जिसे समय ने पैदा किया था। लेकिन हम अपने पागलपन में उसे बचाकर रखना चाहता हैं। उससे हमारे महापुरुष को फायदा नहीं होता, नुकसान होता है, क्योंकि महापुरुष रोज-रोज नया नहीं हो पाता, ताजा नहीं हो पाता। बासी पड़ जाता है, पुराना पड़ जाता है। वह जो-जो बासी पड़ जाता है उसे काट देने की जरूरत है ताकि नया ताजा रोज निखर कर

बाहर आता चला जाए और जिसे हमने प्रेम किया हो, जिसे हमने श्रद्धा दी हो वह हमारे लिए सनातन साथी बन सके। लेकिन हम जिस तरह व्यवहार करते हैं, उस तरह से यह नहीं हो सकता है।

मैं नहीं कहता हूं कि गांधी का हमारे ऊपर ऋण नहीं है, कोई पागल होगा जो ऐसा कहेगा। ऋण उनका महान है लेकिन उस ऋण के कारण इतने मत दब जाना कि गांधी का जो सामयिक तत्व है वह हमें सनातन सत्य जैसा मालूम पड़ने लगे। यह उचित नहीं है।

किसी मित्र ने पूछा है कि हम तो गांधी जितने बड़े नहीं है कि तौला जा सके कि कौन बड़ा है और कौन छोटा। कोई तराजू दुनिया में आज तक विकसित नहीं हुआ कि  हम तौल सकें कि कौन बड़ा है, कौन छोटा है। सच बात तो यह है कि एक-एक आदमी अपने-अपने जैसा है। कंपेरिजन की कोई संभावना नहीं है। गांधी की किसी से तुलना नहीं हो सकती। आपकी भी किसी से तुलना नहीं हो सकती। एक साधारण से साधारण आदमी भी अनूठा और अद्वितीय है। न किसी से छोटा है कौन बड़ा, लेकिन हममें से प्रत्येक अपने जैसा है—दूसरे जैसा है ही नहीं, इसलिए छोटे-बड़े को तौलने की, कंपेयर करने की कोई सुविधा नहीं है। गांधी को जब आपके हाथ से तुल गए। फिर कल कोई दूसरा मिल सकता है, वह कहेगा महावीर और बड़े हैं, बुद्ध और बड़े हैं। यही पागलपन तो हजारों साल से चल रहा है। जैन कहते हैं कि महावीर से बड़ा कोई भी नहीं, बौद्ध कहते हैं बुद्ध से बड़ा कोई भी नहीं है। मुसलमान कहते हैं मुहम्मद से बड़ा कोई भी नहीं है, ईसाई कहते हैं जीसस से बड़ा कोई भी नहीं है। इसी पागलपन से सारी मनुष्य जाति कट गई और नष्ट हो गई। फिर वही जारी रखोगे कि कौन बड़ा है, कौन छोटा? कैसे तय करोगे, कौन तय करेगा? कौन है निर्णायक, जजमेंट कौन देगा? जजमेंट आप दोगे? अगर आप जजमेंट दे सकते हैं कि गांधी बड़े हैं तो आप गांधी से बड़े हो गए, क्योंकि जजमेंट देने वाला हमेशा बड़ा होता है। आप हो निर्णायक? तब तो स्वभावतः गांधी खिलौना हो गए। तराजू पर रख कर अपने तौल लिया। कौन किसको तौलेगा?

ये हमारे सोचने के ढंग, व्यक्तियों को तौलने के ढंग निहायत अपरिपक्व हैं। कोई मनुष्य तौला नहीं जा सकता है। गांधी तो ठीक हैं, साधारण से साधारण मनुष्य तक नहीं तौला जा सकता। कोई नहीं जानता है कि छोटे-से मनुष्य में क्या घटना घट जाएगी।

एक गांव में बुद्ध का आगमन हुआ था। गांव में था एक गरीब चमार। गांव के सम्राट को पता चल गया था कि बुद्ध आते हैं, लेकिन गरीब चमार को कहां फुर्सत थी, कहां पता चले? उसे पता भी नहीं था कि बुद्ध आते हैं। बुद्ध के आने का पता चलने की भी सुविधा तो चाहिए। वह बेचारा दिन भर अपने काम में रहा। रात थका मांदा सो गया। सुबह अपने झोपड़े में उठा। उस चमार का नाम था सुदास। उठा, झोपड़े के पीछे छोटी सी एक गंदी तलैया थी। उठा सुबह तो देखा कि उसमें एक कमल का फूल खिला है। बिना मौसम का फूल था, अभी मौसम नहीं था फूल का। वह सुदास बहुत हैरान हुआ। फिर बहुत खुश हुआ। फूल तोड़ कर भागा बाजार की तरफ कि कोई न कोई जरूर रुपये दो रुपये इस फूल का दे देगा। फूल बड़ा था, सुंदर था, बेमौसम का था। जरूर इसके पैसे मिल जाएंगे।

वह बाजार की तरफ भागा चला जा रहा है कि नगर का जो धनपति था, नगर सेठ, वह रथ पर बैठा हुआ आ रहा था। वह उसके पास जाकर खड़ा हो गया। उस धनपति ने कहा, कितना लोगे इस फूल का? सुदास ने कहा, जो भी आप दे देंगे, आपकी कृपा। उसने अपने सारथी से कहा कि पांच रुपये इसे दे दो। सुदास तो हैरान हुआ, क्योंकि पांच बहुत ज्यादा थे—वह सोचता था कि एक भी मिल जाए तो बहुत है। वह एकदम हैरान हुआ। उसने कहा, पांच रुपये! यह बात ही चलती थी कि पीछे से वजीर! मंत्री घोड़े पर सवार आ गया। उसने कहा कि बेचना मत फूल। फूल मैंने खरीद लिया। धनपति जितना देते हैं उससे पांच गुना मैं दे दूंगा। वह तो मांग बढ़ती चली गई और सुदास भौचक्का। वह ठहराव मुश्किल हो गया तभी राजा का रथ भी आ गया और उस राजा ने कहा कि फूल खरीद लिया गया। जो भी दाम तू मांगेगा, मुंहमांगा दाम दे दूंगा।

सुदास कहने लगा कि आप सब पागल हो गए हैं। इस फूल की कोई कीमत नहीं है। हजारों कीमत तो बढ़ चुकी है और आप कहते हैं कि मुंहमांगा देंगे। बात क्या है सम्राट? सम्राट ने कहा, शायद तुझे पता नहीं, बुद्ध का आगमन हो रहा है

गांव में। हम उनके स्वागत को जाते हैं। बेमौसम का फूल उनके चरणों में चढ़ाएंगे वह भी हैरान हो जाएंगे कि कमल, बेमौसम का फूल? बुद्ध के चरणों में यह फूल मैं ही चढ़ाऊंगा। नगर सेठ ने कहा, नहीं यह नहीं हो सकेगा, सम्राट! फूल को मैंने पहले देखा है। पहले मैंने खरीद-फरोक्त शुरू की है। मैं पहले ग्राहक हूं। इनका विवाद चलता था। सुदास ने कहा, क्षमा करिए, फूल मुझे बेचना नहीं है। जब बुद्ध आते हैं गांव में तो फूल मैं चढ़ा दूंगा। पर वे कहने लगे, सुदास तू पागल है क्या? जितना पैसा चाहे ले ले, तेरी चमारी मिट जाए सदा, गरीबी मिट जाए सदा को। तेरे जन्म-जन्म आगे के बच्चे को भी सुख हो जाएगा। जितना चाहे ले ले। सुदास ने कहा, नहीं, अब पैसे का क्या करेंगे, मैं ही चढ़ा दूंगा बुद्ध को।

नहीं बेचा फूल। सम्राट नहीं खरीद सके गरीब का फूल, एक चमार का। सम्राट तो रथ पर पहुंच गए पहले, नगर सेठ पहुंच गया, वजीर पहुंच गया। उन्होंने बुद्ध को जाकर यह कहा कि आज एक अदभुत घटना घट गई। यह गरीब आदमी, जिसकी कोई हैसियत नहीं, जिसके पास कल का खाना नहीं होता उसने लाखों रुपये पर लात मार दी और कहता है, फूल मैं ही चढ़ाऊंगा। सुदास आया पीछे पैदल चलता हुआ। बुद्ध के चरणों पर फूल रखकर हाथ जोड़कर सिर पैर पर रखकर जाने लगा।

बुद्ध ने कहा, पागल है सुदास, तुझे फूल बेच देना था।

सुदास ने कहा, भगवन, संपत्ति ही सब कुछ नहीं है। संपत्ति से भी बड़ा कुछ है और आपके पैरों में फूल रख कर मुझे जो कमल गया वह मुझे कितनी भी संपत्ति से कभी नहीं मिल सकता।

बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहा, भिक्षुओं, देखो, इस सुदास को। एक साधारण से जन में भी, एक साधारण से मनुष्य में भी परमात्मा का इतना प्रकाश पैदा हो सकता है। सुदास गांव का चमार, एक दीन हीन है, लेकिन इतने प्रेम की संभावना, इतनी श्रद्धा की संभावना, इस सुदास में। बुद्ध कहने लगे कि मैं घूमता हूं वर्षों से गांव-गांव, कितने-कितने लोग मिले। नहीं सुदास, तू अद्वितीय है। तेरा जैसा व्यक्ति तू ही है।

कौन कहेगा, कौन है बड़ा, कौन है छोटा? कौन कहेगा, किसके भीतर से क्या प्रकट हो सकता है? तो कौन जानता है कौन सा बीज कितना बड़ा फूल बनेगा? लेकिन जल्दी से तौलने की हमारी इच्छा बड़ी तीव्र होती है। नहीं कोई जरूरत है तौलने की। गांधी गांधी हैं, मैं मैं हूं, आप-आप हैं। तौलने का कोई उपाय भी नहीं है। लेकिन यह गांधी को बड़ा कहने कारण क्या हो सकता है फिर? अगर हम तौल नहीं सकते, समर्थ नहीं तौलने में तो यह कहने का कारण क्या हो सकता है कि गांधी महान हैं? शायद आपको सीक्रेट का कोई पता न हो, यह एक बड़ा राज है।

जब हिंदू यह कहता है कि हिंदू धर्म महान है तो आप समझते हैं कि उसका मतलब क्या है? वह यह कहता है कि हिंदू धर्म महान है और मैं हिंदू हूं, मैं महान हूं यह तर्क सरल नहीं है। जब एक आदमी कहता है कि भीतर पृथ्वी पर सबसे महान देश है तो मतलब आप जानते हैं क्या कहता है? वह यह कह रहा है कि भारत सबसे बड़ा देश हैं कि बड़ा हूं तो बड़ी मुश्किल बात है। वह कहता है मेरा गुरु बड़ा है और बड़े गुरु का मैं बड़ा चेला हूं।

मैंने सुना है, फ्रांस में एक दर्शन-शास्त्र का प्रोफेसर था। पेरिस के विश्वविद्यालय में वह दर्शन-शास्त्र का अध्यक्ष था। वह एक दिन सुबह-सुबह आया और अपने क्लास के विद्यार्थियों से कहने लगा कि तुम्हें पता है, मैं दुनिया का सबसे बड़ा आदमी हूं। उसके विद्यार्थियों ने कहा, आप? बेचारा गरीब शिक्षक था, फटे कपड़े पहने हुए था। समझ गए उसके विद्यार्थी,हो गए पागल। दार्शनिकों के पागल हो जाने की संभावना रहती ही है, दिमाग इनका बाहर हो गया है मालूम होता है।

एक विद्यार्थी ने पूछा, महाशय आप अपने बाबत कह रहे हैं कि आप दुनिया के सबसे बड़े आदमी हैं? उसने कहा, हां, मैं कह रहा हूं कि मैं दुनिया का सबसे बड़ा आदमी हूं। न केवल मैं कह रहा हूं, मैं तर्क शास्त्र का अध्यापक हूं, मैं सिद्ध भी कर सकता हूं।

उसके विद्यार्थियों ने कहा, बड़ी कृपा होगी, यदि आप सिद्ध कर सकेंगे।

उसने छड़ी उठाई, और नक्शे के पास गया जहां दुनिया का नक्शा टंगा था क्लास में। उसने कहा, मेरे बच्चों, मैं तुमसे पूछता हूं कि इस सारी बड़ी पृथ्वी पर सबसे महान और सबसे श्रेष्ठ देश कौन सा है? वे सभी फ्रांस के रहने वाले थे।

उन सबने कहा, निश्चित ही फ्रांस है, इसमें कोई संदेह है? यह तो निश्चित है कि फ्रांस से महान कोई भी देश नहीं है।

उसने कहा, तब एक बात तय हो गई कि फ्रांस सबसे महान है इसलिए बाकी दुनिया की फिक्र छोड़ दो। अब अगर मैं सिद्ध कर सकूं कि फ्रांस में सबसे महान हूं तो मामला हल हो जाएगा।

विद्यार्थी तब भी नहीं समझे कि तर्क कहां जाएगा। फिर उसने कहा कि फ्रांस में सबसे महान और श्रेष्ठ नगर कौन सा है?

विद्यार्थियों ने कहा कि पेरिस। वे सभी पेरिस के रहने वाले थे

उसने कहा तब फ्रांस की फिक्र छोड़ दो। अब सवाल सिर्फ पेरिस का रह गया। अगर मैं सिद्ध कर दूं कि पेरिस में मैं सबसे महान हूं तो बात खत्म हो जाएगी। तब विद्यार्थियों को शक पैदा हुआ कि यह मामला बड़ा अजीब है, यह कहां ले जा रहा है आदमी और तब उस प्रोफेसर ने पूछा कि और पेरिस में सबसे श्रेष्ठ स्थान कौन सा है? युनिवर्सिटी, विश्वविद्यालय, विद्या का केंद्र, मंदिर।

विद्यार्थियों ने कहा यह तो ठीक है। विश्वविद्यालय ही सबसे पवित्रम और श्रेष्ठतम स्थान है। तब उनका तर्क चुका था—उस प्रोफेसर ने कहा, तब मैं तुमसे पूछता हूं, पेरिस को जाने दो, रह गया यूनिवर्सिटी का कैंप्स। युनिवर्सिटी के इस कैंप्स में सबसे श्रेष्ठतम विषय और डिपार्टमेंट कौन सा है? वे सभी विद्यार्थी फिलासफी के विद्यार्थी थे। उन्होंने कहा फिलासफी।

और उसने कहा, अब तुम समझे कि मैं फिलासफी का हेड ऑफ दी डिपार्टमेंट हूं—

इतना लेगा तर्क इस छोटे से 'मैं' को सिद्ध करने के लिए है। लेकिन आदमी की चालाकियां, कनिंगनेस पहचानना बहुत मुश्किल है। वह कहता है, भारत महान देश है और उसके भीतर जाकर पूछो उसके प्राणों में तो वह यह कह रहा है कि मैं महान हूं।

बर्नार्ड शा ने एक बार अमेरिका के दौरे में यह कहा कि गैलीलियो, ये वैज्ञानिक सब गलत कहते हैं। सूरज ही पृथ्वी का चक्कर लगाता है। पृथ्वी कभी सूरज का चक्कर नहीं लगाती है। अब इस बीसवीं सदी में कोई ये बातें करेगा तो पागल समझा जाएगा। बर्नार्ड या को लोगों ने पूछा कि आप क्या कह रहे हैं। तीन सौ साल पहले लोग ऐसा जरूर मानते थे कि सूरज पृथ्वी का चक्कर लगाता है। लेकिन अब तो यह सिद्ध हो चुका है कि पृथ्वी सूरज का चक्कर लगा सकती है? असंभव है। यही है सेंटर वर्ल्ड का। यही पृथ्वी सारे जगत का केंद्र है। सारा जगत इसका चक्कर लगाता है। पृथ्वी का केंद्र मैं हूं जार्ज बर्नार्ड शा।

हर आदमी का तर्क यही है। भारतीय कहता है, भारतीय महान है, चीनी कहते हैं चीन महान है, तुर्की कहता है तुर्क महान है। मामला क्या है? हिंदू कहता है हिंदू महान है, मुसलमान कहता है मुसलमान महान है। जैन कहता है, महावीर महान हैं, ईसाई कहता है जीसस महान हैं। मामला क्या है? मार्क्सिस्ट कहता है मार्क्स महान है, एक गांधीवादी कहता है गांधी महान हैं। मामला क्या है! न गांधी से किसी को मतलब, न मार्क्स से किसी को मतलब, न महावीर से किसी को मतलब, न भारत से किसी को मतलब, न चीन से किसी को मतलब। मतलब उसमें से है कि मैं जहां हूं जिस केंद्र पर, उस केंद्र से संबंधित सब महान है, क्योंकि मैं महान हूं।

नहीं, गांधी को नहीं तौलते हैं आप, न तो महावीर को, न बुद्ध को। तरकीब से अपने को तौल रहे हैं और अपने को केंद्र पर खड़ा कर रहे हैं। ये तरकीबें बड़ी अपवित्र हैं। लेकिन इनका हमें होश भी नहीं आता है। बर्ट्रेंड रसेल ने एक किताब लिखी और उस किताब में उसने भूमिका में यह बात लिखी कि मेरी किताब को पढ़ने वाले आप तो सज्जन हैं, अपने रीडर को, अपने पाठक को संबोधित किया कि मेरे प्रिय पाठक आप जिस देश में पैदा हुए हैं उस देश से महान कोई भी देश नहीं है। उसको कई मुल्कों से पत्र पहुंचे, क्योंकि बर्ट्रेंड रसेल की किताबें सारी दुनिया में पढ़ी जाती है।

पोलैंड से एक स्त्री ने लिखा कि तुम पहले आदमी हो जिसने पोलैंड की महानता को स्वीकार किया है। जर्मनी से किसी ने लिखा कि शाबाश तुमने स्वीकार कर लिया कि जर्मनी महान है। किंतु उसने मजाक किया था। वह मजाक कोई भी

नहीं समझा। वे समझे कि हमारे मुल्क की प्रशंसा की जा रही है। हमारे मुल्क की प्रशंसा नहीं, हमारी प्रशंसा, मेरी प्रशंसा और जो आपको भय मालूम पड़ता है कि गांधीजी कर आलोचना मत करो, बुद्ध की आलोचना मत को, मुहम्मद की आलोचना मत करो—नहीं तो देंगे हो जाएंगे। वह आपका मुहम्मद, बुद्ध और गांधी के प्रति प्रेम नहीं है। उनकी आलोचना से आपके अहंकार को ठेस पहुंचती है। उसकी वजह से आप पीड़ित हैं और परेशान होते हैं। यह योग्य नहीं है, यह हितकर नहीं है, यह कल्याणदायी नहीं है। इससे मंगल सिद्ध नहीं होता है।

मैंने यह जो कुछ बातें कहीं, एक मित्र मेरे पास आए, उन्होंने कहा कि मैं काका कालेलकर ने कहा, मेरे बाबत कि अभी उनकी उम्र कम है इसलिए गड़बड़ बातें कह देते हैं। जब उम्र बढ़ जाएगी तो सब ठीक हो जाएगा। जब जीसस ने तीस वर्ष की उम्र में बुद्ध का खंडन और आलोचना कि तो लोगों ने कहा इसकी उम्र कम है। उम्र बड़ी हो जाएगी तो सब ठीक हो जाएगा। जब जीसस ने तीस वर्ष की उम्र में यहूदियों ने कहा कि यह पागल छोकरा है, आवारा है। इसकी उम्र अभी क्या है। उम्र बढ़ जाएगी तो सब ठीक हो जाएगा। जब विवेकानंद ने तैंतीस-चौंतीस वर्ष की उम्र में वेदांत की व्याख्या की तो वेदांत के बूढ़े गुरु ने कहा, अभी नासमझ है, समझता नहीं, उम्र कम है।

यह उम्र की दलील बहुत पुरानी है। लेकिन उम्र कम होने से न कोई गलत होता है और न उम्र ज्यादा होने से कोई सही होता है। उम्र से बुद्धिमत्ता का कोई भी संबंध नहीं है। काका कालेलकर यह कह रहे हैं कि अगर जीसस क्राइस्ट अस्सी साल तक जीते तो ज्यादा बुद्धिमान हो जाते। ये यह कह रहे हैं कि जीसस क्राइस्ट तैंतीस साल की उम्र के थे इसलिए मंदिर में घुस गए और मंदिर में ब्याज खाने वाले दुकानों के तख्त उलट दिये और कोड़ा उठा कर उन्होंने बहुतों को मार कर मंदिर से बाहर निकाल दिया। अगर जीसस ज्यादा उम्र के होते तो ऐसी नासमझी कभी नहीं हो सकती थी। काका कालेलकर उनकी जगह होते तो इस तरह की नासमझी वे कभी नहीं करते। उनकी उम्र ज्यादा है, लेकिन उम्र ज्यादा होने से बुद्धिमत्ता नहीं बढ़ जात है। उम्र ज्यादा होने से चालाकी और कनिंगनेस भले बढ़ जाए, लेकिन बुद्धिमत्ता का उम्र से ऐसा कोई नाता नहीं है।

मैं भी जानता हूं कि मैंने गांधी की आलोचना की, उसी दिन सुबह दो मित्रों ने मुझे आकर कहा कि आप यह बात ही मत करिए, क्योंकि गुजरात सरकार नारगोल में छः सौ एकड़ जमीन देती है आपके आश्रम को। वह उसका विचार ही बंद कर देगी, नहीं देगी। अभी बात मत करिए, पहले जमीन मिल जाने दीजिए, फिर आपको जो कहना है कहना। वे कहने लगे, आपकी उम्र अभी कम है। आपको पता नहीं जमीन खो जाएगी। मैंने उनसे कहा, भगवान करे मेरी उम्र इतनी ही नासमझी की बनी रहे ताकि सत्य मुझे संपत्ति से हमेशा मूल्यवान मालूम पड़े। वह जमीन जाए, जाने दो। मुझे जो ठीक लगता है, मुझे कहने दें।

भगवान न करे, इतना चालाक मैं हो जाऊं कि संपत्ति सत्य से ज्यादा मूल्यवान मालूम पड़ने लगे। मुझे भी दिखाई पड़ता है,काका कालेलकर को ही दिखाई पड़ता है ऐसा नहीं। मुझे भी दिखाई पड़ता है कि गांधी की आलोचना करके गाली खाने के सिवाय और क्या मिलेगा। अंधा नहीं हूं, इतनी उम्र तो कम से कम है कि इतना दिखाई पड़ सकता है कि गाली मिले। लेकिन कुछ लोग, अगर समाज में गाली खाने की हिम्मत न जुटा पाए तो समाज का विचार कभी विकसित नहीं होता है। कुछ लोगों को यह हिम्मत जुटानी ही चाहिए कि वे गाली खाएं। प्रशंसा प्राप्त करना बहुत आसान है, गाली खाने की हिम्मत जुटाना बहुत कठिन है। श्री ढेबर भाई ने मुझे उत्तर देते हुए किसी मीटिंग में अभी कहा है कि मैं गांधी जी को समझ नहीं सका हूं, इसलिए ऐसी बातें कर रहा हूं। मेरा उनसे निवेदन है कि प्रशंसा तो बिन समझे की जा सकती है, आलोचना करने के लिए बहुत जरूरी होता है। प्रशंसा तो कोई भी पूंछ हिला कर जाहिर कर देता है, उसके लिए कोई बहुत बुद्धिमत्ता की जरूरत नहीं है। लेकिन आलोचना के लिए सोचना जरूरी है, हिम्मत जुटाना जरूरी है और अपने को दांव पर लगाना भी जरूरी है। अब गांधी से मेरा झगड़ा क्या हो सकता है, गांधी से झगड़ा कर मुझे फायदा क्या हो सकता है? अखबार मेरी खबर नहीं छापेंगे, गांवों में मेरी सभा होनी मुश्किल हो जाएगी। अहिंसक लोग पत्थर फेंक सकते हैं, यह सब हो सकता है। इससे मुझे क्या फायदा हो जाएगा?

लेकिन मुझे लगता है कि चाहे कितना ही नुकसान हो, जो हमें सत्य दिखाई पड़ता हो उसे हमें कहना ही चाहिए, जो हमें ठीक मालूम पड़ता हो, चाहे उसके लिए कितनी ही हैरानी उठानी पड़े, वह हमें कहना ही चाहिए। इस दुनिया को उन्हीं

थोड़े से लोगों ने आगे विकसित किया है, जिन्होंने समाज की मान्य परंपराओं की आलोचना की है, जिन्होंने समाज के बंधे हुए पक्षपातों को तोड़ने की हिम्मत की है। जिन्होंने समाज में विद्रोह किया है वे ही थोड़े से लोग इस जीवन और जगत को विकसित कर पाएं हैं। जगत को उन्होंने विकसित नहीं किया है जो अंध-विश्वासी हैं। विश्वास नहीं, विचार विकास का द्वार है।

बंबई, दिनांक 3 दिसंबर 1968

देख कबीरा रोया

पांचवां प्रवचन

तोड़ने का एक और उपक्रम

एक मित्र ने पूछा है, महापुरुषों की आलोचना की बजाय उचित होगा कि सृजनात्मक रूप से मैं क्या देना चाहता हूं देश को, समाज को, उस संबंध में कहूं।

लेकिन आलोचना से भयभीत होने की क्या बात है। क्या यह वैसा नहीं है कि हम कहें कि पुराने मकान को तोड़ने के बजाय नये मकान को बनाना उचित है? पुराने को तोड़े बिना नये को बनाया भी तो नहीं जा सकता है। विध्वंस भी रचना की प्रक्रिया का हिस्सा है। अतीत की आलोचना भविष्य में गति करने का पहला चरण है और जो लोग अतीत की आलोचना से भयभीत होते हैं, वे ही लोग हैं जो भविष्य में जाने की सामर्थ्य भी नहीं दिखा सकते।

लेकिन इतना भय क्या है सृजनात्मक आलोचना से? क्या हमारे महापुरुष इतने छोटे हैं? उनकी आलोचना से हमें भयभीत होने की जरूरत है। अगर वे इतने छोटे हैं तब तो उनकी आलोचना जरूर ही होनी चाहिए, क्योंकि उनसे हमारा छुटकारा हो जाएगा और अगर वे इतने छोटे नहीं है तो आलोचना से उनका कुछ भी बिगड़ने वाला नहीं है। दोनों हालत में आलोचना कोई नुकसान नहीं पहुंचा सकती है। लेकिन हमारा पूरा देश ही आलोचना से भयभीत हो गया है और जो समाज अपने अतीत की आलोचना नहीं करता, वह भविष्य के लिए निर्णय भी नहीं ले पाता कि कहां कदम रखने हैं। उसका सारा अतीत बिना आलोचना से अनक्रिटिसाइज्ड इकट्ठा हो जाता है। उस सारे अतीत  में से चुनाव करना मुश्किल हो जाता है कि क्या चुनना है। उस अतीत में से क्या छोड़ना है, यह जानना मुश्किल हो जाता है। उस अतीत का बोझ इतना हो जाता है कि उसके नीचे दब कर मर सकते हैं। उस अतीत के कंधे पर खड़े होकर भविष्य की ओर उठ नहीं सकते।

भारत का अतीत हमारा चुना हुआ अतीत नहीं है—वह तो एक मृत बोझ की भांति हमारे सिर पर रखा हुआ है। उसमें तरह-तरह की बातें बैठी हुई हैं। उसमें स्व-विरोध, सेल्फ कंट्राडिक्शन बैठे हुए हैं और उन सबको हम झेल रहे हैं और उन सबके साथ हम जीने की कोशिश कर रहे हैं। इसलिए भारत में इतना कंफ्यूजन है, इतना विभ्रम है। हमारी जाति के पास कोई स्पष्ट निर्णय नहीं है। अतीत का संग्रह हमने ऐसे ही किया है जैसे कबाड़ी की दुकान होती है। एक कचरा-घर की भांति हमारा चित्त हो गया है। उसमें सब इकट्ठा होता चला जाता है। सब भांति के विरोध वहां एकत्रित हो गए हैं। इनमें से चुनाव जरूरी है। कुछ हमें तय करना पड़ेगा। कौन है ठीक, हमें निर्णय लेना चाहिए, क्या है सही।

लेकिन हम कहते हैं, अतीत की आलोचना मत करो, अतीत का विचार मत करो। हजारों-हजारों वर्षों में, हजारों-हजारों विचारों का जो संग्रह हमारे ऊपर इकट्ठा हो गया है वह सारा संग्रह हमारे प्राणों पर बैठा हुआ है। उस सारे संग्रह कि नीचे हम दबे जा रहे हैं और जी रहे हैं और हम कोई भी निर्णय नहीं ले पाते कि इस देश का व्यक्तित्व एक स्पष्ट निखार को उपलब्ध हो। शायद आपको पता न हो इस देश में कितनी धारें बही हैं विचार की। वे सारी की सारी धाराएं भारतीय मस्तिष्क में इकट्ठी होकर बैठ गई। वे बहुत विरोधी धाराएं हैं और उन विरोधी धाराओं के कारण हमारा व्यक्तित्व खंडित हो गया है, स्प्लिट हो गया है।

भारत में किसी आदमी के पास इंटिग्रेटेड पर्सनैलिटी जिसको हम कहें, एक समग्र समूचा व्यक्तित्व कहें, इकट्ठा व्यक्तित्व कहें, एक स्वर वाला व्यक्तित्व कहें, वह नहीं है। उसके भीतर न मालूम कितने स्वर हैं। उन सब स्वरों के बीच उसे जीना पड़ता है। इससे एक मल्टि-पर्सनैलिटी, एक बहु-व्यक्तित्व भीतर पैदा हो गया है जिसमें से कुछ निर्णय नहीं हो पाता

कि हमारा स्वरूप क्या है, हमारा व्यक्तित्व क्या है—हम कहां खड़े हैं—इसका हमें कुछ भी पता नहीं चल पाता। और इस सबके पीछे एक कारण है कि हमने अपने अतीत की आलोचना करने से भय दिखलाया है।

और अगर हम आगे भी यह जारी रखते हैं तो भारत की सारी प्रतिभा कुंठित हो गई है, कौर कुंठित हो जाएगी। बहुत स्पष्ट विचार होना चाहिए, बहुत स्पष्ट सूझ होनी चाहिए। न कोई गांधी का मूल्य है, न महावीर का, न कृष्ण का। मूल्य है इस देश के भविष्य का। अगर बड़े से बड़े महापुरुष को भविष्य के लिए छोड़ना पड़े तो छोड़ने की तैयारी होनी चाहिए। सवाल यह नहीं है कि हम छोड़ दें, सवाल यह है कि इस देश का भविष्य महत्वपूर्ण हैं। बड़े से बड़े महापुरुष से पैदा होने वाला छोटे से छोटा बच्चा भी ज्यादा महत्वपूर्ण है, क्योंकि वह भविष्य है, क्योंकि वह कल आएगा, वह कल जीएगा, कल वह बनेगा। उसको ध्यान में रखना है। लेकिन हमारा मुल्क, हमारी पूरी चिंता उनको ध्यान में रखती है जो जी चुके हैं और जा चुके हैं। यह समादर ठीक है, लेकिन यह समादर मंहगा पड़ा है। आने वाले बच्चे का सम्मान चाहिए। उस बच्चे के सम्मान, उसके भविष्य, उसके जीवन के लिए विचार चाहिए।

हमें बहुत ही स्पष्ट और आदरपूर्वक अतीत की आलोचना करनी पड़ेगी। आलोचना का अर्थ निंदा नहीं है। यह भी एक अजीब पागलपन है इस मुल्क में कि आलोचना करने का मतलब निंदा समझा जाता है। यह हमारी क्षुद्र बुद्धि का सबूत है। इसका मतलब यह की हम निंदा करने को ही आलोचना समझते हैं या आलोचना करने को निंदा समझते हैं।

गांधी की आलोचना, गांधी की निंदा नहीं है। मेरी बात की आप आलोचना करें वह मेरी निंदा नहीं है, बल्कि मेरी बात की आलोचना करने से आप खबर देते हैं कि आपने मेरी बात को मूल्य दिया। इस योग्य समझा कि आप उस पर सोच रहे हैं। नहीं, आलोचना निंदा नहीं है, आलोचना सम्मान है। हम आलोचना हर किसी की नहीं करने बैठे जाते हैं, कोई ऐरे-गैरे की आलोचना करने सारा मुल्क नहीं बैठ जाएगा। जिसकी हम आलोचना करने बैठे हैं, हम यह मानकर चलते हैं कि उस व्यक्ति की आलोचना या उस व्यक्ति का विचार देश के हित या अहित में महत्वपूर्ण हो सकता है।

मार्क्स की मृत्यु हुई। उसकी मृत्यु पर थोड़े से मित्र, दस-बीस मित्र उसकी कब्र पर इकट्ठे थे। एंजल्स ने उसकी कब्र पर बोलते हुए एक बात कही। एंजल्स ने कहा कि मार्क्स एक महापुरुष था। मित्रों को हैरानी हुई, क्योंकि अगर महापुरुष था तो कुछ बीस-पच्चीस कब्र पर छोड़ने आए थे। मित्रों ने पूछा कि महापुरुष? एंजल्स ने कहा कि मैं इसलिए कहता हूं महापुरुष मार्क्स को जो भी उसकी बात सुनेगा उसे या तो मार्क्स के पक्ष में होना पड़ेगा या विपक्ष में होना पड़ेगा। दो के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। मार्क्स की उपेक्षा कोई भी नहीं कर सकता है। इसलिए मैं कहता हूं कि यह महापुरुष है।

यह बड़ी अदभुत बात है कि एंजल्स ने। मार्क्स के महापुरुष होने का कारण यह कि उसके विचार की उपेक्षा नहीं की जा सकती। आप इनडिफरेंट नहीं हो सकते उसके विचार के प्रति। आपको कोई न कोई निर्णय लेना ही पड़ेगा। चाहे पक्ष में, चाहे विपक्ष में। जिस मनुष्य के विचार के संबंध में हमें कोई न कोई निर्णय लेना ही पड़े उसको एक महापुरुष कहा जा सकता है, और किसी को नहीं। और जब आप आपने महापुरुष के विपक्ष में कोई नहीं है, और न ही उनके पक्ष में ही कोई है। जब आप ऐसी कोशिश करते हैं कि गांधी के विपक्ष में कोई नहीं हो सकता, ध्यान रहे उसके पक्ष में भी कभी कोई नहीं होगा।

जिसके विपक्ष में कभी कोई नहीं हो सकता उसके पक्ष में भी कोई नहीं होगा। जिसके विपक्ष में होने की जरूरत नहीं पड़ती उसके पक्ष में होने की कोई जरूरत नहीं पड़ती और जिसके पक्ष में हमें होने की आवश्यकता नहीं है, हम तब ऊपरी तौर से कहते रहेंगे हम उसके पक्ष में हैं, लेकिन हमारे प्राण कभी उसके पक्ष में नहीं हो सकते। हम पक्ष में उसी के हो सकते हैं, जिसके विपक्ष में होना भी जरूरी मालूम पड़ सकता हो।

एक जमाना था, ईश्वर के विरोध में वे लोग समझे जाते थे जो नास्तिक थे, जो कहते थे कि ईश्वर नहीं है। मैं कहता हूं कि नास्तिक फिर भी ईश्वर को आदर देते थे, क्योंकि वे ईश्वर को विचारणीय मानते थे। इसलिए ईश्वर पर किताबें लिखते थे, तर्क करते थे और सिद्ध करना चाहते थे कि ईश्वर नहीं है। अब जमाना नास्तिक से भी आगे जा चुका है। जब किसी से कहो ईश्वर, तो वह कहता है, छोड़ो, वह कोई बात करने योग्य विषय नहीं है। नास्तिक तो ईश्वर को पूरी तरह सम्मान देता है, हो सकता है आस्तिक से ज्यादा सम्मान देता हो और सच तो यह है कि आस्तिक से ज्यादा सम्मान ही नास्तिक देता है, क्योंकि आस्तिक शायद ही कभी ईश्वर के संबंध में उतना विचार करता हो जितना नास्तिक कर रहा है और यह भी हो सकता

है कि आस्तिक वे ही लोग बने बैठे हुए हैं जो ईश्वर के संबंध में विचार नहीं करना चाहते, झंझट में नहीं पड़ना चाहते। कहते हैं ठीक है, होगा, जरूर होगा, होना ही चाहिए।

लेकिन नास्तिक प्राणों की बाजी लगता है ईश्वर के लिए। उसके लिए ईश्वर एक जीवंत प्रश्न, एक लिविंग प्रॉब्लम है। उसे तय करना ही कि ईश्वर है या नहीं, क्योंकि उसी तय करने पर उसका जीवन निर्भर करेगा कि वह किस तरह जिए।

आस्तिक कहता है कि है, और जीता इस तरह है जैसे नास्तिक को जीना चाहिए। आस्तिक कहता है कि है परमात्मा, मंदिर में पूजा कर आता है और जीता ऐसे है जैसे परमात्मा पृथ्वी पर कहीं भी न हो। यह आस्तिक का सम्मान है या उस नास्तिक का सम्मान है जो प्राणों की बाजी लगा लेता है? सोचता है दिन और रात, विचार करता है, निर्णय करता है, संदेह करता है, सोचता है, खोजता है कि ईश्वर है? वह उसके प्राणों का सवाल है। अगर होगा तो उसे जिंदगी बदलनी पड़ेगी, नहीं होगा तो जिंदगी दूसरे तरह की होगी। लेकिन नास्तिक ईश्वर को उपेक्षा के योग्य नहीं मानता।

हमारी नई सदी में लाखों लोग ऐसे हैं जो नास्तिक भी नहीं है। वे कहते हैं ईश्वर होगा या नहीं होगा, कोई प्रयोजन नहीं है। यह पहली दफा ईश्वर की मौत की खबर है। ईश्वर मरने के करीब पहुंच गया है यह उसकी खबर है। नास्तिक ईश्वर को नहीं मरने देंगे, लेकिन यह उपेक्षा, यह इनडिफरेंस कि ईश्वर की बात उठे और लोग कहें छोड़ो, कोई और बात करो यह इनडिफरेंस ईश्वर की मौत हो सकती है और आप जान कर हैरान होंगे अगर दुनिया में नास्तिक नहीं होते तो आस्तिक कभी के इनडिफरेंट हो चुके होते। उन्होंने कभी की फिक्र छोड़ दी होती ईश्वर की। वह जो नास्तिक विरोध किए जाता है, आलोचना किए जाता है वह आस्तिक को बल देता है। कहता है कि वह सोचे, फिर सोचे, फिर सोचे कि ईश्वर है या नहीं।

दुनिया में विचार को जन्माने में, विचार को गतिमान करने में कंफर्मिस्ट जो होते हैं, स्वीकार करने वाले जा होते हैं, आस्थावादी जो होते हैं, उन्होंने कोई भी हाथ नहीं बढ़ाया।

आपको शायद पता न हो वेद और उपनिषद से आकर भारत में विचार की धारा रुक गई थी, बिलकुल रुक गई थी। महावीर और बुद्ध, प्रबुद्ध कात्यायन, मक्खली गौशाल, अजित केशकंबली, संजय वेलट्ठीपुत्र, इन सारे लोग ने वह धारा तोड़ी। इन सारे लोगों ने विरोध किया है वेद का, उपनिषद का। महावीर जैसा आलोचक खोजने को मिलेगा दुनिया में, बुद्ध जैसा आलोचक खोजने से मिलेगा? बुद्ध और महावीर और दूसरे लोगों ने तोड़ दी परंपरा। एक तूफान आ गया सारे मुल्क में। सारे मुल्क में चिंतन पैदा हुआ। उस चिंतन की धारा में फिर बसुबंधु और नागार्जुन और दिग्नाग और धर्मकीर्ति और कुंदकुंद और उमास्वाति और शंकर और रामानुज और निंबार्क सब पैदा हुए।

बुद्ध और महावीर ने जो आलोचना की उस आलोचना को उत्तर देने के लिए, उस आलोचना के पक्ष में खड़े होने के लिए एक हजार साल तक चिंतन चला, एक हजार साल तक जवाब खोजना पड़ा बुद्ध के लिए, महावीर के लिए। या बुद्ध और महावीर के पक्ष में दलील खोजनी पड़ी। एक हजार साल मुल्क भी प्रतिभा ने मंथन किया। अदभुत अनुभव उस मंथन से उपलब्ध हुए। उस मंथन से शंकर जैसा आदमी पैदा हुआ, नागार्जुन जैसा अदभुत आदमी पैदा हुआ इस मंथन से, उस आलोचना के परिणाम से। अगर बुद्ध और महावीर ने आलोचना न की होती तो हिंदुस्तान में शंकर और नागार्जुन के पैदा होने की संभावना नहीं थी। वे उस आलोचना के प्रतिफल नहीं थे। लेकिन फिर एक हजार साल तक आलोचना करने से भारत में भयभीत हो गए, क्योंकि बुद्ध और महावीर ने आलोचना की थी तो हमें पंद्रह सौ साल तक सोचना पड़ा था।

आदमी सोचना नहीं चाहता। आदमी सुस्त और काहिल है। वह समझता है कि बिना सोचे काम चल जाए तो बहुत अच्छा है। पंद्रह सौ साल टक्कर लेनी पड़ी मस्तिष्क को, श्रम करना पड़ा। तो आदमी ने सोचा, अब छोड़ो फिक्र, शंकर पर विश्वास कर लो। शंकर पर विश्वास कर लिया। हजार साल से आलोचना फिर बंद हो गई, फिर हिंदुस्तान में हजार सालों में उस तरह के लोग पैदा न हो सके कि नागार्जुन, बुद्ध या महावीर पैदा हो सकते हों। नहीं पैदा हो सके।

अब भारत का पुनर्जागरण का युग आया। देश स्वतंत्र हुआ। अगर इस स्वतंत्रता के साथ भारत के मस्तिष्क में आलोचना की शक्ति नहीं जगती है तो हिंदुस्तान की प्रतिभा का जन्म नहीं होगा, यह मैं आपसे कह देना चाहता हूं। चाहिए तीव्र आलोचना कि हिंदुस्तान में पच्चीस तीव्र आलोचक पैदा हों जो हिंदुस्तान की जड़े हिला दें। उसके मस्तिष्क को हिला दें। तो हम आने वाली सदी में फिर बुद्ध और महावीर और शंकर जैसे लोग पैदा कर सकेंगे। नहीं तो हम पैदा नहीं कर सकेंगे।

लेकिन हम बिलकुल नपुंसक, इंपोटेंट हो गए हैं। हमारी जान निकलती है जरा सा विचार करने में, जरा सा विचार, जरा आलोचना की कि हमारे प्राण कांपते हैं। इतनी कमजोर कौम प्रतिभा पैदा नहीं कर सकती, इतनी कमजोर कौम कैसे प्रतिभा पैदा करेगी? प्रतिभा तो एक साधना है, प्रतिभा तो एक श्रम है।

आपको पता है कि तीन सौ वर्षों में यूरोप में जो भी विकास हुआ है वह किन लोगों की वजह से हुआ है? आस्तिकों की वजह से? श्रद्धा करने वालों की वजह से? कंफर्मिस्ट लोगों की वजह से? आर्थोडाक्स लोगों की वजह से? रूढ़िग्रस्त लोगों की वजह से? रूढ़िग्रस्त लोगों की वजह से दुनिया का कभी विकास नहीं हुआ। किसके द्वारा विकास हुआ है? उन विद्रोहियों की वजह से जिन्होंने सारी रूढ़ि तोड़ने की हिम्मत की, जिन्होंने संदेह किया, विश्वास नहीं। जिन्होंने आलोचना की, आस्था नहीं।

तीन सौ वर्ष के उन वाल्तेयर, रूसो, नीत्शे, फ्रायड, और मार्क्स ऐसे लोगों की वजह से पश्चिम की प्रतिभा को झकझोड़ मिला। प्रतिभा चौंक गई। उत्तर खोजना जरूरी हो गया। या तो पक्ष में या विपक्ष में होना पड़ेगा। कोई विकल्प नहीं रहा कि आप चुपचाप अपनी सुस्ती में और उपेक्षा में बैठे रहें। अब नीत्शे को सुनिएगा तो उसके पक्ष और विपक्ष में, कहीं न कहीं आपको होना पड़ेगा। आप यह नहीं कह सकते कि ठीक है, सुन लिया। आपको यह कहना पड़ेगा कि नीत्शे ठीक है या गलत है। दो के अतिरिक्त तीसरा कोई विकल्प नहीं है।

और जब आपको किसी के ठीक या गलत के लिए सोचना पड़ता है तो आपकी प्रतिभा में अंकुर आने शुरू होते हैं। लेकिन जब आप कहते हैं आलोचना करनी ही नहीं है कि आलोचना विध्वंसक है, हमें तो कहना है वह कहना चाहिए। तो दुनिया के सभी श्रेष्ठ विचारक विध्वंसक थे, लेकिन बाद में हमें याद भी नहीं रह जाता कि वे कितने बड़े आलोचक रहे होंगे और किसी तीव्र आलोचना की होगी। हम तो समझते हैं आलोचना यानी गाली-गलौज हो गई।

यह जो हमारी आज की धारणा है, इस धारणा है, इस धारणा को बिलकुल आग लगा देने की जरूरत है। एक-एक बच्चे को संदेह सिखाया जाना चाहिए, डाउट सिखाया जाना चाहिए। एक बच्चे को क्रिटिकल होने की, आलोचनात्मक होने की प्रेरणा देनी चाहिए। एक-एक बच्चे से मां-बाप को, गुरु को कहना चाहिए कि हमारी बात मान मत लेना, विचार करना, सोचना, झगड़ना, हिम्मत से हमसे लड़ना। अगर तुम्हारे विवेक को स्वीकार हो तो मानना। अगर हम इतनी हिम्मत दिखाएंगे तो हिंदुस्तान की प्रतिभा विकसित होगी, अन्यथा नहीं विकसित हो सकती। क्या करूं? आपकी बात मान लूं, आलोचना नहीं करनी चाहिए? या कि यह देखूं कि आने वाले मुल्क का भविष्य आलोचना से ही पैदा हो सकता है?

मैंने कल शायद कहा कि श्री राधाकृष्णन कोई विचारक नहीं है। बस चिट्ठियां आ गई कि आपने राधाकृष्णन को ऐसे कह दिया?

श्री राधाकृष्णन विचारक हैं या नहीं, या सोचना चाहिए। मैंने कह दिया तो क्या कोई मान लेने की जरूरत है? मैं कहता हूं कि नहीं हैं विचारक—मैं कहता हूं तो मैं इसलिए दलील देता हूं। आप सोचिए कि हैं विचारक तो दलील खोजिए। बस इतना ही मैं चाहता हूं कि नहीं हैं विचारक—मैं कहता हूं तो मैं इसलिए दलील देता हूं। आप सोचिए कि हैं विचारक तो दलील खोजिए। बस इतना ही मैं चाहता हूं कि विचार की प्रक्रिया चले। हो सकता है श्री राधाकृष्णन विचारक सिद्ध हो विचार करने से। और मेरी बात गलत सिद्ध हो। लेकिन मुझे कहना नहीं चाहिए यह कौन सी बात हुई?

मुझे जो लगता है वह मुझे कहना चाहिए। मुझे लगता है श्री राधाकृष्णन कोई विचारक नहीं है। केवल एक टीकाकार हैं, एक व्याख्याकार हैं, एक अनुवादक हैं, एक अच्छे अनुवादक हैं, एक अच्छे टीकाकार हैं। उन्होंने पूरब की धारणाओं को पश्चिम में जितनी सुंदरता से पहुंचाया है उतना शायद किसी ने नहीं पहुंचाया है। लेकिन विचारक वे नहीं है। उन्होंने एक नये विचार को जन्म नहीं दिया है। उनकी सारी किताबों में एक भी ऐसा सूत्र नहीं है जो उनकी मौलिक प्रतिभा से जन्मा हो। वे सब गीता, उपनिषद और वेदों के उधार सूत्र हैं। विचारक होने का कोई सवाल नहीं है उनका। लेकिन हमने कुछ ऐसी हालत पकड़ ली है कि जिस आदमी की हम प्रशंसा करेंगे उसकी हम सब तरह से प्रशंसा करेंगे। हम फिर कोई हिस्सा नहीं छोड़ सकते कि वह न हो, वह सभी होना चाहिए।

# देख कबीरा रोया

हिंदुस्तान में एक पागल भाव पैदा हो गए है कि हमारे महापुरुष में सभी कुछ होना चाहिए। दुनिया के किसी महापुरुष में सभी कुछ नहीं होता। अगर आप महावीर के पास पूछने जाएंगे के साइकिल का पंचर कैसे सुधार जा सकता है, तो महावीर नहीं बता सकते। इसके लिए तो सड़क के कोने पर बैठा हुआ, एकटक लगाए हुए बैठा हुआ साइकिल सुधारने वाला जो आदमी है वही बता सकेगा। लेकिन हमारी धारणा यह है कि महावीर सर्वज्ञ हैं। वही सभी कुछ जानते हैं। ऐसा कुछ भी नहीं जिसको वह नहीं जानते। पागलपन की बातें हैं।

बुद्ध ने मजाक उड़ाया है जैनियों की इस धारणा का। बुद्ध ने कहा है एक ज्ञानी हैं। उनके भक्त कहते हैं कि वे सर्वज्ञ हैं, वे त्रिकालज्ञ हैं, वे तीनों काल जानते हैं। लेकिन उन्हीं ज्ञानी को मैंने ऐसे घरों के सामने भिक्षा मांगते देखा है जहां बाद में पता चलता है घर में कोई है ही नहीं। मैंने उन्हीं ज्ञानी को रास्ते पर चलते हुए कुत्ते की पूंछ पर पैर पड़ते देखा है। बाद में पता चलता है कि अंधेरे में कुत्ता सोया हुआ था और उनके भक्त कहते हैं कि वे त्रिकालज्ञ हैं, तीनों काल जानते हैं!

कहो कि बुद्ध यह गड़बड़ बातें करते रहे हैं। बुद्ध महावीर की आलोचना कर रहे हैं, यह ठीक नहीं कर रहे हैं। नहीं, बुद्ध को जो ठीक लग रहा है वह की रहे हैं। शंकर कहते हैं बुद्ध के लिए कि बुद्ध भटके हुए हैं। बुद्ध बड़े महिमाशाली हैं। होंगे। लेकिन शंकर कहते हैं कि भगवान ने बुद्ध को इसलिए अवतार दिया, वे लोगों को भटका सकें।

आह! किसी आलोचक ने कैसी प्यारी कहानी गढ़ी है। नरक और स्वर्ग बनाए हैं भगवान ने, लेकिन नरक में कोई जाता ही नहीं था तो नरक का जो अधिकारी था उसने भगवान से जाकर कहा कि नरक में कोई आता ही नहीं। तो मुझे किसलिए बैठाया हुआ है? तो भगवान ने बुद्ध को अवतार दिया है कि तुम जाकर लोगों को भ्रष्ट करो ताकि वे नरक जा सकें।

तो शंकर गलत कह रहे हैं? शंकर गलत कह रहे हैं या सही कह रहे हैं यह सोचने की बात है। लेकिन शंकर को कहने का हक है। जो उसे ठीक लगता है वह कह रहे हैं। उसे लगता है कि बुद्ध ने लोगों को भ्रष्ट किया। उस बुद्ध ने, जिनके लिए हम सोचते हैं उनके जैसा महापुरुष जगत में कोई पैदा नहीं हुआ। लेकिन शंकर कहते हैं कि भ्रष्ट किया है। और शंकर की उम्र कितनी है? शंकर ने जब यह बात कही तब उसकी उम्र तीस साल थी। लेकिन अच्छे लोग रहे होंगे। शंकर की बात भी उन्होंने सुनी। न तो पत्थर मारे, न कहा कि बहिष्कार कर देंगे। शंकर के समय तक बुद्ध तो भगवान हो चुके थे। और एक गरीब घर के छोकरे ने कहना शुरू कर दिया कि नहीं, यह आदमी भ्रष्ट करने को पैदा हुआ है। इसने दुनिया को बनाया नहीं, बिगाड़ा। हिम्मतवर लोग थे। जब इतनी हिम्मत होती है तो विचार विकसित होता है।

हमने सारी हिम्मत खो दी है। और फिर हम चाहते हैं कि हम विचारशील हो जाए। हम विचारशील नहीं हो सकेंगे। विचार का जन्म होता है संदेह से, विचार का जन्म होता है संघर्ष से, विचार का जन्म होता है आलोचना से। इसलिए यह मत कहें मुझसे कि मैं आलोचना न करूं!

मैं तो आलोचना करूंगा और जितना आप कहेंगे उतना खोज-खोज कर करूंगा। और एक-एक महापुरुष का पीछा करूंगा कि मुझे जरूरत मालूम होती है, मुझे आवश्यकता लगती है कि इस देश के लिए सबसे बड़ी जरूरत अगर कुछ है तो वह यह है कि इस देश का हजारों साल से रुका हुआ विचार का अवरुद्ध प्रवाह उठ जाए, बहने लगे हमारी सरिता का। फिर से हम सोचने लगें, फिर से हम पूछने लगें, फिर से इंक्वायरी पैदा हो जाए। कैसे अदभुत लोग रहे होंगे। खोजते थे कितनी दूर-दूर तक, कितनी दूर-दूर तक यात्रा करते थे। नालंदा में दस हजार विद्यार्थी थे। सारे हिंदुस्तान के कोने से हिंदुस्तान के बाहर से अफगानिस्तान से और बर्मा से और चीन से हजारों मील की पैदल यात्रा करते आते थे संदेह सीखने, तर्क सीखने, पूछने, जिज्ञासा करने।

एथेंस में जहां विचार का जन्म हुआ यूरोप में, थोड़े से दिनों में एक आदमी ने विचार को जन्म दिला दिया—साक्रेटीज ने। क्या किया साक्रेटीज ने? साक्रेटीज ने जिंदगी के सारे मसले फिर से उठा दिए। एक-एक प्रश्न फिर से खड़ा कर दिया। एक-एक प्रश्न को जो हम समझते थे हल हो गया फिर से जिंदा बना दिया। जब सारे प्रश्न जिंदा हो गए तो सोचना मजबूरी हो गई। उस सोचने से अरस्तू पैदा हुआ, प्लेटो पैदा हुआ, प्लेटीनेस पैदा हुआ। वे सारे लोग पैदा हुए, सारे यूरोप की विचारधारा पैदा हुई, एक साक्रेटीज से। क्योंकि उसने प्रश्नावली पैदा कर दी। उसने एक भी उत्तर को निष्प्रश्न नहीं रहने दिया।

अस्त-व्यस्त कर दिए सारे उत्तर—अतीत ने जो भी उत्तर दिए थे सब गड़बड़ कर दिए—और आदमी को वहां खड़ा कर दिया जहां वह पूछे क्या है सत्य।

साक्रेटीज से लोग कहते हैं कि तुम उत्तर दो। तुम तो बताओ सत्य क्या है। वह कहता, यह मेरा काम नहीं। मेरा काम यह है बताना कि सत्य क्या नहीं है। सत्य क्या है इसकी तो तुम्हारे भीतर जिज्ञासा पैदा हो जाएगी। यह तो तुम खोज लोगे। असत्य क्या है वह मैं बता दूं। मेरा काम पूरा हो जाएगा।

साक्रेटीज ने कहा, मैं तो एक मिडवाइफ, एक दाई की तरह हूं। मेरा काम बच्चों का जन्माना नहीं है, केवल बच्चों के लिए द्वार दे देना है कि वह जन्म जाए। बच्चा तो तुमसे पैदा होगा। मैं बच्चा नहीं पैदा कर सकता।

साक्रेटीज ने कहा, मैं तो संदेह पैदा करूंगा।

साक्रेटीज से लोग डरते थे। अगर रास्ते पर मिल जाए तो नमस्कार करने में डरते थे। क्योंकि उससे नमस्कार किया की कोई झंझट खड़ी न हो जाए। तो मैंने नमस्कार किया तो वह फौरन पूछेगा कि आपने नमस्कार क्यों किया। अब आप कुछ तो कहेंगे, आप कुछ कहेंगे और डायलाग शुरू हो जाएगा।

साक्रेटीज से लोग बचने लगे। वे यह देख लेते कि वह आ रहा है तो वे दूसरी गली से निकल जाते। लेकिन उस अकेले आदमी ने सत्य की आग लगा दी इसका ही बदला लिया है एथेंस के लोगों ने उससे।

हम उस आदमी से बदला लेते हैं जो हमारे अज्ञान को प्रकट कर देता है। क्योंकि वह हमारे अहंकार को चोट पहुंचा देता है। जिस बात को हम समझते थे कि हम तो जानते हैं वह आकर बता देता है कि नहीं जानते। बहुत गुस्सा आता उस आदमी को कि हम तो मान बैठे थे कि हम तो जानते थे, निश्चित हो गए थे, खोज पूरी हो गई थी। इस आदमी ने फिर झंझट खड़ी कर दी। इसने ऐसी बातें उठा दीं जिससे शक पैदा होता है कि हम जानते हैं या नहीं। गुस्सा आता है उस आदमी पर। ऐसे आदमी से हमने हमेशा बदला लिया है।

सारे एथेंस के लोग परेशान हो गए, क्योंकि साक्रेटीज ने सारे पुराने ज्ञान को भस्मीभूत कर दिया, पुराने भवन को गिरा दिया, एक-एक आदमी की आस्था की जमीन खींच ली, एक-एक आदमी अंधेरे में लटक गया और एक-एक आदमी यह कहने लगा, यह आदमी बहुत खतरनाक है। इस आदमी से छुटकारा चाहिए। यह हमें शांति से नहीं जीने देगा।

साक्रेटीज पर उन्होंने मुकदमा चलाया और कहा कि यह साक्रेटीज लोगों का दिमाग खराब करता है। यह हमारे युवकों का दिमाग बिगाड़ता है। इस आदमी को फांसी होनी चाहिए। इसको जहर पिलाना चाहिए। साक्रेटीज से अदालत के अध्यक्ष ने कहा, क्योंकि साक्रेटीज बहुत प्यारा आदमी था। मजिस्ट्रेट ने उससे कहा कि साक्रेटीज अगर तुम यह वचन दे दो की आगे से तुम सत्य की बातें नहीं करोगे तो हम तुम्हें छोड़ सकते हैं। साक्रेटीज ने कहा कि वह तो मेरा धंधा है सत्य की बातें करना। अगर वह धंधा ही छूट जाए तो मैं कर भी क्या सकूंगा?

साक्रेटीज से वह अध्यक्ष कह रहा है अदालत का कि तुम सत्य की बातें और जिज्ञासा और प्रश्न खड़ा न करोगे। साक्रेटीज वहीं अदालत में पूछता है कि महानुभव क्या मैं पूछ सकता हूं, सत्य क्या है? तो पक्का हो जाए पहले कि सत्य क्या है तो फिर मैं सोचूं भी कि उसे छोड़ना है कि नहीं छोड़ना है। सत्य का अर्थ क्या है? सत्य कहां है?

वह अध्यक्ष बोला कि यही तो हम कहते हैं कि यह सब काम पूछने का तुम छोड़ दो।

साक्रेटीज ने कहा कि मैं जिंदगी छोड़ दूंगा, लेकिन यह नहीं छोडूंगा। क्योंकि सत्य से ज्यादा प्यारा कुछ भी नहीं है। और सत्य की खोज में जिसे जाना है, उसे झूठे ज्ञान को छोड़ देना पड़ता है। लोग मुझसे नाराज हो गए हैं। क्योंकि मैंने उनसे झूठा ज्ञान छीन लिया है और सच्चे ज्ञान पर जाने के लिए वे हिम्मत और साहस नहीं जुटा पा रहे हैं। इसलिए एक वैक्यूम, एक शून्य पैदा हो गया है। लेकिन मैं यह शून्य पैदा करता रहूंगा या मर जाऊं या जिंदा रहूंगा तो सत्य बोलता रहूंगा। सत्य के बिना मैं कैसे जी सकता हूं?

उस आदमी ने मर जाना पसंद किया, लेकिन उस आदमी ने एथेंस की संस्कृति को आकाश तक उठा दिया। उस अकेले आदमी ने जिसका खून किया गया, जिसको जहर पिलाया बया उस आदमी की वजह से पश्चिम की सारी संस्कृति की गंगा पैदा हुई। उसकी गंगोत्री साक्रेटीज में है।

# देख कबीरा रोया

हिंदुस्तान में साक्रेटीज, सुकरात जैसे लोगों की जरूरत है ताकि हजारों साल का बंधा हुआ प्रवाह टूट जाए, मुक्त हो सके। हिंदुस्तान फिर सोच सके, फिर विचार कर सके। हमें खयाल ही नहीं, हम जितना विश्वास कर लेते हैं उतना ही विचार करना मुश्किल हो जाता है।

विश्वास विचार की हत्या है।

जितना हम विश्वास करते हैं उतना विचार की कोई जरूरत नहीं रह जाती। विसार की जरूरत तो तब पैदा होती है जब हम विश्वास नहीं करते। जब हम मान लेते हैं कि गांधी महात्मा हैं, काम खत्म हो गया। बच्चे से हमने कह दिया कि वह महात्मा हैं, बात खत्म हो गई। बच्चों को पूछना चाहिए कि महात्मा वह कैसे हैं, क्यों हैं। वही महात्मा क्यों हैं, और कोई महात्मा क्यों नहीं है? ऐसी बात क्या है जिसे हम महात्मा मानें? लेकिन बाप कहेगा कि नहीं, इतनी बातचीत की जरूरत नहीं है। हम जो कहते हैं वह मानो।

हमेशा पुरानी पीढ़ी नई पीढ़ी से यही कहती है कि हम जो कहते हैं वह मानो। यह पुरानी पीढ़ी की कमजोरी बताती है, ताकत नहीं। क्योंकि जब भी कोई आदमी कहता है, मैं जो कहता हूं मानो, तो वह बता देता है, वह कमजोर आदमी है। उसको अपनी बात मनवाने के लिए विवेक को जगाने का विश्वास वह नहीं कर सकता। वह डंडे के बल पर कह रहा है कि मैं जो कहता हूं वह मानो। मानना पड़ेगा। मेरी उम्र ज्यादा है। मेरा अनुभव ज्यादा है। मैंने जिंदगी देखी है। देखी होगी जिंदगी आपने। लेकिन जो जिंदगी आपने देखी, ये बच्चे उस जिंदगी को कभी नहीं देख सकेंगे। ये दूसरी जिंदगी देखेंगे। कृपा करके अपनी जिंदगी का ज्ञान इनकी छाती पर मत थोपें। इनको मुक्त करो ताकि ये जो नई जिंदगी देखेंगे उसको देख सकें। लेकिन नहीं हम भयभीत लोग कहीं ज्ञान न खो जाए, कहीं आस्था न खो जाए, कहीं विश्वास न खो जाए, कहीं श्रद्धा न खो जाए, कहीं सब न खो जाए और है हमारे पास कुछ भी नहीं। सब खोया हुआ है। सिर्फ धुआं-धुआं है। कुछ भी नहीं है हमारे पास।

मैंने सुनी है एक कहानी। एक सम्राट के दरबार में एक आदमी ने आकर कहा था कि मैं स्वर्ग से वस्त्र ला सकता हूं तुम्हारे लिए। उस सम्राट ने कहा, स्वर्ग के वस्त्र? सुने नहीं कभी, देखे नहीं कभी। उस आदमी ने कहा, मैं ले आऊंगा, देख भी सकेंगे, पहन भी सकेंगे। लेकिन बहुत खर्चा करना पड़ेगा। कई करोड़ रुपये खर्च हो जाएंगे। क्योंकि रिश्वत की आदत देवताओं तक पहुंच गई। जब से ये दिल्ली के राजनीतिज्ञ मर-मर कर स्वर्ग पहुंच गए हैं तब से रिश्वत की आदत वहां पहुंच गई। वहां भी रिश्वत चलती है। वहां तो करोड़ों से नीचे की बात नहीं होती। क्योंकि देवताओं का लोक है।

सम्राट ने कहा, कोई हर्जा नहीं, लेकिन धोखा देने की कोशिश मत करना। करोड़ों रुपये देंगे तुम्हें, लेकिन भागने की कोशिश मत करना। मुश्किल में पड़ जाओगे। उसने कहा, भागने का सवाल नहीं है। महल के चारों तरफ पहरा कर दिया जाए, मैं महल के भीतर ही रहूंगा। क्योंकि देवताओं का रास्ता सड़कों से होकर नहीं जाता वह तो अंतरिक्ष यात्रा है अंदर की। वहीं से, अंदर से कोशिश करूंगा। आप घबराइये मत। तलवारें नंगी लगा दी गई। उस आदमी ने छः महीने का समय मांगा और छः महीने में कई करोड़ रुपये सम्राट से ले लिए। दरबारी हैरान थे और चिंतित थे। लेकिन सम्राट ने कहा, घबराहट क्या है। जाएगा कहां रुपये लेकर महल के बाहर।

छः महीने पूरे होने पर सारी राजधानी में हजारों लोग इकट्ठे हो गए देखने को। वह आदमी ठीक समय बारह बजे एक बहुमूल्य पेटी लिए महल के बाहर आ गया। अब तो कोई शक की बात न थी। वह पूरा जुलूस राजमहल पहुंचा। दूर-दूर के राजा, सम्राट, धनपति दरबार में इकट्ठे थे देखने को। उस आदमी ने पेटी वहां रखी और कहा, महाराज यह ले आया। ये वस्त्र आ गए। अब आप मेरे पास आ जाएं। मैं देवताओं के वस्त्र दे दूं। आप पहन लें।

महाराज ने अपनी पगड़ी दी। उसने पगड़ी उस पेटी में डाल दी। वहां से खाली हाथ बाहर निकाला और कहा, महाराज यह पगड़ी दिखाई पड़ती है। हाथ में कुछ भी न था। महाराज ने गौर से देखा। उस आदमी ने कहा, खयाल रहे। देवताओं ने चलते वक्त मुझसे कहा था यह पगड़ी और ये कपड़े उसी को दिखाई पड़ेंगे जो अपने ही बाप से पैदा हुआ हो। उस सम्राट ने कहा, हां, दिखाई पड़ता है। क्यों दिखाई नहीं पड़ेगा? बड़ी सुंदर पगड़ी है। ऐसी पगड़ी न तो कभी देखी, न सुनी।

दरबारियों ने सुना। किसी को भी पगड़ी दिखाई नहीं पड़ती थी। पगड़ी होती तो दिखाई पड़ती। लेकिन दरबारियों ने देखा कि इस वक्त यह कहना कि नहीं दिखाई पड़ती है, व्यर्थ अपने मरे हुए बाप पर शक पैदा करवाने से क्या फायदा है।

पगड़ी से हमको लेना-देना क्या है। अपने बाप को बचाओ, पगड़ी से प्रयोजन क्या है। वे भी तालियां बजाने लगे और कहने लगे, धन्य महाराज, धन्य! पृथ्वी पर ऐसा अवसर कभी नहीं आया। ऐसी पगड़ी कभी नहीं देखी गई। एक-एक आदमी अपने मन में सोच रहा था कि बड़ी गड़बड़ बात है। लेकिन उसने देखा कि सारे लोग कहते हैं कि पगड़ी है तो उसने सोचा कि अपने बाप गड़बड़ रहे हों, लेकिन यह भी किसी से कहने की बात नहीं है। अपने भीतर जान लिया, यह ठीक है। अपना राज अपने घर में रखो। जब सारे लोग कहते हैं तब ठीक ही कहते होंगे।

हमारी यही दलील है कि सारे लोग कहते हैं तो ठीक कहते होंगे। जब पूरा हिंदुस्तान कहता है कि फलां आदमी महावीर भगवान है, फलां आदमी बुद्ध अवतार है, फलां आदमी मुहम्मद पैगंबर है तो ठीक ही कहता होगा। सब लोग कहते होंगे तो ठीक ही कहते होंगे। अकेले क्यों झंझट में पड़ना—उन लोगों ने सोचा। अपनी झंझट का जिसको जितना डर लगा वह उतनी बार आ गया और कहने लगा अहा महाराज धन्य हैं। क्योंकि उसे लगा कि कहीं मैंने धीरे-धीरे कहा तो आसपास के लोगों को शक न हो जाए कि यह आदमी थोड़ा धीरे-धीरे बोलता है।

जितने चोर होते हैं दुनिया में उतने जोर से चिल्लाते हैं कि चोरी किसने की है। चोर को पकड़ो। वे चोर चिल्लाते हैं ये बातें ताकि किसी को शक न हो जाए कि यह आदमी कुछ भी नहीं चिल्लाता। कहीं चोर न हो। रिश्वतखोर चिल्लाते हैं कि मुल्क से रिश्वत बंद होनी चाहिए, बेईमान नेता मुल्क के सामने भाषण देते हैं और कहते हैं भ्रष्टाचार नष्ट करना है। और जितने जोर से मंच पर चिल्लाते हैं कि भ्रष्टाचार नष्ट करना है, जनता समझती है यह बेचारा तो कम से कम भ्रष्टाचारी के खिलाफ बोलना ही पड़ता है।

सम्राट ने देखा कि जब सारा दरबार कह रहा है तो समझ गया वह कि अपने पिता गड़बड़ रहे हैं। अब कुछ बोलना ठीक नहीं है। जो कुछ हैं कपड़े हैं या नहीं, स्वीकार कर लेना ठीक है। पगड़ी पहन ली उसने जो थी ही नहीं। कोट पहन लिया उसने जो था ही नहीं। एक-एक वस्त्र उसके छिनने लगे, वह नंगा होने लगा। आखिरी वस्त्र रह गया तब वह घबड़ाया कि यह तो बड़ी मुश्किल बात है। कहीं कपड़े मालूम नहीं होते।  बस, आखिरी अंडरवियर रह गया। अब यह भी जाता हैं।

और उस आदमी ने कहा, महाराज यह अंडरवियर देवताओं को पहनिए, इसको निकालिए। अब वह जरा घबड़ाया। यहां तक तो गनीमत थी। और दरबारी हैं कि ताली पीटे जा रहे हैं कि महाराज कितने सुंदर मालूम पड़ रहे हैं इन वस्त्रों में आप। और महाराज बिलकुल नंगे हो गए हैं। वे नंगे खड़े हो गए हैं। वे नंगे खड़े हुए हैं।

उस आदमी ने धीरे से कहा महाराज घबड़ाइए मत। सबको अपने बाप की फिक्र है। बिलकुल निकालिए, नहीं तो झंझट हो जाएगी, लोगों को पता चल जाएगा।

उन्होंने जल्दी अंडरवियर निकाल दिया, क्योंकि यह तो घबड़ाहट का मामला था। वे बिलकुल नग्न खड़े हो गए और दरबारी तो नाच रहे हैं खुशी में कि धन्य हैं महाराज और एक-एक आदमी को राजा नंगा दिखाई पड़ रहा है। लेकिन अब कोई उपाय नहीं है। रानी भी देख रही है कि राजा नंगा है, लेकिन कुछ कह नहीं सकती। वह भी ताली पीट रही है। कह रही है महाराज, इतने सुंदर आप कभी नहीं दिखाई पड़े।

और जब उस आदमी ने कहा कि महाराज देवताओं ने मुझसे कहा था कि जब यह वस्त्र महाराज पहने ले तो उनकी शोभा-यात्रा का, प्रोसेशन निकाला जाना चाहिए। राजधानी में हजारों लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं, रास्तों के किनारे पर। लाखों लोग खड़े हैं। वे कहते हैं कि हम महाराज के दर्शन करेंगे। रथ तैयार है, आप कृपा करके रथ पर सवार होइये। आप बाहर चलिए।

अब महाराज और भी घबराए। अभी तक तो कम से कम दरबारी थे, अपने ही मित्र थे, परिचित थे, घर के लोग थे। यह झंझट। उस आदमी ने राजा के कान में कहा, आप घबराइये मत, आपके रथ के पहले डुगडुगी पिटती चलेगी और खबर की जाएगी कि यह वस्त्र उसी को दिखाई पड़ेंगे जो अपने बाप से पैदा हुआ है। आप घबड़ाइये मत। जैसे आदमी ये भीतर हैं वैसे ही आदमी बाहर हैं। सब तरफ एक से बेवकूफ आदमी हैं। आप घबराइये  मत और अगर आपने इनकार किया कि बाहर नहीं जाता हूं तो लोगों को शक हो जाएगा आपके पिता पर।

राजा ने कहा, चलो भाई।

# देख कबीरा रोया

एक दफा आदमी झूठ में फंस जाए तो फिर कहां रुके यह बहुत मुश्किल हो जाता है। जो आदमी झूठ के पहले ही कदम  पर रुक जाता है वह रुक सकता है। जो दस-पांच कदम आगे चल गया है फिर बहुत मुश्किल हो जाती है। लौटना भी मुश्किल। आगे जाना भी मुश्किल। उस बेचारे गरीब सम्राट का नंगा  जाकर रथ पर खड़ा होना पड़ा। उसके सामने ही डुगडुगी पिटने लगी कि ये वस्त्र देवताओं के वस्त्र हैं। ये वस्त्र उन्हीं को दिखाई पड़ेंगे जो अपने ही बाप से पैदा हुए हैं और सबको वस्त्र दिखाई पड़ने लगे। एकदम प्रशंसा होने लगी।

गांव में खबर तो पहले ही पहुंच गई कि सब लोग तैयार होकर आए थे कि अपने बाप की रक्षा करनी है और वस्त्र देखने थे। वस्त्र तो दिखाई नहीं पड़ते थे। राजा नंगा था लेकिन जनसमूह कहने लगा कि ऐसे सुंदर वस्त्र सपनों में भी नहीं देखे, लेकिन कुछ बच्चे अपने बापों के कंधों पर चढ़ कर आ गए थे। वे अपने बाप से कहने लगे, पिताजी, राजा नंगा है। उनके पिताजी ने कहा, चुप नासमझ, अभी तेरा ज्ञान क्या है, अभी तेरी उम्र क्या है। ये बातें अनुभव से आती हैं, ये बड़ी गहरी बातें हैं। जब मेरी उम्र का हो जाएगा, अनुभव मिल जाएगा तो वस्त्र दिखाई पड़ने लगेंगे। ये बातें अनुभव से दिखाई पड़ती हैं। जो बच्चे चुप नहीं हुए उनके मां-बाप मुंह बंद करके भीड़ के पीछे खिसक गए, क्योंकि बच्चों का क्या भरोसा? आस-पास के लोग सुन लें कि इस आदमी के लड़के ने यह कहा है!

हमेशा भीड़ के भय के कारण हम असत्यों को स्वीकार किये बैठे रहते हैं, भीड़ का भय, फियर ऑफ क्राउड। जिसको हम सत्य मान कर बैठें हैं वह सत्य है? या सिर्फ भीड़ का भय है कि चारों तरफ के लोग क्या कहेंगे? चारों तरफ के लोग जिसको मानते हैं उसको हम भी मानते हैं। ऐसा आदमी सत्य की खोज में कभी भी नहीं जा सकता है, जो भीड़ को स्वीकार कर लेता है।

सत्य की खोज भीड़ से मुक्त होने की खोज है। वह जो पब्लिक ओपीनियन है, वह जो भीड़ का मत है उसको पकड़ कर जो बैठ जाता है वह आदमी सत्य की यात्रा में एक कदम भी नहीं उठा सकता, क्योंकि भीड़ एक-दूसरे से भयभीत है। आप जिनसे भयभीत हैं वे आपसे भयभीत हैं, यह म्युचुअल फियर है, इससे छुटकारा बहुत मुश्किल है। और लोग क्या कहेंगे दुनिया क्या कहेगी? जब सब लोग ऐसा मानते हैं तो ठीक ही होगा। सत्य की ये धारणाएं नहीं हैं, असत्य को सत्य बनाने की तरकीबें हैं। वह जो फॉल्स है, वह जो मिथ्या है उसको भीड़ के द्वारा बिलकुल इकट्ठा किया जाता है। सत्य तो अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है, लेकिन असत्य को भीड़ का मत चाहिए, उसके बिना खड़ा नहीं हो सकता।

इसीलिए जब दुनिया में असत्य को फैलाना हो, जब असत्य को प्रचारित काना हो तो एक आदमी हिम्मत नहीं जुटा पाता। भीड़ चाहिए, भीड़ के साथ प्रसार चाहिए, भीड़ के साथ भय चाहिए, क्योंकि भय के बिना भीड़ भी मानने को राजी नहीं होंगी। इसलिए वे कहते हैं कि ईश्वर को नहीं मानोगे तो नरक जाना पड़ेगा। अब नरक जाने की तैयारी किसी की भी नहीं हो सकती। ईश्वर को नहीं मानने की तैयारी बहुत लोगों की हो सकती है, लेकिन नरक जाने की तैयारी और फिर नरक का चित्र कि वहां आगे के कड़ाहे जल रहे हैं अनंत काल से, तेल भरा है, उनमें न तेल चुकता है, न आग चुकती है और आदमी उनमें सड़ाए जा रहे हैं, जलाएं जा रहे हैं। आदमी मरता भी नहीं है, उस कड़ाहे में सिर्फ जलता है। करोड़ों-करोड़ों कीड़े हैं जो आदमी के जाते ही उसके शरीर में सब तरफ से घुस जाते हैं, हजारों छेद कर देते हैं, चक्कर लगाते हैं उसके शरीर में वे कीड़े। वे कीड़े अमर हैं और आदमी के शरीर भर छिद्र हो जाते हैं, छलनी हो जाता है, लेकिन वह भी मरता नहीं है और लाखों-करोड़ों कीड़े उसके शरीर में सब तरफ से घूमते हैं और दौड़ते हैं। इस तरह की घबराहट पैदा करते हैं। वे कहते हैं, अगर नहीं मानोगे तो नरक जाना पड़ेगा। तो आदमी सोचता है मान ही लो। ऐसा नरक अगर कहीं हुआ तो कौन झंझट में पड़े।

ठीक है हमारे भगवान हैं, वे कहते हैं और जो भगवान को मान लेगा हमारे भगवान को, क्योंकि भगवान बहुत प्रकार के हैं। भगवान का कोई एक प्रकार नहीं है, कोई एक क्वालिटी नहीं, बहुत भेद हैं, बहुत सी वेराइटीज हैं भगवान की। मुसलमान का भगवान अलग तरह का है, हिंदू का अलग तरह का है, ईसाई का अलग तरह का है। जितने तरह के लोग हैं उतने तरह के भगवान हैं। वे सब कहते हैं कि हमारे भगवान के सिवा अगर दूसरे के भगवान को मानोगे तो फिर तुम समझ लेना, नरक के सिवाय कोई रास्ता नहीं रह जाएगा, क्योंकि आखिर में जीसस क्राइस्ट ही बचाएंगे, ईसाई कहते हैं। मुसलमान

कहता है जब मुहम्मद को पकड़ो तब वही बचाएंगे कोई और बचाने वाले नहीं है। तो ध्यान रखना, अगर मुहम्मद से बचे तो गए दोजख में, अगर जीसस से बचे तो जलना पड़ेगा अनंत काल तक अग्नि में।

हां, और जो जीसस को मानेगा, मुहम्मद को मानेगा उसके लिए स्वर्ग में सारी सुविधाओं का इंतजाम है। उनके लिए वहां सुंदर महल हैं और स्वर्ग, पता है आपको? यहां तो आप एकाध कमरे को एयरकंडीशन कर पाते हैं, स्वर्ग पूरा का पूरा एयरकंडीशन है, शीतल मंद बयार वहां बहती है सदा। वहां सूरज निकलता है लेकिन ताप नहीं होता है सिर्फ प्रकाश होता है। वहां वृक्ष कभी कुम्हलाते नहीं, फूल कभी मुरझाते नहीं, वहां पत्ते कभी पीले नहीं पड़ते, वहां कभी बुढ़ापा नहीं होता। स्त्रियों की उम्र वहां सोलह वर्ष पर रुक जाती है, ऐसा सुंदर स्वर्ग है। वहां वृक्ष हैं कल्पवृक्ष, जिनके नीचे बैठ कर जो भी आप कामना करें वह कामना करते ही पूरी हो जाती है। ऐसा नहीं कि फिर उसके लिए कोई श्रम करना पड़ता हो, ऐसा नहीं कि किसी से कहना पड़ता हो। आप वृक्ष के नीचे बैठ गए और आपने कहा कि एक देवी मौजूद हो जाए, देवी मौजूद हो जाएगी। आपने कहा पलंग आ जाए, पलंग आ जाएगी, आंख खुली और पलंग सामने मौजूद। वह कामना की और पूरी हो जाती है ऐसे कल्पवृक्ष हैं। जो हमारे भगवान को मानेगा उसको ऐसे कल्पवृक्ष मिलेंगे, जो नहीं मानेगा उसको नरक में डाल दिया जाएगा।

इस भय के आधार पर आदमी को कुछ भी मनाने की कोशिश की जाती है। फिर भीड़ का भय, जिनके साथ जीना है उनके अनुकूल न रहो तो बहुत मुसीबत हो जाती है, वे मुसीबत में डाल देंगे, जीना मुश्किल कर देंगे। लड़की का विवाह होना मुश्किल हो जाएगा, समाज कि जिंदगी कठिन हो जाएगी। उसके भय से मानते चलो जो लोग कहते हैं। भीड़ के भय को मान लो। भीड़ जिसको कहे भगवान उसको मानने वाले व्यक्ति कभी भी आत्मा के विकास को उपलब्ध नहीं होते।

आत्मा के विकास को वे उपलब्ध होते हैं जो सत्य की सतत चेष्टा करते हैं खोज की, जो सत्य के लिए कुछ भी खोने को तैयार होते हैं, जो सत्य के लिए सब कुछ दांव पर लगाने का साहस जुटाते हैं वे लोग सत्य को उपलब्ध होते हैं।

लेकिन इस देश ने तो सत्य को पाने की सामर्थ्य और आकांक्षा ही खो दी है। वह कहता है आलोचना ही मत करना, वह कहता है विचार ही मत करना। नहीं मैं आपसे प्रार्थना करूंगा, विचार करना, संदेह करना, आलोचना करना। आपके महात्मा और आपके महापुरुष इतनी कच्ची मिट्टी के नहीं है कि आपकी आलोचना और आपके विचार से नष्ट हो जाएंगे। वे बचेंगे और निखर कर बचेंगे जैसे स्वर्ण आग से गुजर कर और साफ हो जाती है वैसे ही आलोचना की निरंतर धारा से गुजर कर महापुरुष और निखर कर प्रकट हो जाते हैं। उनसे भयभीत होने की कोई भी जरूरत नहीं और जो नहीं प्रकट हो सकेंगे उनसे जल्दी छुटकारा हो जाए उतना ही अच्छा है। उनके साथ कब तक जीएंगे हम। उनको जिलाने की जरूरत क्या है? इसलिए मैंने जान कर एक उदाहरण की तरह गांधी को चुन कर बात की है और अगर मुझे खयाल आ गया तो मैं एक-एक महापुरुष पर बात करने का विचार करता हूं और एक-एक महापुरुष पर विचार करना पड़ेगा।

मुल्क की प्रतिभा को जगाना जरूरी है। मुल्क के खोए प्राणों को फिर से गति देना जरूरी है, मुल्क के मन में फिर एक मंथन पैदा करना जरूरी है। अगर मंथन पैदा हो जाए, अगर चिंतन पैदा हो जाए, अगर विचार पैदा हो जाए तो हम हजारों साल के अंधकार को मिटाने में समर्थ हो जाएंगे। एक छोटा से दीये से हजारों साल का अंधकार मिट जाता है। अंधकार यह नहीं कहता कि मैं हजार साल पुराना हूं इसलिए इस छोटे से दीये से कैसे मिटूंगा, नहीं मिटता। एक दिन का दिया है उससे मैं कैसे मिटूंगा, मैं हजारों साल पुराना हूं। विचार का दिया जले इस देश के प्राणों में तो हजारों साल का अंधकार पल भर में मिट सकता है।

बंबई, दिनांक 4 दिसंबर 1968

देख कबीरा रोया

छठवां प्रवचन

उगती हुई जमीन

एक मित्र ने पूछा कि आप गांधीजी की अहिंसा में विश्वास नहीं करते हैं क्या? और यदि अहिंसा में विश्वास नहीं करते हैं गांधी की, तो क्या आपका विश्वास हिंसा में हैं?

पहली बात यह कि मेरा विश्वास हिंसा में तनिक भी नहीं है और दूसरी बात यह कि गांधी की अहिंसा में भी विश्वास नहीं करता हूं। गांधी की अहिंसा में भी बहुत अहिंसा नहीं मालूम देती, इसलिए गांधी की अहिंसा बहुत लचर, बहुत कमजोर है। गांधी की अहिंसा मुझे बहुत अधकचरी इसलिए लगती है क्योंकि पूर्ण अहिंसा में मेरी आस्था है। गांधीजी कर अहिंसा के वास्तविक अंतराल में झांकने पर मुझे अचंभा सा होता है

गांधीजी अफ्रीका में बोर युद्ध में स्वयंसेवक की तरह सम्मिलित हुए। बोर अपनी आजादी की लड़ाई लड़ रहे थे और गांधीजी गोरों की आजादी की लड़ाई को दबाने के लिए, जो साम्राज्यशाही प्रयास कर रही थी उस साम्राज्यशाही की ओर से स्वयंसेवक की तरह भरती हुए। गांधी जी पहले महायुद्ध में अंग्रेजों के एजेंट की तरह भारत में लोगों को फौज में भरती करवाने का काम करते रहे। यह बहुत अचंभे की बात मालूम पड़ती है कि पहले महायुद्ध में गांधी ने लोगों को फौज में भरती होने और युद्ध में जूझने की प्रेरणा दी।

पंजाब के गांवों में मुसलमानों ने बगावत कर दी। मुसलमानों को दबाने के लिए अंग्रेजों ने गोरखों की फौज भेज दी थी। अंग्रेजों का न्याय था कि अगर हिंदू किसी किसी गांव में विद्रोह करें तो मुसलमान की सेना की टुकड़ी भेजो और यदि मुसलमानों का गांव विद्रोह करे तो हिंदुओं की टुकड़ी वहां भेजो ताकि दोनों ही संप्रदायों को आग में झोंक कर, उससे हाथ सेंके जा सकें। गोरखों की टुकड़ी ने एक अदभुत ऐतिहासिक कार्य किया। गोरखों कि टुकड़ी ने मुसलमान बस्ती पर, मुसलमान लोगों पर, मुसलमान लोगों पर गोली चलाने से इंकार कर दिया। वे बंदूकों को जमीन पर टेक कर खड़े हो गए और उन्होंने कहा, हम अपने भाइयों पर गोली नहीं चलाएंगे। यह बड़ी अदभुत और बड़ी अहिंसात्मक घटना थी। उन टुकड़ियों ने अपनी जान बाजी पर लगाकर गोली चलाने से इंकार कर दिया। उन्होंने जाकर अपनी बंदूकें छावनी में जमा करवा दीं और जाकर समर्पण कर दिया और कहा कि हम गोली चलाने से इंकार करते हैं, चाहे जो भी सजा दी जाए, हम अपने भाइयों पर गोली नहीं चला सकते।

हम तो सोच सकते थे कि गांधीजी इन सैनिकों की प्रशंसा करेंगे। लेकिन गांधीजी ने इन सैनिकों की निंदा की। इंग्लैंड में जब गांधीजी से पूछा गया कि आश्चर्य की बात है कि आपने अहिंसक होते हुए इन सैनिकों की निंदा की, जिन्होंने बंदूकें चलाने से इंकार किया। तो गांधीजी ने क्या कहा, आपको पता है!

गांधीजी ने कहा, मैं सैनिकों को अज्ञाहीनता नहीं सिखा सकता हूं क्योंकि कल जब देख आजाद हो जाएगा और सत्ता हमारे साथ में आ जाएगी तो इन्हीं सैनिकों के सहारे हमें शासन करना है।

यह किस प्रकार की अहिंसा है? यह थोड़ा विचारना है।

वे सैनिक भी दंग रह गए होंगे। अगर गांधीजी ने इन लोगों की प्रशंसा की होती तो हिंदुस्तान भर का सैनिक यह हिम्मत जुटा सकता था, वह हर हिंदुस्तानी चाहे वह किसी भी संप्रदाय का हो, पर गोली चलाने के लिए इंकार कर देता। लेकिन गांधीजी ने इन सैनिकों की निंदा की, आज्ञाहीनता के आधार पर और कहा कि अहिंसा को तोड़ना उचित नहीं है। सैनिकों को कर्तव्य है कि वे आज्ञा मानें। क्यों? क्योंकि कल जब गांधीजी के लोगों के हाथ में देश जाएगा तो इन्हीं सैनिकों के सहारे शासन चलाना है। अब हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि बाईस वर्ष की आजादी के इतिहास में, गांधीजी के पीछे चलने वाले लोगों के हाथ में जब से सत्ता आई है, शासन का दमन बढ़ता ही गया है, गोलियों और संगीनों के आधार पर शासन चला जा रहा है। ये गोलियां सत्ता के चलाए जाने के काम में लाई जा रही हैं। अब सत्ता गांधीवादियों के हाथ में हैं। अंग्रेजों ने भी कभी हिंदुस्तान में इतनी गोलियां नहीं चलाई थीं जितनी कि जिसको हम अपना शासन कहते हैं, उन्होंने चलाइ और जिस क्रूरता से गोली चलाई और जितने लोगों की हत्या की!

यह बहुत आश्चर्य की बात है। लेकिन यह भी साथ में समझ लेना जरूरी है कि गांधीजी अहिंसात्मक रूप से जो आंदोलन चलाते थे वह आंदोलन ही दबाव डालने के लिए था और मेरी दृष्टि में जहां दबाव है वहां हिंसा है। चाहे दबाव कहीं से डाला जाए, चाहे आपके घर के सामने आकर अनशन करके बैठ जाऊं और कहूं कि मैं मर जाऊंगा अगर मेरी बात नहीं मानोगे। यह दबाव ही हिंसा है। दबाव मात्र हिंसा है। दबाव डालने के ढंग अहिंसात्मक हो सकते हैं लेकिन दबाव खुद हिंसा है। अगर मैं अपनी बात मनवाने के लिए अपनी जान दांव पर लगा दूं और कहूं कि मैं मर जाऊंगा तो जिसको हम

सत्याग्रह कहते हैं और अनशन कहते हैं वह क्या है? वह आत्महत्या की धमकी है और वह धमकी हिंसा है। चाहे दूसरे को मारने की धमकी हो, चाहे अपने को मारने की धमकी हो। धमकी सदा हिंसात्मक है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह धमकी अपने लिए है या दूसरे के लिए है। कई बार यह भी हो सकता है कि मैं आपको मारने के लिए धमकी दूं तो आप मेरा मुकाबला कर सकते हैं, लेकिन जब मैं अपने को मारने की धमकी देता हूं तो आपको निहत्था कर देता हूं, आप मुकाबला नहीं कर सकते हैं। यह हिंसा ज्यादा सूक्ष्म है और बहुत छिपी हुई है। इसका पता चलाना बहुत मुश्किल है।

अगर अहिंसात्मक सत्याग्रह किसी को करना हो तो न तो खबर करनी चाहिए, न जनता को पता चलना चाहिए, न जिस आदमी के हृदय-परिवर्तन के लिए कोशिश कर रहा हूं उसको खबर करनी चाहिए। मौन, एकांत में मैं अपने को शांत करूं और ध्यानस्थ हो जाऊं, समाधि-मग्न हो जाऊं, अपने को पवित्र करूं और हृदय में वे विचार भी हों जो दूसरे व्यक्ति को परिवर्तित करते रहें तब तो यह अहिंसा हुई। लेकिन यदि अखबारों में प्रचार हो, भीड़भाड़ को पता चल जाए, मेरी जान को बचाने वाले लोग खुश हो जाएं और जिस आदमी को बदलना चाहता हूं कि उसके दरवाजे पर बैठ जाऊं और कहूं कि मैं मर जाऊंगा। यह अहिंसा नहीं है। यह सब हिंसा है। यह हिंसा का रूपांतरण है, ये हिंसा के ही श्रेष्ठतम रूप हैं।

मैंने एक मजाक सुना है। मैंने सुना है, एक युवक एक युवती से प्रेम करता था और उसके प्रेम में दीवाना था, लेकिन इतना कमजोर था कि हिम्मत भी नहीं जुटा पाता था कि विवाह करके उस लड़की को घेर ले आए, क्योंकि लड़की का बाप राजी नहीं था। फिर किसी समझदार ज्ञानी ने उसे सलाह दी कि अहिंसात्मक सत्याग्रह क्यों नहीं करता? कमजोर कायर, वह डरता था। उसको यह बात जंच गई। कायरों को अहिंसा की बात एकदम जंच जाती है—इसलिए नहीं कि अहिंसा ठीक है, बल्कि कायर इतने कमजोर होते हैं कि कुछ और नहीं कर सकते।

गांधीजी की अहिंसा का जो प्रभाव इस देश पर पड़ा वह इसलिए नहीं कि वे लोगों को अहिंसा मालूम पड़ी। लोग हजारों साल के कायर हैं और कायरों को यह बात समझ में पड़ गई है ठीक है, इसमें मारने का डर नहीं है, हम आगे जा सकते हैं। लेकिन तिलक गांधीजी कर अहिंसा से प्रभावित नहीं हो सके, सुभाष भी प्रभावित नहीं हो सके। भगतसिंह फांसी पर लटक गया और हिंदुस्तान में एक पत्थर नहीं फेंका गया उसके विरोध में! आखिर क्यों! उसका कुल कारण यह था कि हिंदुस्तान जन्मजात कायरता में पोषित हुआ है। भगतसिंह फांसी पर लटक रहे थे, गांधीजी वाइसराय से समझौता कर रहे थे और उस समझौते में हिंदुस्तान के लोगों को आशा थी कि शायद भगतसिंह बचा लिया जाएगा, लेकिन गांधीजी ने एक शर्त रखी कि मेरे साथ जो समझौता हो रहा है उस समझौते के आधार पर सारे कैदी छोड़ दिए जाएंगे लेकिन सिर्फ वे ही कैदी जो अहिंसात्मक कैदी ही सिर्फ छोड़े जाएंगे। भगतसिंह को फांसी लग गई। जिस दीन हिंदुस्तान में भगतसिंह को फांसी हुई उस दिन हिंदुस्तान की जवानी को भी फांसी लग गई। उसी दिन हिंदुस्तान को इतना बड़ा धक्का लगा जिसका कोई हिसाब नहीं। गांधी की भीख के साथ हिंदुस्तान का बुढ़ापा जीता, भगतसिंह की मौत के साथ हिंदुस्तान की जवानी मरी। क्या भारतीय युवा पीढ़ी ने कभी इस पर सोचा है?

उस युवक को किसी ने सलाह दी, तू पागल है, तेरे से कुछ और नहीं बन सकेगा, अहिंसात्मक सत्याग्रह कर दे। वह जाकर उस लड़की के घर के सामने बिस्तर लगाकर बैठ गया और कहा कि मैं भूखा मर जाऊंगा, आमरण अनशन करता हूं, मेरे साथ विवाह करो। घर के लोग बहुत घबराए, क्योंकि वह और कुछ धमकी देता तो पुलिस को खबर करते लेकिन उसने अहिंसात्मक आंदोलन नहीं है और प्रेम में भी अहिंसात्मक आंदोलन होना ही चाहिए।

घर के लोग बहुत घबराए। फिर बाप को किसी ने सलाह दी कि गांव में जाओ किसी रचनात्मक, किसी सर्वोदयी, किसी समझदार से सलाह लो कि अनशन में क्या किया जा सकता है। बाप गए, हर गांव में ऐसे लोग हैं जिनके पास और कोई काम नहीं है। वे रचनात्मक काम घर बैठे करते हैं। बाप ने जाकर पूछा, हम क्या करें बड़ी मुश्किल में पड़ गए हैं। अगर वह छुरी लेकर धमकी देता तो हमारे पास इंतजाम था, हमारे पास बंदूक है, लेकिन वह मरने की धमकी देता है, अहिंसा से। उस आदमी ने कहा घबराओ मत, रात मैं आऊंगा, वह भाग जाएगा। वह रात को एक बूढ़ी वेश्या को पकड़ लाया उस वेश्या ने जाकर उस लड़के के सामने बिस्तर लगा दिया और कहा कि आमरण अनशन करती हूं, तुमसे विवाह करना चाहती हूं। वह रात बिस्तर लेकर लड़का भाग गया।

गांधीजी ने अहिंसात्मक आंदोलन के नाम पर, अनशन के नाम पर, जो प्रक्रिया चलाई थी, भारत उस प्रक्रिया से बर्बाद हो रहा है। हर तरह की नासमझी इस आंदोलन के पीछे चल रही है। किसी को आंध्र अलग करना हो तो अनशन कर दो, कुछ भी करना हो, आप दबाव डाल सकते हैं और भारत को टुकड़े-टुकड़े किया जा रहा है, भारत को नष्ट किया जा रहा है। वह एक दबाव मिल गया है आदमी को दबाने का। मत जाएंगे, अनशन कर देंगे, यह सिर्फ हिंसात्मक रूप हैं, अहिंसा नहीं है। जब तक किसी आदमी को जार जबरदस्ती से बदलना चाहता हूं चाहे वह जोर किसी भी तरह की हो, उसका रूप कुछ भी हो, तब तक मैं हिंसात्मक हूं। मैं गांधीजी की अहिंसा के पक्ष में नहीं हूं—उसका यह मतलब न लें कि मैं अहिंसा के पक्ष में नहीं हूं। अखबार यही छपाते हैं कि मैं अहिंसा के पक्ष में नहीं हूं।

मैं गांधीजी कर अहिंसा के पक्ष में नहीं हूं क्योंकि मैं अहिंसा के पक्ष में हूं। लेकिन उसको मैं अहिंसा नहीं मानता इसलिए मैं पक्ष में नहीं हूं। गांधीजी की अहिंसा चाहे गांधीजी को पता हो या न हो, हिंसा करेगी। यह हिंसा बड़ी सूक्ष्म हज। एक आदमी को मार डालना भी हिंसा है और एक आदमी को अपनी इच्छा के अनुकूल ढालना भी हिंसा है। जब एक गुरु दस-पच्चीस शिष्यों की भीड़ इकट्ठी करके उनको ढालने की कोशिश करता है अपने जैसा बनाने की, जैसे कपड़े पहनो, जब मैं उठता हूं ब्रह्म मुहूर्त में तब तुम उठो, जो मैं करता हूं वही तुम करो—तो हमें पता नहीं है, यह चित्त बड़ी सूक्ष्म हिंसा की बात सोच रहा है। दूसरे आदमी को बदलने की चेष्टा में, दूसरे आदमी को अपने जैसा बनाने की चेष्टा में भी आदमी हिंसा करता है। जब एक बाप अपने बेटे को अपने जैसा बनाने की कोशिश करता है तो बाप को पता है, यह हिंसा है। जब बाप बेटे से कहता है कि तू मेरे जैसा बनना तो दो बातें काम कर रही हैं। एक तो बाप का अहंकार और दूसरे कि मेरे बेटे को मैं अपने जैसा बनाकर छोडूंगा। यह प्रेम नहीं है। सारे गुरु लोगों को अपने जैसा बनाने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। उस प्रयत्न में व्यक्ति हिंसा करता है। जो आदमी अहिंसक है वह कहता है कि तुम अपने ही जैसा बन जाओ बस यह काफी है, मेरे जैसे बनने की कोई जरूरत नहीं है।

कोई अहिंसात्मक व्यक्ति किसी को अपना अनुयायी नहीं बना सकता है, क्योंकि अनुयायी बनाना सूक्ष्म हिंसा है। कोई अहिंसक व्यक्ति किसी को अपना शिष्य नहीं बना सकता है क्योंकि गुरु बनने जैसी हिंसा खोजनी दुनिया में बहुत मुश्किल है। लेकिन ये सूक्ष्म हिंसाएं हैं जो दिखाई नहीं देती और यह भी ध्यान रहे कि जब कोई आदमी दूसरे के साथ हिंसा करना बंद कर देता है तो हिंसा की प्रवृत्ति नष्ट हो जाती, हिंसा की प्रवृत्ति स्वयं पर लौट आती है। अपने साथ हिंसा करना शुरू कर देता है। जिसको हम तपश्चर्या कहते हैं, तप कहते हैं, त्याग कहते हैं, सौ में निन्यानबे मौके पर अपने पर लौटी हुई हिंसा के ये दूसरे नाम हैं और कुछ भी नहीं।

एक आदमी दूसरे को सताना चाहता है। अंग्रेजी में एक शब्द सैडिस्ट है, जो आदमी दूसरे को सताना चाहता है उसको वे कहते हैं सैडिस्ट, उसे वे कहते हैं परपीड़नवादी। एक दूसरा शब्द है मैसोचिस्ट, जो आदमी अपने को सताने में लग जाता है उसको कहा जाता है मैसोचिस्ट, आत्मपीड़नवादी। हम दूसरों का सताने वाले को तो हिंसक कहते हैं, लेकिन खुद को सताने वाले को हिंसक नहीं कहते हैं और मजा यह है कि दूसरे को सताने में तो दुनिया बाधा डाल सकती है पर स्वयं को सताने में कोई बाधा नहीं डाल नहीं सकता है। स्वयं को सताने में प्रत्येक आदमी मुक्त है। यह जो तपश्चर्या करने वाले लोग हैं, ये कांटों में खड़े लोग हैं, धूप में खड़े लोग हैं, भूख और उपवास करने वाले लोग हैं—इनकी पूरी कथा आप समझें। इनके आविष्कारों का पता लगाएं कि कैसे-कैसे अपने को सताने के आत्मपीड़ा के उपाय निकालते हैं। कैसे उनको साधु कहें जो अपनी जननेंद्रिय काट लेते रहे? ऐसे साधु भी रहे हैं जिन्होंने अपनी आंखें फोड़ लीं और अंधे हो गए और ऐसे साधु भी रहे हैं जो पैर के जूते में कीलें लगाते रहे ताकि पैर में घाव बनते रहें। कमर में पट्टे बांधते रहे और कीलें लगाते रहे ताकि कमर में घाव बनते रहें। शरीर को सब तरह से कोड़े मारने वाले साधु सुबह से उठ कर कोड़े मार रहे हैं और जो जितने ज्यादा कोड़े मारेगा उतना बड़ा साधु हो जाएगा।

ये सारे के सारे लोग हिंसक लोग हैं, ये अहिंसक लोग नहीं हैं, केवल अंतर इतना है कि इनकी हिंसा दूसरे पर न जाकर स्वयं पर लौट आई है। उसने वापस लौटना प्रारंभ कर दिया है अहिंसा बहुत अदभुत बात है, लेकिन हिंसा से बचना बहुत मुश्किल है। हिंसा को बदल लेना बहुत आसान है, हिंसा नए रूपों में खड़ी हो जाती है। दूसरों को बदलने की चिंता,

दूसरों को बदलने का दबाव, दूसरों को अपने जैसा बनाने की सारी कोशिश हिंसा है और दुनिया के सारे गुरुओं को दुनिया के इन सारे लोगों को जो अनुयायियों की भीड़ इकट्ठी करते हैं, जमातें खड़ी करते हैं, और अपनी शक्ल के आदमी पैदा करते हैं; उन सबको मैं एक कतार में हिंसक मानता हूं। अहिंसक व्यक्ति दूसरी बात हैं।

अहिंसक का मतलब है ऐसा व्यक्ति, जो किसी पर भी किसी तरह का दबाव डालने की कामना से मुक्त हो गया है, क्योंकि दबाव डालकर हम दूसरे से श्रेष्ठ हो जाते हैं और आपने कभी खयाल किया है, छुरा बताकर आप दूसरे से श्रेष्ठ नहीं होते लेकिन अनशन करके आप दूसरों से श्रेष्ठ हो जाते हैं।

नीत्शे ने एक बात कही है मजाक में जीसस के खिलाफ। कहा है कि जीसस ने कहा है कि कोई गाल पर तुम्हारे चांटा मारे तो दूसरा गाल भी उसके सामने कर देना। नीत्शे ने कहा है, इससे ज्यादा अपमान दूसरे आदमी का और क्या हो सकता है? तुमने उसे आदमी ही नहीं माना, अपने बराबर भी नहीं माना। किसी ने चांटा मारा तुम्हारे गाल पर, तुमने दूसरा गाल कर दिया। उस दूसरे आदमी से देवता हो गया, वह जमीन का किस हो गया। नीत्शे ने मजाक में कहा है कि दूसरे आदमी का इससे बड़ा अपमान और क्या हो सकता है और यह हो सकता है कि कोई आदमी प्रेम के कारण दूसरा गाल न करे, सिर्फ इसलिए दूसरा गाल कर दे कि देख लो, तुम हो जमीन  के कीड़े हम हैं फरिश्ते हम हैं देवता।

दूसरे से ऊंचा होने की तरकीब इतनी बारीक है कि एक आदमी दूसरे से ऊंचा हो सकता है सिंहासन पर बैठ कर और एक आदमी दूसरे से ऊंचा हो सकता है त्याग करके। लेकिन दूसरे से ऊंचा होने की कामना हिंसा में ले जाती है, अहिंसा में नहीं। जब भी हम दूसरे से ऊंचा होने की कामना में संलग्न हो जाते हैं, चाहे हमें ज्ञात न हो, चाहे हमें कांशसली पता हो और चाहे अनकांशस माइंड काम कर रहा हो, चाहे अचेतन मन काम कर रहा हो और हमें पता न हो, लेकिन दूसरे को बदलने की कोशिश में स्वयं ही श्रेष्ठता भीतर अनुभव होनी शुरू हो जाती है।

मैं इस सबके बुनियादी रूप से खिलाफ हूं। मैं मानता हूं कि व्यक्ति प्रार्थना कर सकता है, ध्यान कर सकता है, व्यक्ति अंतस को शुद्ध का सकता है और उसके अंतस की शुद्धि के कारण उसके चारों तरफ के दबावों में परिवर्तन शुरू हो जाएगा। लेकिन वह परिवर्तन उस व्यक्ति की चेष्टा नहीं है, उस व्यक्ति का प्रयास नहीं है। महावीर और बुद्ध भी अहिंसक थे। गांधी की अहिंसा से मैं उनकी अहिंसा को श्रेष्ठतर और शुद्धतर मानता हूं। गांधी के और बुद्ध के बीच हम कुछ बातें और करें तो पता चलेगा। महावीर और बुद्ध किसी को बदलने के लिए कोई अहिंसक आंदोलन नहीं कर रहे हैं, लेकिन भीतर आत्मा प्रविष्ट हुई है, उसकी किरणें आएंगी और बिना प्रयास के चारों तरफ बदलाहट लानी शुरू करती हैं। अहिंसक आदमी ने दुनिया में पहले भी अपनी हिंसा की किरणें दी हैं लेकिन वे किरणें प्यार करके दी गई हैं और चेष्टा करके नहीं दी गई हैं। वे किरणें उपलब्ध होती हैं। सूरज निकलता है और अंधेरा विलीन हो जाता है। सूरज कोई घोषणा नहीं करता कि अंधेरे को दूर करने मैं आ गया हूं, अंधेरा सावधान!

अहिंसा कुछ करती नहीं है, अहिंसा से परिवर्तन आता है। अहिंसक परिवर्तन चाहता नहीं। गांधी की अहिंसा में परिवर्तन की चाह बहुत स्पष्ट है इसलिए मैं उसे अहिंसा नहीं मानता हूं। गांधी की अहिंसा में मेरी कोई श्रद्धा, कोई विश्वास नहीं है क्योंकि वह अहिंसा ही मुझे दिखाई नहीं पड़ती हो उस हिंसा से मैं राजी नहीं हो सकता हूं।

एक दूसरे मित्र ने इसी संबंध में पूछा है कि आप कहते हैं कि क्रांति अहिंसक ही हो सकती है, लेकिन एक मित्र ने पूछा है कि क्रांति तो सदा हिंसक होती है, अहिंसक क्रांति तो कभी नहीं होती।

जिस क्रांति में हिंसा है उसे मैं क्रांति नहीं कहता। वह क्रांति नहीं है, सिर्फ उपद्रव है। उपद्रव और क्रांति में बहुत फर्क है। जिस के साथ जुड़ गई वह क्रांति खतम हो गई। हिंसा से क्रांति खत्म है क्योंकि क्रांति का अंतिम अर्थ क्या है? क्रांति का अंतिम अर्थ है आत्मिक परिवर्तन, हार्दिक परिवर्तन,लोगों की चेतना का बदल जाना और जब हम लोगों की चेतना को नहीं बदल पाते हैं, जब लोगों की चेतना नहीं बदलती है तब हम हिंसा पर उतारू हो जाते हैं। लेकिन जो आदमी हिंसा पर उतारू हो जाता है वह लोगों की चेतना बदल सकेगा? इस संबंध में एक करोड़ लोगों की कम से कम हत्या की गई। करोड़ लोगों की हत्या करके भी क्या किसी व्यक्ति की चेतना को बदला जा सका, किसी को रूपांतरित किया जा सका? हिटलर ने भी करीब अस्सी लाख लोगों की हत्या की, लेकिन क्या रूपांतरण हो गया? कौन सी क्रांति हो गई? सामान बांट दिया गया,

संपत्ति व्यक्तिगत न रही, जो एक करोड़ लोगों को बिना मारे भी हो सकता था और एक करोड़ लोगों को मारने के कारण जो परिवर्तन हुआ वह इतना तनावपूर्ण है कि जब तक हिंसा पर छाती पर सवार है तभी तक उसको कायम रखा जा सकता है, अन्यथा परिवर्तन विलीन होना शुरू हो जाएगा।

स्टैलिन के जाने के बाद रूस के कदम विकास की तरफ निश्चित रूप से उठे। स्टैलिन के हटते ही जैसे हिंसा कम हुई है। रूस के कदम विकास की तरफ उठे। रूस में जब से व्यक्तिगत संपत्ति का पुनरागमन हुआ, रूस में कारें व्यक्तिगत रूप से रखी जा सकती हैं, जिसकी वहां कल तक कल्पना नहीं थी। मकान भी व्यक्तिगत हो सकता है, तनख्वाहों में भी फर्क पैदा हुए—जैसे ही हिंसा से लाई हुई क्रांति विलीन हो जाएगी। हिंसा से लाई क्रांति जबरदस्ती है और जबरदस्ती कहीं क्रांति लाई जा सकती है? जबरदस्ती थोड़ा बहुत देर किसी को रोका जा सकता है।

जिस चीज को जबरदस्ती से रोकना पड़ता है उसके खिलाफ लोगों का विद्रोह होना शुरू हो जाता है। अच्छे काम भी अगर जबरदस्ती करवाए जाएं। आप यहां बैठे हैं, आप अपनी मौज से यहां आए हैं और आपको अभी खबर की जाए कि आप दो घंटे तक बाहर नहीं निकल सकते हैं, बस यहां बैठना असंभव हो जाएगा। आदमी के साथ आत्मा है, आदम की आत्मा दबाव को इनकार करती है और करनी चाहिए  चाहे वह दबाव अच्छे के लिए ही क्यों न डाला गया हो। दबाव, दबाव है। आदमी के अच्छे के लिए भी दबाव डालने पर आदमी विद्रोह करता है। आपको पता है, अच्छे मां-बाप अपने बेटों को बिगाड़ने का बुनियादी कारण बनते हैं। पता है आपको क्यों? अच्छे मां-बाप जबरदस्ती अपने बच्चे को अच्छा बनाने की कोशिश करते हैं। दुनिया में कभी किसी को जबरदस्ती अच्छा नहीं बनाया गया है और जो मां-बाप अपने बच्चे को जबरदस्ती अच्छा बनाते हैं वे मां-बाप बच्चों के दुश्मन हैं और अपने बच्चे को बिगाड़ने का काम करते हैं; क्योंकि बच्चे विद्रोह करना शुरू करते हैं। बच्चे के पास जो आत्मा है वह इनकार करना चाहती है जबरदस्ती को और अगर अच्छे के लिए जबरदस्ती की गई तरे फिर अच्छे को इंकार करना चाहते हैं क्योंकि जबरदस्ती को इनकार करने से हिंसा शुरू हो जाएगी। क्योंकि कोई भी बात जबरदस्ती से नहीं लाई जा सकती और जबरदस्ती से लाने का मतलब यह है कि लाने वाला बहुत कमजोर है, लोगों के हृदय को, मस्तिष्क को राजी नहीं कर पाते हैं। और जब आप लोगों को राजी नहीं कर पाते हैं उनके अच्छे  के लिए भी तो फिर आपकी वह अच्छाई बड़ी संतुलित है।

दुनिया में कोई क्रांति हिंसा से नहीं हो सकती है। हां, क्रांति के नाम से हिंसा पलती रही है, लेकिन अब तक कौन सी क्रांति को गई है दुनिया में?...नहीं हिंसा से क्रांति हो ही नहीं सकती है। क्योंकि क्रांति जबरदस्ती नहीं हो सकती है। क्रांति होगी तो हृदय से होगी। हिंसा तो अति जटिल है और क्रांति अति सरल।

मैं उस क्रांति के पक्ष में हूं जिस क्रांति में दमन नहीं होगा, जिस क्रांति में छाती पर दबाव नहीं होगा, जो क्रांति भीतर से फूल की तरह से खिलेगी और व्यक्तित्व को बदल देगी। मनुष्य में उस क्रांति की प्रतिष्ठा चाहिए है। फ्रांस की क्रांति असफल हो गई क्योंकि वह हिंसा पर खड़ी थी। रूस की क्रांति सफल नहीं हो सकी क्योंकि वह हिंसा पर खड़ी थी। माओ जो क्रांति करवा रहे हैं चीन में वह सफल नहीं होगी, क्योंकि वह हिंसा पर खड़ी है। गांधी की क्रांति जो कि बड़ी अहिंसात्मक दिखाई पड़ती थी वह भी असफल हो गई क्योंकि बुनियाद में उसके हिंसा थी। हम देख रहे हैं अपने मुल्क में, गांधी की क्रांति, जो कि एक तरह से लाख दरजे बेहतर क्रांति है, माओ से जिसका ही अहिंसा की तरफ रुख है, झुकाव है, यद्यपि जो अहिंसात्मक नहीं है बुनियाद में, वह भी असफल हो गई है। बाईस साल की आजादी के बाद की दुखद कथा बताती है कि गांधी की क्रांति असफल हो गई है।

गांधी की क्रांति असफल हो जाती है, क्योंकि मेरा मानना है कि दबाव है, बदलने की तीव्र आकांक्षा है। तो फिर लेनिन और स्टैलिन और माओ की क्रांति कैसे सफल हो सकती है? दुनिया प्रतीक्षा करती थी एक क्रांति की जो क्रांति चेतना की और अहिंसा की क्रांति होती, लेकिन क्रांति की तैयारी में सबसे बड़ी बाधा क्या है? सबसे बड़ी बाधा हिंसा में आस्था है। जिन लोगों की हिंसा में आस्था है वे लोग दुनिया के चित्त को बदलने के अहिंसात्मक विधान में कूदते भी नहीं, विचार भी नहीं करते, चिंता भी नहीं करते। उस दिशा में कोई काम नहीं करते। हमें यह खयाल ही नहीं है। एक गांव में एक हजार

लोग, पचास लाख लोगों में से एक हजार लोग भी अगर अहिंसात्मक हों तो पचास लाख लोगों के चित्त में बुनियादी रूपांतरण शुरू हो जाएगा, लेकिन हमें इसका कुछ पता नहीं।

अभी रूस में एक वैज्ञानिक फयादोव ने एक प्रयोग किया है। फयादोव रूस का एक मनोवैज्ञानिक है और चूंकि प्रयोग रूस में हुआ है इसलिए महत्वपूर्ण है। हिंदुस्तान में योगी तो बहुत दिन से यह कहता है, लेकिन कोई सुनता नहीं है। हिंदुस्तान का योगी यह कहता है कि विचार इतनी बड़ी शक्ति है कि अगर कोई विचार किसी व्यक्ति के हृदय में पूर्ण संकल्प से स्थापित हो जाए जो चारों तरफ उस विचार की तरेंगे फैलनी शुरू हो जाती हैं और हजारों लोगों को अहिंसा में रूपांतरित कर देती हैं। एक बुद्ध का पैदा होना, एक महावीर का खड़ा होना इतनी बड़ी क्रांति है जिसका कोई हिसाब नहीं, जिसका कि हमें कोई पता नहीं चलता। क्योंकि लाखों लोगों के प्राण-कमल उनकी किरणों से खिलने शुरू हो जाते हैं।

फयादोव ने एक प्रयोग किया रूस में विचार-संक्रमण का, टेलीपैथी का, विचार को दूर भेजने का। उसने मास्को में बैठ कर एक हजार मील दूर विचार का संप्रेषण किया। मास्को में बैठा है वह अपनी लेबोरेटरी में और एक हजार मील दूर किसी गांव के बगीचे में, पब्लिक पार्क में दस नंबर की बेंच पर एक आदमी बैठा है, उसके पीछे एक भाई छिप कर बैठे हैं। उन्होंने उठा कर फोन किया कि दस नंबर की बेंच पर एक आदमी आकर बैठा है, आप आपने विचार से प्रभावित करके उसे सुला दे। फयादोव एक हजार मील दूर से कामना करता है अपने मन में कि वह जो आदमी दस नंबर की बेंच पर बैठा है वह सो जाए, सो जाए, सो जाए। यहां वह पूर्ण संकल्प से, पूर्ण एकाग्र चित्त से कामना करता है। वह आदमी तीन ही मिनट के भीतर वहां बेंच पर आंख बंद करके सो जाता है। लेकिन हो सकता है, यह संयोग की बात हो। दोपहर तक का थका-मांदा आदमी ऐसे ही सो सकता है। झाड़ियों में छिपे उसके मित्र ने फौरन फोन करके कहा कि यह सो गया है जरूर। तुमने कहा, तीन मिनट में सो जाओ तो तीन मिनट में सो गया। लेकिन यह संयोग भी हो सकता है। अब उसे ठीक पांच मिनट के भीतर उठा दो तो हम समझेंगे।

फयादोव फिर सुझाव भेजता है कि उठो, उठो, उठो, जाग जाओ, ठीक पांच मिनट में जाग जाओ। वह आदमी पांच मिनट में आंख खोल कर बैठ जाता है। मित्र उसके पास जाकर पूछते हैं कि आपको कुछ अजीब सा तो नहीं लगता। वह आदमी कहता है, अजीब सा से मतलब? मैं जब आया तो कुछ विश्राम करने लगा तो मेरे पूरे प्राण कह रहे हैं के सो जाओ। मैं रात अच्छी तरह सोया हूं, थका-मांदा नहीं हूं—पूरा व्यक्तित्व कहता है कि सो जाओ। फिर मैं सो गया। लेकिन अभी क्षण भर पहले दूर से एक आवाज आई कि उठो, एकदम जाग जाओ। मैं बहुत हैरान हुआ कि यह क्या हुआ। तो, एक हजार मील दूर भी विचार संक्रमित हो सकता है।

अभी अमरीका की एक प्रयोगशाला में एक और अदभुत प्रयोग हुआ जो मैं आपसे कहना चाहूंगा। वह प्रयोग भी बहुत बहुमूल्य है आनेवाले भविष्य में। अंतरिक्ष में किए जाने वाले प्रयोग भी इसके मुकाबले कम मूल्य के सिद्ध होंगे। एटम और हाइड्रोजन के प्रयोग भी कम मूल्य के सिद्ध होंगे। वह प्रयोग बहुत अदभुत है। एक प्रयोगशाला में उन्होंने विचार का चित्र पहली बार लिया था। विचार का चित्र, जो विचार आपके भीतर चलता है उस विचार का, आपका नहीं। एक आदमी को बहुत ठीक से कैमरे के सामने बिठाया गया। बहुत ही संवेदनशील फिल्म लगाई गई है और उस आदमी से कहा गया है कि एक विचार पर सारे चित्त को एकाग्र कर सोचता रह, बस एक ही चित्र पर सोचता रह और उस चित्र को फोटो की फिल्म के भीतर पकड़ लिया। इसका क्या मतलब? इसका मतलब है कि विचार में जो चित्र था भीतर, उसका संप्रेषण, उसकी किरणें, उसकी तरंगें बाहर फिंक रही हैं जो कि फोटो की फिल्म पकड़ सकती थी।

अहिंसात्मक क्रांति का क्या अर्थ है? अहिंसात्मक क्रांति का अर्थ है : अहिंसात्मक लोग।

थोड़े से भी लोग अहिंसात्मक हों तो उनके व्यक्तित्व से अहिंसा की , प्रेम की, भीतरी परिवर्तन की जो किरण पहुंचेगी वे लाखों के जीवन में क्रांति ले आएंगी, इसका हमें पता भी नहीं होगा। मेरी मान्यता है कि मनुष्य जाति अहिंसात्मक क्रांति की प्रतीक्षा कर रही है और यह प्रतीक्षा जारी रहेगी जब तक अहिंसात्मक क्रांति नहीं हो जाती है। हम कोई भी हिंसात्मक क्रांति करें, उससे कोई भी परिवर्तन नहीं होगा। जैसे कोई आदमी मुर्दे को मरघट ले जाते हैं। मुर्दे को मरघट ले जाते वक्त अरथी को कंधे पर लेते हैं। रास्ते में एक कंधा थक जाता है तो अरथी उठा कर दूसरे कंधे पर रख लेते हैं। बस इसी तरह क्रांति में

भी फर्क पड़ता है। एक कंधा दुखने लगता है, दूसरे कंधे पर बोझ है, वह अब तक बोझ बदलें हैं, बोझ मिटाया नहीं, आदमी के समाज को रूपांतरित नहीं किया, आदमी के समाज को पुराने गठन में नया ढंग दे दिया है। फिर जिंदगी आना शुरू हो जाती है। नए सपने देखती है।

रूस में क्रांति हुई, शायद सबसे महत्वपूर्ण क्रांति दुनिया की वही है। रूस की क्रांति ऐसी थी कि वर्ग मिटा दिए जाएंगे, क्लासेस नहीं रहेंगे। वर्ग मिटा दिए गए, निश्चित मिटा दिए गए। अमीर आज ऊंचे नहीं, गरीब आज नीचे नहीं, लेकिन नया वर्ग पैदा हो गया—वह कम्युनिस्ट आफिसर, कम्युनिस्ट पार्टी का आदमी और वह जो आदमी कम्युनिस्ट पार्टी का नहीं है, ये दो वर्ग पैदा हो गए। अधिकारी सत्ताधिकारी, और सत्तापूर्ण। कल था धनिक और निर्धन और आज है सत्ताधिकारी, सत्तापूर्ण, उसके बीच स्थापना हुई। वर्ग फिर नए खड़े हो गए। रूस में जो क्रांति हुई उस क्रांति से वर्ग मिटे नहीं, सिर्फ वर्ग बदल गए। पूंजीपति की जगह मैनेजर आ गया। व्यवस्थापकों की क्रांति थी, व्यवस्थापक बदल गए, जहां मालिक था वहां मैनेजर बैठ गया, सत्ताधिकारी बैठ गया; धनी की जगह। और ध्यान रहे, धनी के पास उतनी ताकत कभी नहीं थी जितनी सत्ताधिकारी के पास। धनी के हाथ में लोगों की गर्दन कभी उतनी नहीं थी जितनी कि आज कम्युनिस्ट पार्टी के पास रूस में है—उतनी बिड़ला के पास थोड़े ही है, न हो सकती है। सत्ता बदल गई, वर्ग बदल गए, नये वर्ग आ गए, क्रांति मर गई, क्रांति का कोई अर्थ न हुआ। फिर कंधा बदल गया। दुनिया में अब तक क्रांति के नाम पर कंधे बदलते रहे हैं। क्या हम कंधे ही बदलते रहेंगे या सचमुच कोई क्रांति करेंगे? अगर क्रांति करनी है तो हिंसा पर से आस्था छोड़नी ही पड़ेगी, क्योंकि जो आदमी हिंसा करता है वह आदमी जब मालिक हो जाता है तब हिंसा जारी रखता है और उसकी जो हिंसा जारी रहती है और जिस आदमी ने हिंसा की है और उसके हाथ में हिंसा की ताकत है, उस आदमी से ज्यादा हम कभी आशा नहीं रख सकते। वह आदमी हिंसा को छोड़ देगा, हिंसा को बदल देगा? वह आदमी वही रहेगा। रूस में जिन लोगों के हाथ में ताकत आई वे लोग अच्छे थे। क्रांति के पहले सभी लोग अच्छे होते हैं, क्रांति के बाद जब ताकत हाथ में आती है, तब पता चलता है कि कौन आदमी अच्छा है, कौन आदमी बुरा है। संभावना इस बात की है कि स्टैलिन ने लेनिन को जहर देकर ट्राटस्की की हत्या की गई। जिन लोगों ने क्रांति की थी स्टैलिन ने चुन-चुन कर एक-एक को मारा, क्योंकि अब सत्ता का खिलवाड़ शुरू हो गया।

हिंदुस्तान में कितने अच्छे लोगों ने गांधी के साथ क्रांति की थी। कितने अच्छे और भले लोग मालूम पड़ते थे, एकदम सफेद, धुले हुए मालूम पड़ते थे। लेकिन जब सत्ता हाथ में आयी तो पता चला कि वे लोग बदल गए, वे दूसरे आदमी साबित हुए, वे कपड़े ही सफेद थे, वे आदमी भीतर सफेद नहीं थे। क्या हो गया सत्ता के हाथ में आते ही? सत्ता के हाथ में आते ही भीतर का असली आदमी प्रकट होता है। जब तक हाथ में ताकत नहीं होती असली आदमी प्रकट नहीं होता। अगर आपके पास पैसे पहीं हैं तो आप फिजूल खर्च हैं, इसका कोई पता नहीं चलता। पैसा हो तो पता चलता है कि फिजूल खर्च हैं या नहीं। अगर आपके हाथ में छुरा हो मारने को तब पता चलता है कि आप हिंसक है या नहीं। जब हाथ में ताकत नहीं है तब तो सभी लोग अहिंसक होते हैं। अहिंसक का पता चलता है अवसर मिलने पर। जिन लोगों के हाथ में इस मुल्क की ताकत गई, ताकत जाने के बाद ही पता चलता है अवसर मिलने पर, हिंसा का अवसर मिलने पर । जिन लोगों के हाथ में इस मुल्क की ताकत गई, ताकत जाने के बाद ही पता चला कि उनके असली तत्व क्या थे। तो जिन लोगों के हाथ में ताकत जाएगी, अगर वे हिंसा के द्वारा ताकत को पहुंचे हैं तब तो उनकी तस्वीर पहले से ही हिंसा की है और बाद में उनकी क्या हालत होगी? अहिंसक की हालत क्या हो जाती होगी?

नहीं, हिंसा से कोई क्रांति नहीं हो सकती, सिर्फ बोझ बदल जाते हैं, सिर्फ शक्ल बदल जाती है, नाम बदल जाते हैं, समाज पुराना का पुराना ही जारी रहता है। पांच हजार वर्ष के लंबे प्रयोगों के बाद भी हमें दिखाई नहीं पड़ता कि हिंसा से कोई क्रांति नहीं हो सकी। आगे भी नहीं हो सकेगी और अगर आदमी हिंसा से जाग जाए कि हिंसा से कुछ भी नहीं हो सकता, दबाव से कुछ भी नहीं हो सकता और आदमी की आत्मा प्रेम चाहती है और आदमी की आत्मा रूपांतरित होना चाहती है, लेकिन उन लोगों के द्वारा जो रूपांतरित करने के लिए उत्सुक, आतुर नहीं हैं, जिनका कोई आग्रह नहीं है, जो जीते हुए सत्य हैं, जो जीते हुए प्रेम हैं और उनके जीने के कारण दूसरे में फैलते हैं, उनसे रूपांतरण होता है।

ऐसे रूपांतरण की प्रतीक्षा मनुष्यता को है।

ऐसी क्रांति अहिंसात्मक ही हो सकती है। यह बहुत स्पष्ट रूप से मेरी बात समझ लेना जरूरी है। मैं हिंसा के बिलकुल, विरोध में हूं। हिंसा के कौन पक्ष में हो सकता है? कौन बुद्धिमान, कौन विचारशील व्यक्ति हिंसा के पक्ष में हो सकता है? हिंसा के पक्ष में होने का मतलब है आदमी में बुद्धि नहीं है। क्योंकि लाठी वे ही लोग उठाते हैं जिनके पास बुद्धि नहीं होती। जिनके पास बुद्धि होती है उन्हें लाठी पर उतरने की जरूरत नहीं पड़ती। जो लोग हाथ की ताकत में और तलवार की ताकत में विश्वास नहीं करते हैं, वे मनुष्य से नीचे दर्जे के मनुष्य हैं, उनके भीतर पापी मौजूद है, पशु ही हिंसा में विश्वास करता है। आदमी हिंसा में कैसे विश्वास कर सकता है और पशुओं के हाथ में बहुत बार सत्ता दी गई है और आदमी ने हर बार भोगा है। आगे भी पशुओं के हाथ में सत्ता नहीं जानी चाहिए, पाशविक हाथों में, हिंसात्मक हाथों में सत्ता नहीं जानी चाहिए। इसलिए आदमी जितना सजग हो, जितना अहिंसा के सार को समझे, जितना अहिंसा के रहस्य को समझे उतना अच्छा है।

अहिंसा का सार है, एक शब्द में—प्रेम, शुद्ध प्रेम। अहिंसा शब्द बहुत गलत है, क्योंकि नकारात्मक है। उससे पता चलता है हिंसा का, वह शब्द अच्छा नहीं है। शब्द है वास्तविक प्रेम। क्योंकि प्रेम पाजिटिव है, प्रेम विधायक है। जब हम कहते हैं अहिंसा, तो उससे मतलब है हिंसा नहीं करेंगे। लेकिन हिंसा नहीं करना है इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि प्रेम करना है। हिंदुस्तान में धार्मिकों की एक लंबी कतार है। वह सब अहिंसा को मानते हैं। उनकी अहिंसा का मतलब है—पानी छान कर पीना, उनकी अहिंसा का मतलब है—रात खाना नहीं खाना है, उनकी अहिंसा का मतलब है—किसी को चोट नहीं पहुंचाना। लेकिन ऐसी अहिंसा बड़ी अहिंसा नहीं है जो कि सिर्फ दूसरे को दुख पहुंचाने से बचती है। असली अहिंसा वही है जो दूसरे को सुख पहुंचाना चाहती है। दूसरे को दुख नहीं पहुंचाना है। यह ठीक है, लेकिन यह काफी नहीं है। वह बहुत लचर, अधकचरी अहिंसा है। दूसरे को सुख पहुंचाना है और क्यों पहुंचाना है। दूसरे को सुख इसलिए कि मोक्ष जाना है, इसलिए कि स्वर्ग पाना है। जो आदमी दूसरे को इसलिए दुख नहीं दे पाता है क्योंकि स्वर्ग जाना है, मोक्ष जाना है वह आदमी हद दर्जे का चालाक है, वह आदमी हद दर्जे का हिसाबी-किताबी है। उस आदमी को दूसरे से कोई मतलब नहीं है। वह दूसरे को, दूसरे की अहिंसा को सीढ़ियां बना रहा है अपने स्वर्ग जाने की।

मैंने सुना है, चीन के गांव में एक बहुत बड़ा मेला लगा हुआ था। एक कुआं था मेले के पास जिस पर पाट नहीं था और एक आदमी भूल से उस कुएं के भीतर गिर गया। वह आदमी जोर-जोर से चिल्लाने लगा। किंतु मेले में बहुत भीड़ थी, कौन उसकी सुनता। एक बौद्ध भिक्षु कुएं पास पानी पीने को रुका। नीचे से आदमी चिल्लाया कि भिक्षु जी, मुझे बचाइए। उस भिक्षु ने कहा, पागल किस-किस को बचाया जा सकता है, सारा संसार कुएं में पड़ा है। जीवन ही दुख है। भगवान ने कहा है, जीवन दुख का मूल है। हम सभी डूब मरेंगे, हम किसको बचा सकते हैं। उस आदमी ने कहा, ज्ञान की बातें, पहले मुझे निकाल लें, फिर पीछे करना, क्योंकि ज्ञान की बातें कुएं में गिरे आदमी को अच्छी नहीं मालूम पड़ती। कृपा करो, मुझे बाहर निकालो। भिक्षु ने कहा, पागल, कौन किसको निकाल सकता है। अपना ही अपना संभाल ले आदमी तो काफी है, क्योंकि भगवान ने कहा है, कोई किसी का सहारा नहीं है, अपने सहारे रहो। उसने कहा, वह मैं समझता हूं लेकिन अभी मैं अपना सहारा ढूंढ रहा हूं। तैरना नहीं जानता हूं। मुझे किसी तरह बाहर निकाल लो तो तुम्हारा शास्त्र भी सुनूंगा, तुम्हारा प्रवचन भी सुनूंगा। उस भिक्षु ने कहा, शायद तुम्हें पता नहीं कि भगवान ने शास्त्र में यह भी कहा है कि अगर मैं तुझे बचा लूं और कल तू हत्या कर दे, चोरी कर ले, तो मैं भी तेरे कर्म का भागी हो जाऊंगा। मैं अपने रास्ते पर, तू अपने रास्ते पर। भगवान तेरा भला करे।

वह भिक्षु चला गया। शास्त्रों को मानने वाले लोग खतरनाक होते हैं। उनका शास्त्र ही महत्वपूर्ण है, मरता हुआ आदमी ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं है।

उसके पीछे ही कनफ्यूशियस को मानने वाला एक दूसरा भिक्षु आकर रुका। उसने भी नीचे झांक कर देखा। वह आदमी चिल्लाया कि मुझे बचाओ, मैं मर रहा हूं। बस मेरी स्थिति है, सांसें टूटी जाती हैं, हिम्मत नहीं रख जाती है। कनफ्यूशियस के शिष्य ने कहा, देख तेरे गिरने से साबित हो गया कि कनफ्यूशियस ने जो लिखा है वही सही है। उसने

लिखा है कि हर कुएं पर पाट होनी चाहिए और जिस कुएं पर पाट नहीं होगी और जिस राज्य में कुएं पर पाट नहीं होती वह राज्य ठीक नहीं है। तू घबरा मत, हम आंदोलन करेंगे और कुएं पर पाट बनवा कर रहेंगे। उस आदमी ने कहा कि बनेगा, लेकिन मैं तो गया।

आंदोलन करने वाले को आदमी से कोई मतलब नहीं है। उन्हें आंदोलन से मतलब है। वे आंदोलन करेंगे। और वह जो आदमी डूब रहा है, वह गया। वह बहुत चिल्लाया लेकिन आंदोलन कारी किसी की सुनते हैं? वह जाकर मंच पर खड़ा हो गया और मेले में लोगों को समझाने लगा कि देखो, कनफ्यूशियस ने जो लिखा है ठीक लिखा है। सबूत? वह कुआं सबूत है। हर कुएं पर पाट होना चाहिए। जब तक कुएं पर पाट नहीं है तब तक राज्य सुराज्य नहीं है।

उसके पीछे ही एक ईसाई मिशनरी वहां आया। उसने भी झांककर देखा। वह आदमी चिल्ला भी नहीं पाया कि उसने अपनी झोली से रस्सी निकाली और कुएं में डाली और कुएं के नीचे गया। उस आदमी को निकाल कर बाहर लाया। उस आदमी ने कहा, आप ही एक भले आदमी मालूम पड़ते हैं। लेकिन आश्चर्य कि आप झोली में रस्सी पहले से ही रखे हुए थे। उसने कहा, हम सब इंतजाम करके निकलते हैं क्योंकि सेवा ही हमारा कार्य है और हमें पहले से पता रहता है कि कोई न कोई तो कुएं में गिरेगा और जीसस ने कहा है के अगर मोक्ष जाना है, अगर स्वर्ग का राज्य पाना है तो लोगों की सेवा करो। सेवा के बिना कोई मोक्ष नहीं जा सकता। हम मोक्ष की खोज कर रहे हैं। तुमने बड़ी कृपा की जो कि कुएं में गिरे। अपने बच्चों को भी समझा जाना ताकि वे कुएं में गिरते रहें और हमारे बच्चे उनको निकालते रहें।

यह जो आदमी है, यह जो मोक्ष में जाने के लिए लोगों के कुएं में गिरने की प्रतीक्षा कर रहा है, यह जो आदमी हद दर्जे का पापी है। इन्हें न कोढ़ियों से मतलब है, न बीमारों से। ये सबको सीढ़ियां बना कर अपना मोक्ष खोज रहें हैं। यह आज तक जो लोग अहिंसा की बात करते हैं, उनके लिए अहिंसा भी एक सीढ़ी है। नहीं, अहिंसा जो सीढ़ी बनती है वह अहिंसा नहीं है। अहिंसा शब्द ठीक नहीं है। शब्द तो ठीक है प्रेम, ज्वलंत प्रेम और प्रेम का मतलब है दूसरे को सुख देने की कामना। लेकिन क्यों? इसलिए नहीं कि मोक्ष जाएंगे, इसलिए नहीं कि पुण्य होगा, बल्कि सिर्फ इसलिए कि जो आदमी जितना दूसरे को सुख दे पाता है उतना ही प्रतिक्षण सुखी हो जाता है, तत्क्षण, आगे पीछे नहीं, कभी भविष्य में नहीं। जो आदमी जितना दूसरे को दुख देता है, तत्क्षण दुखी हो जाता है। जीवन में जो हम दूसरे के लिए करते हैं वही हम पर वापस लौट आता है। जिंदगी एक बड़ी प्रतिध्वनि है, एक इको पॉइंट है।

मैं एक पहाड़ पर गया था। कुछ मित्र मेरे साथ थे। उस पहाड़ पर एक 'इको पॉइंट' था जहां आवाज की जाती तो बार-बार वापस लौटती थी हम लोगों के बीच। वहां जो मित्र मेरे साथ थे वे कुत्ते की आवाज करने लगे। सारा पहाड़ कुत्तों की आवाज से गूंज गया। मैंने उनसे कहा, रुको भी। अगर आवाज ही करनी है तो कोयल की करो या कोई गीत गाओ। कुत्ते की आवाज करने से क्या फायदा। यह मित्र गीत गाने लगे प्रेम का। उन्होंने कोयल की आवाज की और पहाड़ियां कोयल की आवाज से गूंज गई। फिर हम लौटे तो वह मित्र कुछ सोचने लगे और उदास हो गए और रास्ते में कहने लगे कि कहीं ऐसा तो नहीं कि आपने इशारा किया हो कि यह जो घाटी है, यह जो इको पॉइंट है वह भी प्रतीक है जिंदगी का। जिंदगी का ही वह एक रूप है। जिंदगी में भी जो कुत्ते की फेंकता है, चारों तरफ कुत्ते भोंकने लगते हैं। जिंदगी में जो गीत गाता है चारों तरफ गीत की शहनाइयां बजने लगती हैं। जिंदगी में जो हम फेंकते हैं जिंदगी की तरफ वही हम पर वापस लौटना शुरू हो जाता है—हजार-हजार गुना होकर। प्रेम जो जितना बांटता है उतना प्रतिध्वनित होकर उसके ऊपर बरसने लगता है।

एक छोटी सी कहानी और अपनी बात मैं पूरी कर दूंगा। रवींद्रनाथ ने एक गीत लिखा है। बहुत प्यारा गीत है और उस गीत में लिखा है कि एक भिखमंगा सुबह-सुबह उठा है भीख मांगने के लिए। अपनी झोली निकाल कर कंधे पर डाली है। आज त्यौहार का दिन है और भीख मिलने की आशा है। ऐसा मालूम होता है कि त्यौहारों की ईजाद भिखमंगों ने ही की होगी, खोज उन्होंने की होगी। झोली कंधे पर डाल कर उसने अपनी पत्नी से कुछ अनाज चावल के दाने झोली में डालने के लिए कहा। जब भी कोई भिखमंगा अपने घर से निकलता है, चालाक भिखमंगा, क्योंकि भिखमंगों में भी नासमझ भिखमंगे होते हैं, समझदार भी होते हैं। सब तरह की दुकानों में समझदार, नासमझ सभी तरह के लोग होते हैं। भिखमंगों की भी एक दुकान है। उसने कुछ दाने घर से डाल लिए हैं और भिखमंगे कुछ दाने डाल कर निकलते हैं ताकि जिसके सामने झोली

फैलाएं उसे दिखाई पड़े कि भीख पहले भी दी जा चुकी है। इनकार करने में मुश्किल होती है अगर भीख पहले दी जा चुकी हो, क्योंकि अहंकार को चोट लगती है कि किसी दूसरे आदमी ने दान कर दिया है और अगर हम नहीं करते हैं तो उस आदमी के सामने छोटे हो जाते हैं। इसलिए भिखमंगे पैसे हाथ में बजाते हुए निकलते हैं।

वह भिखमंगा रास्ते पर, राजपथ पर आकर खड़ा ही हुआ था, कुछ सोचता था कि किस दिशा में जाऊं, कि देखा कि सामने से सूरज निकलता है और राजा का स्वर्ण रथ आ रहा है। राजा अपने रथ पर सवार है। सूरज की किरणों में उसका रथ चमक रहा है। भिखमंगे के तो भाग खुल गए। उसने कभी राजा से भीख नहीं मांगी थी। राजाओं से भीख मांगना मुश्किल है, क्योंकि द्वार पर पहरेदार होते हैं, वे भीतर प्रवेश करने नहीं देते। आज तो राजा रास्ते पर मिल गया है, आज तो झोली फैला दूंगा और भीख से छुटकारा जन्म-जन्म के लिए मिल जाएगा। फिर आगे भीख नहीं मांगनी पड़ेगी। इसी सपने में, कल्पना में था और भिखमंगों के पास सिवाय सपने के और कुछ भी नहीं होता। सपने में ही जीना पड़ता है, क्योंकि जिनके पास कुछ भी नहीं है वे सपने में ही जीने का रास्ता सोच लेते हैं। वह महलों में निवास करने लगा सपने में और तभी रथ आकर खड़ा हो गया। सारे सपने टूट गए और हैरान हो गया भिखारी। राजा नीचे उतरा और राजा ने अपनी झोली भिखारी के सामने फैला दी।

भिखारी ने कहा, क्या कर दिया? राजा ने कहा, क्षमा करना। अशोभन है, लेकिन ज्योतिषियों ने कहा है कि राज्य पर खतरा है दुश्मन का और कहा है कि अगर मैं आज त्यौहार के दिन जो पहला आदमी मुझे मिल जाए उसे भीख मांग लूं तो राज्य खतरे से बच सकता है। तुम्हें पहले आदमी हो, दुखी न होओ, तुमने कभी भिक्षा दी न होगी, इसलिए बड़ी मुश्किल पड़ेगी देने में। लेकिन कुछ भी थोड़ा-सा दे दो, इंकार मत कर देना, पूरे राज्य के भाग्य का सवाल है। भिखमंगा कितनी कठिनाई में पड़ गया होगा? उसने हमेशा मांगा था, दिया कभी नहीं था। देने की आदत न थी। झोली में हाथ डालता है और खाली हाथ बाहर निकाल लेता है। इंकार भी कर नहीं सकता। सामने ज्योतिषियों ने कहा है कि अगर पहले आदमी ने इंकार कर दिया तो संकट निश्चित है। तो एक दाना ही दे दो। भिखारी ने बामुश्किल एक चावल का दाना निकाल कर राजा की झोली में डाल दिया।

राजा अपने रथ पर बैठा और चला गया। धूल उड़ती रह गई। भिखारी के सब कपड़े धूल से भर गए। उलटा मिला तो कुछ भी नहीं, पास से कुछ चला गया। उसका दुख आप जानते हैं? दिन भर भीख मांगी, बहुत मिली उस दिन भीख। इतनी कभी नहीं मिली लेकिन मन प्रसन्न नहीं हुआ, क्योंकि तो मिलता है उससे प्रसन्न होता है मन। जो छूट जाता है उससे दुखी होता है। एक दाना खटकता रहा जो दिया था। सबके मन की यही हालत है, क्योंकि सब छोटे-मोटे भिखारी हैं। जो छूट जाता है वह खटकता रहता है। जो मिल जाता है उसका पता नहीं चलता।

भिखारी के मन का लक्षण यह है। जो मिल जाए उसका पता न चले, जो न मिले, जो छूट जाए, उसकी पीड़ा कसकती रहे।

वह घर पहुंचा है रात, झोली पटक दिया, पत्नी तो पागल हो गई। इतना कभी न मिला था। झोली खोलने लगी। पति तो उदास दीखता था। उदास हैं आप? पति ने कहा, तुझे तो पता नहीं है पागल, झोली में थोड़ा कम हैं। आज थोड़ा देना भी पड़ा है। ऐसा जिंदगी में कभी नहीं किया आज वह करना पड़ा पत्नी ने झोली खोली, दाने बिखर गए और पति छाती पीट कर रोने लगा। अब तक उदास था, आंसुओं की धारा बहने लगी। पत्नी ने पूछा, क्या हुआ? पति ने नीचे के दाने उठाए और एक दाना सोने का हो गया था। एक चावल का दाना सोने का हो गया है। चिल्लाने लगा कि भूल हो गई, अवसर निकल गया। मैंने अगर सारे दाने दे दिए होते तो सब सोना हो गया होता। लेकिन अब कहां खोजूं उस राजा को, कहां मिलेगा वह रथ। अवसर चूक गया है वह।

मुझे पता नहीं, यह कहानी कहां तक सच है, लेकिन यह मुझे पता है कि जिंदगी के अंत में आदमी ने जो दिया है वही सोने का होकर वापस लौट आता है। जो दिया है वही स्वर्ण का हो जाता है, जो रोक लिया है वही मिट्टी का हो जाता है। प्रेम का अर्थ है—दान, प्रेम का अर्थ है—बांटना। जितना बंट जाता है व्यक्तित्व, आत्मा उतनी ही स्वर्ण की हो जाती है, और जितना अनबंटा रह जाता है व्यक्तित्व, आत्मा उतनी ही मिट्टी हो जाती है।

# देख कबीरा रोया

बंबई, दिनांक 4 दिसंबर 1968

देख कबीरा रोया

सांतवा प्रवचन

लकीरों से हटकर

एक मित्र ने पूछा है गांधीजी ने दरिद्रों को दरिद्रनारायण कहा, इससे उन्होंने दरिद्रता को कोई गौरव-मंडित तो नहीं किया है?

शायद आपको पता न हो, हिंदुस्तान में एक शब्द चलता था, वह था लक्ष्मीनारायण। दरिद्रनाथ शब्द कभी नहीं चलता था, चलता था लक्ष्मीनारायण। मान्यता यह थी कि लक्ष्मी के पति ही नारायण हैं। ईश्वर को भी हम ईश्वर कहते हैं, ऐश्वर्य के कारण। वह शब्द भी ऐश्वर्य से बनता है। लक्ष्मीपति जो है वह नारायण है। समृद्धि-नारायण, ऐसी हमारी धारणा थी हजारों साल से। धारणा यह थी कि जिनके पास धन है उनके पास धन पुण्य के कारण है, परमात्मा की कृपा के कारण है। हजारों वर्षों से धन का एक महिमावान रूप था, धन गौरव-मंडित था। दरिद्र दरिद्र था पाप के कारण ही वह दरिद्र था। धनी धनी था अपने पिछले जन्मों के पापों के कारण। धन प्रतीक था उसके पुण्यवान होने का, दरिद्रता प्रतीक थी उसके पापी होने की। यह हमारी धारणा थी।

इस धारणा में गांधी ने जरूर क्रांति की और बहुमूल्य काम किया कि उन्होंने लक्ष्मीनारायण शब्द के सामने दरिद्र नारायण शब्द गढ़ा और उन्होंने कहा, दरिद्र भी नारायण है। लेकिन जैसा अक्सर होता है, जब भी किसी शब्द, किसी विचार, किसी धारणा की प्रतिक्रिया में कोई धारणा गढ़ी जाती है तो भूल इस तरफ होती थी, अतिशय में वही भूल दूसरी तरफ हो जाती है। दरिद्र नारायण है। एक समय था समृद्ध नारायण था। नारायण तो सभी हैं। न समृद्ध नारायण है न दरिद्र नारायण है। एक अति यह थी कि समृद्धि नारायण है, समृद्धि को ग्लोरीफाई किया गया था। उसकी प्रतिक्रिया में दूसरी अति यह हो गई कि दरिद्र नारायण है। अब दरिद्र को ग्लोरीफाई किया गया। वह जो ग्लोरी, वह जो महिमा समृद्धि के साथ जुड़ी थी, वही महिमा समृद्धि को छोड़ कर दरिद्रता के साथ जोड़ दी गई है।

रवींद्रनाथ ने एक गीत लिखा है—कहां खोजते हो प्रभु को, कहां खोजते हो भगवान को, कहां खोजते हो परमात्मा को, मंदिरों में? नहीं है मंदिरों में, नहीं मूर्तियों में, नहीं आकाश में, नहीं चांद-तारों में। भगवान वहां है जहां राह के किनारे मजदूर पत्थर तोड़ता है। यह दूसरी अति हो गई है। चांद-तारों में भी परमात्मा है, फूलों में भी, सब जगह मंदिरों में भी, जो भी है वही परमात्मा है लेकिन कल तक एक अति थी कि इस दीन और दरिद्र में परमात्मा को नहीं देखा जा रहा था। आज उसकी प्रतिक्रिया में दूसरी अति हो गई कि नहीं है वहां। यहां है, जहां मजदूर पत्थर तोड़ता है। यह दूसरी अति है। बस महिमा बदल गई है। घड़ी का पेंडुलम बायीं ओर से दायीं और चला गया है।

गांधी ने एक क्रांतिकारी कदम उठाया दरिद्र को नारायण कहकर, लेकिन जैसा कि सदा होता है, एक अति से दूसरी अति पर व्यक्ति चला जाता है, एक अति से दूसरी अति पर विचार चला जाता है। मैंने सुना है कि गांधी इंग्लैंड गए और गांधी के एक भक्त बर्नार्ड शा से मिले और बर्नार्ड शा ने कहा, और सब तो ठीक है, लेकिन दरिद्रनारायण शब्द मेरे बर्दाश्त के बाहर है। दरिद्र को तो मिटाना है, उससे तो घृणा करनी है, उसे तो समाप्त कर देना है, दरिद्र को बचने नहीं देना है। और सब तो ठीक है, यह दरिद्रनारायण शब्द मेरी समझ के बाहर है।

पंडित नेहरू ने भी कहीं लिखा है कि गांधी की बहुत सी बातें मेरी समझ में नहीं आती। यह दरिद्र नारायण शब्द मेरी समझ में नहीं आ सका है। यह शब्द ठीक नहीं है। दरिद्र को तो मिटाना है, दरिद्र को तो समाप्त करना है, दरिद्र को तो बचने नहीं देना है। और उसे जब हम नारायण जैसी महत्वपूर्ण महिमा से मंडित करेंगे तो जाने अनजाने जिसे हम महिमा देना शुरू करते हैं उसे हम मिटाना बंद कर देते हैं। वह मनोवैज्ञानिक घटना है, जिसे हम महिमा देते हैं उसे नष्ट करने का विचार छूटना शुरू हो जाता है। अगर दरिद्रता को महान रोग कहा तो मिटाने का खयाल आएगा, दरिद्र को नारायण कहा तो पूजा का खयाल आएगा। यह तो मनोवैज्ञानिक प्रतिफलन होगा उसका।

सवाल यह नहीं है कि गांधी महिमामंडित करते हैं या नहीं। दरिद्रनारायण कहने से दरिद्रता महिमामंडित होती है और दरिद्रनारायण  कहने से ऐसा नहीं लगता है कि इसको मिटाना है। दरिद्रनारायण कहने से लगता है कि मिटाना नहीं, पूजा करनी है। नारायण की हम सदा से पूजा करते रहें हैं, लेकिन हम कहेंगे कि दरिद्र महान रोग है तो सीधा खयाल उठता है कि मिटाना है, नष्ट करना है, समाप्त कर देना है। यह प्रश्न तो हमारे मनोवैज्ञानिक प्रतिफलन का है कि हमारे मन का क्या प्रतिफलन होता है। छोटे-छोटे शब्द भी हमारे मानस को गतिमान करते हैं और हमारे मानस में, हमारे कलेक्टिव मानस में, हमारे अचेतन में, हमारे समूह मन में शब्दों की करोड़ों वर्ष की परंपरा है और स्थान है। नारायण को मिटाने की हमने कभी कल्पना ही नहीं की हैं, मनुष्य जाति के इतिहास में। नारायण को मिटाने की कल्पना ही असंभव है हमारे चित्त से। जब भी हम किसी के साथ नारायण जोड़ देंगे तो स्वभावतः वह जो हमारा हजारों वर्षों का बना हुआ मन है वह नारायण को मिटाने को आतुर नहीं रह जाएगा।

दरिद्रनारायण शब्द दुर्भाग्यपूर्ण है। उससे समृद्ध नारायण शब्द को उत्तर तो मिल गया, लेकिन घड़ी का पेंडुलम एक कोने से दूसरे कोने पर पहुंच गया। एक बीमारी से दूसरी बीमारी पर पहुंच गया। न तो समृद्ध पर पहुंच गया। न तो समृद्ध नारायण है और न दरिद्र है। नारायण तो सभी हैं, इसलिए किसी को विशेष रूप से नारायण कहना खतरनाक है। लेकिन प्रतिक्रिया में ऐसा होता है। अब तक ब्राह्मण प्रभु के लोग थे, परमात्मा के लोग थे, गॉड चूजन थे, ईश्वर के चुने हुए लोग थे। गांधीजी ने उसकी प्रतिक्रिया में हरिजन शब्द चुना। शूद्रों के लिए जो कि प्रभु के कृपा पात्र नहीं रहें, जिन पर प्रभु की कृपा होने का कोई सवाल नहीं था। कृपापात्र थे सवर्ण, कृपापात्र थे ब्राह्मण, क्षत्रिय। शूद्र? शूद्र तो बाहर था। उस पर कृपा की कोई किरण परमात्मा की कभी नहीं पड़ी। ठीक किया गांधी ने। हिम्मत की कि उसको कहा हरिजन, लेकिन हरिजन कहने से वही भूल फिर दोहरा दी गई। हरिजन थे अब परमात्मा के लोग। तब ब्राह्मण, परमात्मा के लोग थे। उनसे छीनकर महिमा हमने शूद्र को दे दी। लेकिन जरूरत इस बात की है कि महिमा किसी के पास बंधी न रह जाए। महिमा वितरित हो जाए और सबकी हो जाए। हरिजन हैं सब। जब तक ब्राह्मण हरिजन थे तब तक शूद्र हरिजन न था। और अगर हम शूद्र को हरिजन कहते हैं तो हम दूसरी भूल करते हैं। ब्राह्मण के प्रति एक विरोध और वैमनस्य पैदा होगा। वह जो दक्षिण भारत में ब्राह्मण के प्रति वैमनस्य और विरोध पैदा हो रहा है वह दूसरी प्रतिक्रिया है कि अब नीचे जो शूद्र है वह हो गया हरिजन। वह अब चूजन पिपुल हो गए। तो अब ब्राह्मण को नीचे, अपदस्थ करना है।

यह खेल कब तक चलेगा? इस खेल को हम समझेंगे, इसके राज को, तो यह समझना जरूरी है कि प्रत्येक मनुष्य परमात्मा है। चाहे वह दरिद्र हो, चाहे समृद्ध हो, चाहे बीमार हो, चाहे स्वस्थ हो, चाहे काला हो, चाहे गोरा हो, चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष हो। प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा है। किसी भी वर्ग विशेष को परमात्मा का नाम देना उसे महिमामंडित करना है। मैं जानता हूं कि गांधी की मजबूरी थी। एक प्रतिक्रिया में, एक विरोध के लिए उन्होंने एक बात चुनी होगी। लेकिन अब चालीस-पचास साल के गाद उस शब्द को तत्काल छोड़ देना जरूरी है। अब उस शब्द को पकड़ लिए जाना ठीक नहीं है। और यह भी ध्यान रहे कि दरिद्र को न तो महिमा देनी है और न दरिद्र के साथ सहानुभूति प्रकट करनी है। यह भी ध्यान रहें, दरिद्र के साथ सहानुभूति, दया खतरनाक बात है। दरिद्र के साथ दया नहीं करनी है। दरिद्रता को मिटाना है ताकि दरिद्र न रह जाए। दरिद्र के साथ दया करने से दरिद्रता मिटती नहीं है। दरिद्र के साथ दया करने से दरिद्रता पलती है, पोषित होती है। भिखमंगे को हम रोटी दे देते हैं, इससे भिखमंगापन नहीं मिटता। भिखमंगे को दी गई रोटी भिखमंगेपन को दी गई रोटी सिद्ध होती है। वह रोटी भिखमंगे के पेट में पहुंच जाती है। और भिखारीपन जीता है और मजबूत होता है। भिखारी को मिटाना है। दया पर्याप्त नहीं है, दया बहुत तरकीब की बात है।

शोषक समाज ने हजारों वर्षों में दया का आविष्कार किया है, दान और दया का। ये तरकीबें हैं जिससे नीचे के पीड़ित है उसको ऐसा न लगे कि मुझे बिलकुल छोड़ दिया गया है। ताकि उसे लगे कि नहीं दया की जरूरत है, दान किया जाता है, धर्म किया जाता है। यह दया, दान और धर्म गरीब का अपमान है। और जिस समाज में दया धर्म की जरूरत पड़ती है वह समाज स्वस्थ सुंदर समाज नहीं है, वह समाज रुग्ण है। और जब तक दुनिया में दया, दान और सहानुभूति की जरूरत हम पैदा करते रहेंगे, तब तक हम अच्छे मनुष्य को पैदा नहीं कर सकेंगे।

एक ऐसा समाज चाहिए जहां कोई दया मांगने के लिए दीन न हो। एक ऐसा समाज चाहिए जो ऐसे लोगों को पैदा न करे, जिनको आपकी सहानुभूति की जरूरत पड़े। कभी आपने खयाल किया है जिस पर आप दया करते हैं वह दया आपके अहंकार को मजबूत कर पाती है कि मैं कुछ हूं, मैंने कुछ किया? और जिस पर आप दया करते हैं उसका मन पश्चात्ताप, ग्लानि और चोट से भर जाता है कि मेरा अपमान किया गया है। आप ध्यान रखना, जिस पर आपने दया की उसको आपने बहुत गहरे में अपना शत्रु बना लिया है, मित्र नहीं। वह आपसे बदला लेगा, क्योंकि कोई भी आदमी अपमानित होता है, जब उसे दया मांगनी पड़ती है। पीड़ित होता है, ऊपर से मुस्कुराकर कहता है कि भगवान तुम्हें खुशी रखें, लेकिन वह जानता है, वह भलीभांति जानता है कि उसे हालत में कौन ले आया है। कैसे वह इस हालत में आ गया है। ऊपर से धन्यवाद देता है। लेकिन भीतर? भीतर उसके भी ईर्ष्या पलती है और अपमान पलता है।

नहीं, दया के आधार पर दो व्यक्तियों के बीच मैत्री कभी पैदा नहीं होती। इसलिए अक्सर लोग कहते सुने जाते हैं कि मैंने उस आदमी के साथ भला किया और वह मेरे साथ बुरा कर रहा है। नेकी का फल बदी से मिल रहा है। हमेशा मिलेगा। क्योंकि नेकी अपमान करती है किसी का, और नेकी तुम्हारे अहंकार को मजबूत करती है और दूसरे मनुष्य को पीड़ित करती है। नहीं, अब दया और धर्म पर नहीं जी सकते हैं। और न जीने की जरूरत है। अब तो हमें समझना होगा कि दरिद्र क्यों पैदा होता है? दरिद्रता कहां से जन्म लेती है? उस जड़ को काट देना जरूरी होगा। एक तरफ जड़ को मजबूत किए चले जाते हैं और शाखाओं और पत्तियों को काटते हैं, यह कैसा पागलपन है। एक आदमी रोज पानी देता हो एक वृक्ष में। और फिर पत्तों काटता हो और रोज पानी देता हो वृक्ष में। हम जो कर रहे हैं सब मिल कर उससे दरिद्र पैदा हो रहा हैं। फिर एक-एक दरिद्र को हम भिक्षा देते हैं, धर्मशाला बनवाते हैं, औषधालय खोलते हैं।

इधर ऊपर से हम यह व्यवस्था करते हैं और जो हम कर रहे हैं सारा समाज मिल कर उससे दरिद्र पैदा हो रहा है। यह बड़ी अजीब बात है कि सारा समाज मिलकर, रोग पैदा करे और रोग के इलाज के लिए अस्पताल खोले। यह कुछ समझ में आने जैसी बात नहीं है। लेकिन अब तक हमें समझ में नहीं आती थी, क्योंकि हमने प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्मों का फल समझा हुआ था। यह बात गलत है। जन्म कर्मों के फल हैं, पुनर्जन्म है, लेकिन संपत्ति कर्मों के फल से उपलब्ध नहीं। संपत्ति समाज के वितरण की व्यवस्था पर निर्भर है।

लेकिन अब तक हमारी धारणा यह थी कि गरीब-गरीब है अपने कर्मों के कारण, अमीर-अमीर है अपने कर्मों के कारण। इस दृष्टिकोण ने, इस कंसेप्ट ने, इस सिद्धांत ने हिंदुस्तान की गरीबी को तोड़ने के सब उपाय मुश्किल कर दिये थे। और आज तक हिंदुस्तान में गरीबी नहीं टूटी है तो उसके पीछे हमारी फिलासफी है, हमारा दृष्टिकोण है। वह हमारा दृष्टिकोण यही है कि गरीब समझते हैं वे भी गरीब हैं अपने कर्मफल के कारण। अमीर अमीर है अपने कर्मफल के कारण। हम दोनों के बीच कोई संबंध नहीं है। अपने-अपने कर्मफलों के संबंध हैं। यह तरकीब बहुत होशियारी की साबित हुई। इससे मेरे पिछले जन्मों से मुझे जोड़ दिया गया है। लेकिन समाज से मुझे तोड़ दिया गया है। समाज के ऊपर मेरी गरीबी अमीरी का कोई सवाल न रहा कोई प्रश्न न रहा।

धर्म की इस धारणा ने निश्चित ही व्यक्तिगत संपत्ति को बचाने का अदभुत उपाय किया है। इसलिए सारे धर्म-शास्त्र दुनिया के कहते हैं, चोरी पाप है, लेकिन दुनिया का एक भी धर्म-शास्त्र नहीं कहता है कि शोषण पाप है। दुनिया का कोई धर्मशास्त्र कैसे कह सकता है कि शोषण पाप है? वे कहते हैं, चोरी पाप है। कभी अपने सोचा है कि इम्प्लीकेशन्स क्या हैं, इसके मतलब क्या है? इसका मतलब यह है की चोरी हमेशा गरीब का कृत्य है, अमीर के खिलाफ चोरी हमेशा उनका कृत्य है जिनके पास संपत्ति नहीं। उनके खिलाफ जिनके पास संपत्ति है। धर्म संपत्तिशाली की रक्षा कर रहा है। वह कहता है चोरी पाप है। लेकिन वह यह नहीं कहता कि शोषण पाप है। शोषण अमीर का कृत्य है दरिद्र के खिलाफ। धर्मग्रंथ कोई भी नहीं कहता कि शोषण पाप है। इस अर्थ में मार्क्स की किताब दुनिया का एक नया धर्मग्रंथ है जो शोषण कसे पाप कहता है। और अगर मार्क्स हिंदुस्तान में पैदा हुआ तो हमने अवतारों में वृद्धि की होती। हम निश्चित उसको अपने अवतारों में गिनते। क्योंकि उसने धर्म और समाज के संबंध में एक नए सूत्र को स्थापित किया है और वह यह कि शोषण पाप है और जब तक

शोषण का पाप जारी है तक तक चोरी जैसे छोटे पाप पैदा होते रहेंगे। चोरी उसकी बाइ-प्रोडक्ट है। वह उससे आएगी और मिट नहीं सकेगी। मैं यही नहीं कहता हूं कि चोरी पाप है। मैं कहता हूं शोषण पाप है।

एक मित्र ने पूछा है कि पूंजीवाद में क्या फर्क होता है? क्या मैं कहना चाहता हूं कि पूंजीवाद जिम्मेवार है, पूंजीपति जिम्मेवार नहीं है? हां, मैं फर्क करता हूं और कहना चाहता हूं कि पूंजीपति और पूंजिहीन, शोषक और शोषित, दोनों शोषण और शोषित, दोनों शोषण के यंत्रों के परिणाम हैं। शोषण का यंत्र जारी है। उस शोषण के यंत्र में सारे लोग श्रम कर रहे हैं। जिसके पास धन नहीं है, वह धन पाने के लिए श्रम कर रहा है। धनी भी और धन पाने के लिए श्रम कर रहा है। जो गरीब है वह अमीर होने की कोशिश नहीं कर रहा है? नहीं हो पा रहा यह दूसरी बात है। जो धनहीन है लेकिन गरीब न हो जाए इसकी पूरी तरह कोशिश में लगा हुआ है। जो उप है वह अमीर कैसे हो जाए इसकी पूरी कोशिश में लगा हुआ है। कुछ लोग सफल हो गए हैं, कुछ लोग असफल हो गए हैं, यह दूसरी बात है। हम सारे लोग इस कमरे में दौड़ने की कोशिश करें और हमारे इस भवन का यह नियम हो कि जो प्रथम आ जाएगा वह सर्वश्रेष्ठ होगा। हम सारे लोग दौड़ेंगे लेकिन प्रथम तो एक ही आ सकता है। जो आ जाएगा वह जिम्मेवार है प्रथम आने के लिए या कि व्यवस्था जो कहती है कि प्रथम आना श्रेयस्कर है, जिम्मेवार है? जो नहीं आ सके उनका कोई बड़ा पुण्य कर्म है कि नहीं आ सके? उन्होंने भी दौड़ने की पूरी कोशिश की है जी जान से। वह नहीं आ सके यह दूसरी बात है! जिनके पास धन नहीं है उन दोनों की दौड़ समान है। दोनों धर्मकांक्षी हैं—धनाढ्य भी, धनहीन भी।

धनाकांक्षा का यह जो समाज है वह जिम्मेवार है। धनपति जिम्मेवार नहीं है। पूंजीवाद के लिए पूंजीवाद जिम्मेवार है, धनपति को पैदा करने के लिए हमारी जो चिंतना है पूंजी को संगृहीत करने की, हमारा जो विचार है कि पूंजी को उपलब्ध कर लेना, पूंजी का मालिक को जाना, पूंजी पर कब्जा कर लेना श्रेयस्कर है। जीवन में यह जो हमारी पूरी व्यवस्था है। फिर जो आदमी पूंजी के सम्मान में। दरिद्र पूरा आदर देता है उसे जो जीत जाता है। दरिद्र खुद उसे अपमानित करता है जो उससे दरिद्र है। वह उसको स्वीकार नहीं करता। सम्राट सम्राटों से मिलता है, पूंजीपति पूंजीपतियों से मिलता हैं, चमार चमारों से मिलते हैं। चमार भी भंगी से मिलना पसंद नहीं कर सकते। वह नीचे उनसे और भी ज्यादा दरिद्र है। उससे मिलने को वह भी राजी नहीं है। वे उसके साथ भी चाहते हैं कि रास्ते पर नमस्कार वह उन्हें करे।

पूरे समाज की मनोवृत्ति धनाकांक्षी है पूरे समाज का चित्त पूंजीवादी है। गरीबी का भी, भिखमंगे का भी, सम्राट का भी, धनपति का भी, इसमें धनपति को जिम्मा देने की जरूरत नहीं है। हम सब जिम्मेवार हैं, हम इकट्ठे जिम्मेवार है। निकृष्टतम, दरिद्रतम और श्रेष्ठतम और धनवान, हम सब इकट्ठे जिम्मेवार हैं इस समाज को निर्मित करने में और इसलिए यह बात गलत है कि कहे कोई कि पूंजीपति जिम्मेवार है। पूंजीपति भी उसी व्यवस्था की पैदाइश गरीब है। वे दोनों एक ही व्यवस्था से उत्पन्न हो रहे हैं और गरीब भी पूंजीवाद को जमाए रखने में उतना सहयोगी है जितना अमीर।

पूंजीवाद जिस दिन जाएगा उस दिन अमीरी ही नहीं जाएगी, गरीबी भी चली जाएगी। पूंजीवाद के जाने के साथ ही गरीब, अमीर दोनों चले जाएंगे। दोनों पूंजीवाद के हिस्से हैं। उसमें गरीब उतना ही जिम्मेवार है, यह हमें कभी-कभी दिखाई नहीं पड़ता है। हमें यह दिखाई पड़ता है कि एक ताकतवर आदमी एक कमजोर आदमी की छाती पर पैर रख कर खड़ा हो गया है तो हम कहते हैं कि यह ताकतवर आदमी बुराई कर रहा है पैर को किसी की छाती पर। तो छाती पर पैर रखने वाला जिम्मेवार है, वह इस कार्य में, छाती पर जिसने पैर रखने दिया है, वह भी उतना ही जिम्मेवार है। कमजोर हमेशा से ही जिम्मेवार हैं जितने की ताकतवर। कायर हमेशा से ही इतने ही जिम्मेवार हद्द जितने बहादुर। हम कहते हैं कि हमारे ऊपर मुसलमान आए और उन्होंने हमें गुलाम बना दिया। मुसलमान जिम्मेवार है और आप जिम्मेवार नहीं हैं जो गुलाम बने? गुलाम उतना ही जिम्मेवार है जितना गुलाम बनाने वाले लोग भी मौजूद रहेंगे।

स्त्रियां कहती हैं कि पुरुषों ने हमें दबा लिया है, लेकिन स्त्रियों को जानना चाहिए कि वे दबने को तैयार हैं और इसलिए पुरुषों ने दबा लिया है अन्यथा कौन किसको दबा सकता है। कोई किसी को नहीं दबा सकता। लेकिन हम हमेशा यह देखते हैं कि दूसरा जिम्मेवार है। अंग्रेज जिम्मेवार है, हमको गुलाम बना लिया और हम चालीस करोड़ नपुंसक क्या करते थे कि अंग्रेज हमें गुलाम बना सके? हम कम-से-कम मर तो सकते थे—अगर और कुछ नहीं कर सकते थे। मुर्दों को

तो गुलाम नहीं बनाया जा सकता था? कम से कम आखिरी रूप में एक ताकत तो आदमी के हाथ में है कि वह मर सकता है, एक च्वाइस तो कम से कम हाथ में है हर आदमी के कि वह आत्महत्या कर सकता है।

मैंने सुना है कि जर्मनी ने हालैंड पर हमला करने का विचार किया। हालैंड तो बहुत समृद्ध मुल्क नहीं है और हालैंड के पास बहुत सुसज्जित सेनाएं भी नहीं है। हालैंड के पास बड़ी शक्ति भी नहीं है। जर्मनी से जीतने का तो कोई उपाय नहीं है उसके पास। लेकिन हालैंड ने तय किया कि चाहे हम मर जाएंगे, लेकिन हम गुलाम नहीं बनेंगे। पर लोगों ने पूछा कि हम करेंगे क्या? कैसे गुलाम नहीं बनेंगे? तो हालैंड का आपको पता होगा, उसकी जमीन नीचे है समुद्र की सतह से। समुद्र के चारों तरफ दीवारें और परकोटे उठाकर उसको अपनी जमीन को बचाना पड़ता है। तो हालैंड के एक-एक कम्यून ने एक-एक गांव की कौंसिल ने यह तय किया कि जिस गांव पर हिटलर का कब्जा हो जाए वह गांव अपनी दीवारें तोड़ दे और समुद्र को गांव के ऊपर जाने दे, पूरा गांव डूब जाएगा। हिटलर की फौजें भी डूब जाएंगी। हालैंड को हम पूरा डुबा देंगे समुद्र के नीचे, लेकिन इतिहास यह नहीं कह सकेगा कि हालैंड गुलाम हुआ।

ऐसी कौम को गुलाम बनाना कठिन है। क्या करिएगा, आखिर गुलाम बनाने के लिए आदमी का जिंदा रहना जरूरी है। कमजोर आदमी को भी मरने का हक तो है। कमजोर आदमी भी मरना नहीं चाहता, इसलिए गुलाम बनने को राजी होता है और गुलामी में उसका अर्थ है। वह कोई अपने को बचा नहीं सकता। यह तो पूंजी की व्यवस्था है, यह जो शोषण की व्यवस्था है, इसमें गरीब आदमी का हाथ उतना ही है जितना अमीर आदमी का हाथ है। इसमें भिखमंगे का हाथ उतना ही है जितना शहंशाह का। यह तो दोनों के जोड़ का फल है।

इसलिए मैं नहीं कहता कि पूंजीपति का हाथ है, मैं कहता हूं हम सबका हाथ है और जब तक हम यह नहीं समझेंगे कि हम सबका हाथ है, तब तक इस शोषण की व्यवस्था को नहीं बदल सकेंगे। अगर पूंजीपति का हाथ है तो पूंजीपति को समझा-बुझा कर उसकी संपत्ति बंटवा दो तो कोई फर्क पड़ेगा? संपत्ति बंट जाएगी और दूसरा पूंजीपति खड़ा हो जाएगा, क्योंकि व्यवस्था काम कर रही है। उस व्यवस्था से सारी चीजें पैदा हो रही हैं।

इसलिए जो समाजवादी पूंजीपति के प्रति घृणा फैलाते हैं वे गलत काम करते हैं। वह काम ठीक नहीं है। समाजवाद पूंजीपति के प्रति घृणा नहीं है। समाजवाद पूंजीपति, दरिद्र, धनवान सबको मिटाने का उपाय है। समाजवाद पूंजीवाद के विरोध में हैं, पूंजीपति के विरोध में नहीं है। पूंजीपति के विरोध से कुछ प्रयोजन नहीं है। प्रयोजन है पूंजीवाद से, वह जो कैपिटलिज्म है, वह जो हमारी पूंजी के लिए ही जीते और मरते हैं, गरीब भी, अमीर भी, यह जो पूंजी का सारा इंतजाम है—इस पूंजी के केंद्र को तोड़ देना समाजवाद है।

समाजवाद गरीब की लड़ाई नहीं है, पूंजीपति के खिलाफ। समाजवाद पूंजीपति की, गरीब की सबकी लड़ाई है पूंजी के खिलाफ; यह समझ लेना जरूरी है और जिस दिन हम यह समझ सकेंगे की पूंजीवाद के खिलाफ हमारी लड़ाई है, पूंजीपति के खिलाफ नहीं, तो पूंजीपति भी इस लड़ाई में साथी और सहयोगी होगा। समाजवादियों की इस गलत धारणा ने कि हम पूंजीपति के खिलाफ लड़ रहे हैं समाज को अजीब हालत में डाल दिया है। उन्होंने एक ऐसी हालत पैदा कर दी कि लड़ाई है, पूंजीपति के खिलाफ है। तो पूंजीपति समाजवाद का नाम लेते ही भयभीत होता है। वह सुनता है कि समाजवाद, यानी उसका दुश्मन। समाजवाद पूंजीपति का दुश्मन नहीं है। समाजवाद गरीबी से गरीबी छीन लेगा, अमीर से अमीरी छीन लेगा और गरीब भी ठीक अर्थों में नारायण नहीं हो पाता। अमीर नारायण भी तकलीफ में रहता है पूंजी की, गरीब नारायण भी तकलीफ में रहता है गरीबी की। जिस दिन हम गरीबी छीन लेंगे, अमीर की अमीरी छीन लेंगे, उस दिन हम प्रत्येक मनुष्य को मनुष्य होने का पूरा हक देंगे, उस दिन मनुष्य नारायण जन्म होगा, नहीं तो समृद्ध-नारायण की पूजा जरूरत है नारायण की और नारायण पेकट नहीं हो पा रहा है, क्योंकि पूजा पूंजी की चल रही है। नारायण की पूजा कैसे हो सकती है? इसलिए मैंने कहा कि मैं उस शब्द को पसंद नहीं करता हूं।

कुछ मित्रों ने पूछा है कि समाजवाद की समानता की मैं जो बात करता हूं क्या उसका यह अर्थ है कि सबकी संपत्ति बिलकुल समान कर दी जाए! क्या उसका अर्थ है कि सबको तनख्वाहें बिलकुल बराबर दी जाएं? क्या उसका अर्थ है कि प्रत्येक आदमी को एक-सा मकान दे दिया जाए?

नहीं, उसका यह अर्थ नहीं है। उसका यह अर्थ है कि प्रत्येक आदमी को जीवन में विकास का समान अवसर दिया जाए। अभी हम पूंजी के इतने प्रभाव में हैं कि जब भी हम समानता की बात सोचते हैं, तो तत्काल हमारे सामने जो पहला सवाल उठता है वह यह है कि बराबर नौकरी, बराबर तनख्वाह, बराबर मकान। यह पूंजी का प्रभाव है कि तत्काल हमें पूंजी को समान करने का ध्यान आता है, क्योंकि हम पूंजी से प्रभावित हैं, हम पूंजी के अतिरिक्त कुछ सोच ही नहीं सकते। हमें मनुष्य का सवाल ही नहीं है, सवाल पूंजी का है। हजार-हजार साल से पूंजी की धारणा के नीचे जीने से जब भी समाजवाद की दृष्टि उठती है तो हम समझते हैं कि पूंजी।

नहीं, सवाल मूलतः यह नहीं कि सब आदमी को बराबर तनख्वाह मिल जाए। तनख्वाह का मूल्य नहीं है, मूल्य इस बात का है कि प्रत्येक व्यक्ति को जीवन का समान अवसर मिल जाए। अब घर में एक आदमी मोटा है और एक आदमी दुबला है तो समान रोटी खिलाने से बड़ी झंझट पैदा हो जाएगी। समाजवाद का मतलब यह नहीं है कि सब लोगों को बराबर रोटी खानी पड़ेगी। अब एक मोटा आदमी है, उसकी कम रोटी में जान निकल जाएगी और दुबले आदमी को ज्यादा रोटी खिलाने से जान निकल जाएगी। यह मतलब नहीं है। लेकिन प्रत्येक आदमी को जीवन का समान अवसर उपलब्ध हो सके, जीवन के विकास का, परमात्मा तक पहुंचने का, संगीत तक, साहित्य तक, धर्म तक जीवन की सुविधा का समान अवसर मिल सके और जितने दूर तक यह संभव हो सके, जितने दूर तक यह उचित हो सके उतने दूर तक वर्गों का फासला निरंतर कम-से-कम होता चला जाए।

अब हिंदुस्तान में एक आदमी एक रुपया कमा नहीं पा रहा है रोज और दूसरा आदमी रोज पांच लाख रुपये कमा रहा है। यह फासला? यह घबरा देने वाला फासला है। यह अमानवीय है और हम कहते हैं कि हम धार्मिक लोग हैं! धार्मिक लोग हम होते तो इतने अमानवीय, इतने अधार्मिक फासले सह सकते थे? लेकिन हमारा धर्म इसमें है कि हम माला फेरते हैं। अभी एक बहन ने आकर कहा कि किसी धार्मिक को वह साथ में लायी होंगी। उन्होंने कहा, अरे, यह तो ब्रह्म की कोई बात ही नहीं कर रहे हैं, यह तो सब संसार की ही बातें कर रहे हैं।

ब्रह्म की बातों से लोग समझते हैं धार्मिक हो गए, ब्रह्म की बात कर ली तो धार्मिक हो गए। ब्रह्म की बात करने से धार्मिक कोई नहीं हो सकता। धार्मिक होता है इस जगत में ब्रह्म को उतारने की संभावना बढ़ाने से। इस जगत में ब्रह्म अवतरित हो। ब्रह्म की बकवास तो ग्रंथों में बहुत लिखी है, परिभाषाएं बहुत लिखी हैं और कोई भी मूढ़ जन उन्हें याद कर सकता है कि ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या है। इसको याद करने में कोई बहुत बुद्धिमानी की जरूरत नहीं है, लेकिन ब्रह्म सत्य को कहां पाया है। जगत ही सत्य बना हुआ है। ब्रह्म तो बिलकुल असत्य है। ब्रह्म सत्य हो सकता है जब हम इस जगत में ब्रह्म के विकास की अधिकतम सुविधा और समान सुविधा जुटा सकेंगे। तभी ब्रह्म सत्य होगा और जगत मिथ्या है, हमारे लिए शरीर ही सत्य है और आत्मा मिथ्या है।

सूत्र रटने से कुछ भी नहीं होगा, बल्कि हम सूत्र रटते हैं कि जिस आदमी को यह पता चल चुका हो कि ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या, वह रोज सुबह उठ कर आंख बंद करके यह कहेगा कि ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या, ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या? पता चल गया हो तो पागल हो गया होगा, उसको कहने की जरूरत? एक पुरुष के कोने में बैठ कर कहे कि मैं पुरुष हूं, मैं पुरुष हूं तो सबको शक हो जाएगा कि यह आदमी पुरुष नहीं है। तुम पुरुष हो यह तुम्हें पता है, बात खत्म हो गई। अब इसको रोज-रोज दोहराने की और सत्संग करने की जरूरत नहीं समझने जाने के लिए कि मैं पुरुष हूं या नहीं। जब तक संदेह है तब तक इस तरह की बातों की पुनरुक्ति है। जो लोग सुबह उठ कर दोहराते हैं ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या, उनको जगत सत्य दिखाई पड़ता है, ब्रह्म मिथ्या दिखाई पड़ता है। इस स्थिति को उलटाने के लिए बेचारा जोर-जोर से उसे रट रहा है कि नहीं जगत असत्य है, ब्रह्म सत्य है। जो दिखाई पड़ रहा है उसको मिटा डालने के लिए, पोंछ डालने के लिए, उलटा करने के लिए ये सारी बातें कर रहे हैं। इन बातों से ब्रह्मज्ञान का कोई संबंध नहीं है। ब्रह्मज्ञान का संबंध ब्रह्म की चर्चा से नहीं है।

इस जगत में ब्रह्म की कैसे अवतारणा हो, कैसे डिसेंड हो सके वह जो डिवाइन है, वह जो दिव्य है, वह कैसे इस पृथ्वी पर आ सके अधिकतम प्राणों में कैसे आकर वह स्पर्श कर सके, अधिकतम प्राणों में कैसे उसका संगीत गूंज उठे। लेकिन जिन प्राणों को शरीर से ही मुक्त होने का उपाय न मिलता हो उन प्राणों को ब्रह्म के अवतरण की संभावना कहां?

इसलिए मैं कहता हूं कि समाजवाद आने पर जगत में ब्रह्मवाद आन के द्वार खुल जाएंगे।

अब तक दुनिया में व्यक्ति हो गया है ब्रह्मवादी, समाज नहीं हो सका। अरबों-खरबों व्यक्तियों में अगर एकाध व्यक्ति ब्रह्मवादी हो जाता है, तो इसका मूल्य कितना हो सकता है? अगर हम इतिहास उठाकर देखें दस हजार वर्ष का तो हम दस-बीस नाम गिन सकेंगे मुश्किल से कि यह ब्रह्मवादी है। कितने अरबों लोग पैदा हुए हैं, कितने अरबों लोग मरे, कितने अरबों लोग जिए, कितने अरबों लोग समाप्त हुए, वे सब कहां गए? वे ब्रह्मवादी नहीं हो पाए, दस पांच लोग ब्रह्मवादी हुए। यह सफलता की बात है? एक माली एक करोड़ पौधे लगाए और एक पौधे में फूल आए तो हम माली की प्रशंसा करेंगे? हम कहेंगे कि धन्य हो माली, बड़े कुशल हो, बहुत कारीगर हो, बड़े महान हो, गजब कर दिया। सिर्फ एक करोड़ पेड़ लगाए और एक पेड़ में फूल आ गए! हम उस माली से कहेंगे कि इस माली के कारण तो एक पेड़ में फूल नहीं आए होंगे माली के बावजूद आ गए होंगे, यह हो सकता है। क्योंकि माली पे तो एक करोड़ पौधे लगाए, एक करोड़ में नहीं आए, एक में आए तो यह साबित होता है कि माली की नजर चूक गई दीखती है एक पर और फूल आ गए। माली के कारण नहीं आए, इंस्पाइट ऑफ, उसके बावजूद आ गए होंगे।

करोड़ों-करोड़ों लोग पैदा हों और एक आदमी शंकर हो जाए, करोड़ों-करोड़ों लोग पैदा हों और एक आदमी जीसस हो जाए, यह कथा कोई सौभाग्यपूर्ण हैं? नहीं होना उलटा चाहिए। करोड़ों-करोड़ों लोग पैदा हों और कभी एकाध आदमी अधार्मिक हो जाए तो हम समझेंगे की पृथ्वी ब्रह्म की तरफ जा रही है। लेकिन हम अपने देश में यह भ्रम लिए हुए बैठे हैं कि हम सब धार्मिक लोग हैं और इतने फासले हैं जीवन में! नहीं मैं यह कहता हूं कि सारे फासले आज टूट सकते हैं। लंबे अर्थों में एक दिन सारे फासले भी टूट सकते हैं, लेकिन आज फासला हम जितना कम कर सकें उतना मनुष्यता का पुनरुत्थान होगा, उतनी मनुष्यता की और उठ सकती है।

इसलिए जो बातें मैं कर रहा हूं, कोई भूल यह न समझ ले कि मैं संसार की बातें कर रहा हूं। संसार की बातें करने की मुझे सुविधा नहीं, फुर्सत नहीं है। मैं जो बातें कर रहा हूं वह धर्म की ही बात कर रहा हूं, मैं जो बात कर रहा हूं वह ब्रह्मज्ञान की ही बात कर रहा हूं, संसार की बात करने की मुझे रुचि नहीं है और जो संसार है ही नहीं उसकी बात की भी कैसे जा सकती है। ब्रह्म ही है, उसी की बात की जा सकती है और ब्रह्म बड़ी मुश्किल में पड़ा है और पूंजीवाद ने ब्रह्म को बहुत झंझट में डाल रखा है। इस पूंजीवाद से ब्रह्म का छुटकारा होना जरूरी है।

यह जो हमारी दृष्टि है, वह रहे कि नहीं? संसार असार है, उसकी बात नहीं करनी है। यह बात नहीं करनी है। यह बात पूंजीवाद के बहुत पक्ष में है। पूंजीवाद चाहता है कि साधु-संत समझाते सहें कि संसार असार है। इसमें कुछ भी मतलब नहीं है। वह गरीब? अरे सह लो, इसमें कुछ भी सार नहीं है। गरीबी-अमीरी सब बराबर हैं। भूख सह लो, अकाल सह लो, दरिद्रता सह लो, संतोष रखो, सांत्वना रखो, यह सब सपना है। पूंजीवाद पसंद करता है कि यह बात, सह जहर, यह पायज़न, लोगों के दिमाग में डाला जाता रहें कि सब तो असार है, इसकी फिक्र मत करो।

एक आदमी आपको लूट रहा है और एक ज्ञानी आपको समझा रहा है, घबराओ मत, लूटते रहो, यह सब असार है, लेकिन वह लूटने वाला बिलकुल नहीं सुनता, वह लूटता चला जाता है, उसमें असार से कोई फर्क नहीं पड़ता। यह लूटने वाला सुन लेता है कि असार है और खड़ा रहता है। वह लूटता है, वह लूटने वाला प्रसन्न होता है। लूट में से थोड़ा हिस्सा वह ज्ञानी को भी दे देता है, क्योंकि वह जानता है। यह आपको पता है? वह लूट में से थोड़ा हिस्सा उसको देता है।

सारे पंडित, सारे ज्ञानी, सारे साधु-संन्यासी उस लूट में हिस्सेदार होते हैं और उस हिस्से में होने की वजह से वे बेचारे निरंतर ही यह कहते रहते हैं कि सब असार है, सब असार है, कोई सार नहीं है। यह सब माया है, यह सब सपना है, जो चारों तरफ चल रहा है? और अगर यह सपना है तो ज्ञानी छोड़कर क्या भागता है, अगर पत्नी सपना है तो पत्नी से भागने की जरूरत और धन अगर सपना है तो धन से भागने की जरूरत? और अगर जीवन सपना है तो त्याग किसका करते हो? सपने के त्याग किए जा सकते हैं? नहीं, लेकिन छोड़ने और भागने के लिए ज्ञानी मानता है कि सपना नहीं है।

लेकिन यह जो चल रही है समाज की व्यवस्था, यह जो समाज की सनातन व्यवस्था चल रही है यह बदल जाए, इसके बदलने की बात करूंगा। वह कहेगा, कहां संसार की और माया की बातें करते हो, उसे पता नहीं की और संसार को

उसकी बातें सुरक्षा दे रही हैं। इस माया और संसार को तोड़ा जा सकता है, इस पृथ्वी को परमात्मा की खोज का एक अपूर्व संसार बनाया जा सकता है, लेकिन आज तक मनुष्य ने जो समाज निर्मित किया है उस समाज में अधिकतम लोगों की जीवन-ऊर्जा रोटी जुटाने में, शरीर की व्यवस्था करने में ही नष्ट हो जाते है। वह कभी भी इसके ऊपर नहीं उठ पाती है। इसके बियांड, इसके अतीत नहीं जा पाती।

एक समाज चाहिए संपत्तिशाली, एक ऐसा समाज चाहिए समृद्धिशाली, एक ऐसा समाज चाहिए समान अवसर वाला, एक ऐसा समाज चाहिए जहां पूंजी केंद्र न हो, परमात्मा केंद्र हो, जहां हम जीवन में जीएं सिर्फ इसलिए कि जीवन और ऊपर जा सके। एक वैसा समाज जिस दिन दुनिया में होगा उस दिन धर्म का जन्म होगा, उस दिन ब्रह्म हमारे निकट आ सकेगा। अभी शरीर के अतिरिक्त, पदार्थ के अतिरिक्त हमारे निकट कुछ भी नहीं है।

एक अन्य प्रश्न, फिर मैं अपनी बात पूरी करूं।

एक बहन नू पूछा है—बहुत ही मजेदार बात पूछी है। मेरे साधना शिविरों के अभी अखबारों ने कुछ फोटो छाप दिए हैं। एक बहन मेरे गले से आकर लगी हुई है, अखबारों ने ऐसा भी एक फोटो छाप दिया है। उन्होंने वह फोटो देख लिया होगा तो उन्होंने मुझसे पूछा है कि शिविर में आप स्त्रियों के साथ बड़ा दुर्व्यवहार करते हैं। गांधीजी ने तो ऐसा दुव्यर्वहार कभी नहीं किया!

अगर स्त्रियों के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार दुर्व्यवहार है तो मैं जरूर दुर्व्यवहार करता हूं। अब तक साधु-संत स्त्रियों के साथ घृणा का व्यवहार करते रहे हैं, इसलिए वही व्यवहार हमें सदव्यवहार मालूम होने लगा है। साधु-संतों ने आज तक स्त्रियों को मनुष्य होने की हैसियत नहीं दी है। साधु-संतों ने उसे नर्क का द्वार समझा है, साधु-संतों ने उसे कीड़े-मकोड़ों से बदतर बताया है। साधु-संतों ने उसे सांप-बिच्छू से खतरनाक समझा है। साधु-संतों का अगर वह पैर भी छू ले तो साधु-संत अपवित्र हो सकते हैं और उन्हें उपवास करके पश्चात्ताप करना पड़ता है और ये साधु-संत स्त्री से पैदा होते हैं। इनकी सारी देह स्त्री से ही निर्मित होती है। इनका खून स्त्री का, इनकी हड्डी स्त्री की, इनके जीवन की सारी ऊर्जा स्त्री से आती है और वह स्त्री नर्क का द्वार हो जाती है!

मनुष्य-जाति जब तक स्त्रियों के साथ ऐसा असम्मानपूर्ण और ऐसा मूढ़तापूर्ण व्यवहार करेगी, तब तक मनुष्य-जाति के जीवन में कोई ऊर्ध्वगमन नहीं हो सकता है। स्त्री के साथ दुव्यर्वहार अब तक रहा है और उस दुर्व्यवहार का कारण? उसका कारण स्त्री की कोई खराबी नहीं है, क्योंकि जिन बातों के कारण स्त्री को पाप, दोष देते हैं आप उन बातों में स्त्री के सहयोगी नहीं हैं, यह बड़े मजे की बात है। पुरुष नर्क का द्वार नहीं है, स्त्री अकेले दुनिया में कामवासना ले आती है, पुरुष नहीं? सच्चाई उलटी है। स्त्री इतनी कामूक कभी भी नहीं, जितना पुरुष कामुक है और स्त्री की कामवासना को अगर जगाया जाए जो स्त्री कामवासना के लिए बहुत आतुर भी नहीं होती और सारी स्त्रियां जानती हैं कि कामवासना में कौन उन्हें रोज घसीटता है—उनका पति या वे स्वयं! कौन उन्हें घसीटता है? पुरुष चौबीस घंटे सेक्सुअल है। प्रतिदिन सेक्सुअल है, लेकिन दोष है स्त्री का। वह उसे नर्क ले जाती है।

यह भी ध्यान रखना जरूरी है कि स्त्री तो पुरुष पर कोई बलात्कार नहीं कर सकती है, स्त्री तो पैसिव है, स्त्री तो निष्क्रिय है, वह कोई हमला तो कर नहीं सकती पुरुष पर। पुरुष हमला कर सकता है। जो निष्क्रिय है उसको नर्क का द्वार समझता है! स्त्री को दी गई गालियां, ये अपमान, ये अशोभन शब्द अब तक सदव्यवहार समझे गए हैं और स्त्री इतनी मूढ़ है कि पुरुष की इन दुष्टतापूर्ण बातों में सहयोगी रही है और उसने भी इन बातों का साथ दिया है। उसने कोई इनकार नहीं किया, उसने कोई बगावत नहीं की, उसने कोई विद्रोह नहीं किया। उसने यह नहीं किया कि यह तुम क्या कह रहे हो। उसे सह लिया उसने चुपचाप। उसको उसने मान लिया है चुपचाप, क्योंकि उसका न कोई अपना गुरु है, न उसका अपना कोई शास्त्र है, न उसका अपना कोई धर्म है। वे सब पुरुषों के निर्मित हैं, वे पुरुषों के पक्ष में लिख गए हैं। वे सब पुरुषों ने अपने पक्ष में ग्रथों में लिख दिया है कि अगर पति मर जाए तो स्त्री को सती होना चाहिए। लेकिन किसी पति को भी कभी सती होना चाहिए, यह बात उन्होंने नहीं लिखी। स्वभावतः वर्गीय दृष्टिकोण है, वह पुरुषों का अपना दृष्टिकोण है। वह उसने लिख दिया है।

साधु और संन्यासी स्त्री के प्रति क्यों इतने दुर्व्यवहारपूर्ण रहे हैं? उसका एकमात्र मनोवैज्ञानिक कारण यह है कि साधु और संन्यासी को, भीतर उसकी कामना की स्त्री बहुत पीड़ित और परेशान करती है। उसके भीतर स्त्री घूमती है। वह बेचारा परमात्मा को बुलाना चाहता है। जब भी परमात्मा को बुलाता है तभी पत्नी आ जाती है। वह राम-राम जपता है तभी भीतर काम-काम-काम कामवासना चलती है। वह घबराया हुआ है भीतर की स्त्री से। वह उस भीतर की स्त्री से। वह उस भीतर की स्त्री से परेशान है, उसके बदले में बाहर की स्त्री को गाली देता है, उसके बदले में बाहर की स्त्री से भयभीत होता है कि बाहर की स्त्री ने अगर हाथ छू गया तो मर गए, जान निकल गई क्योंकि भीतर जो स्त्री बैठी है वह जाग जाएगी, वह खड़ी हो जाएगी।

बाहर की स्त्री के हाथों में ऐसा क्या है जिन्हें छू देने से किसी संन्यासी में कुछ  अपवित्र हो जाए और संन्यासी के शरीर में ऐसा कुछ क्या है जो स्त्री के शरीर से ज्यादा पवित्र है और छूने से अपवित्र हो सकता है? शरीर में क्या है? इतना भय क्या है इतना भय स्त्री का भय नहीं है, अपने भीतर छिपी हुई सेक्सुअलिटी का, कामवासना का भय है।

इसलिए संन्यासी भागता रहा है, घबराता रहा है, दूर-दूर भागता रहा है, स्त्री छू ले तो पाप, स्त्री छू ले तो अपवित्रता और इसको बाकी पुरुष बहुत आदर देते रहे हैं क्योंकि बाकी पुरुषों का मन स्त्री को छूने के लिए लालायित है। वे देखते हैं कि एक आदमी तो नहीं छूता है, दूर-दूर भागता है, वे कहते हैंः है महापुरुष, है तपस्वी, क्योंकि हमारा तो मन नहीं मानता है बिना छुए हुए। हमारा मन होता है कि छुएं-छुएं-छुएं। किसी तरह रोकते हैं, संस्कार, शिष्टाचार सब तरह से अपने को संभालते हैं लेकिन मौका मिल जाए, भीड़ मिल जाए, मंदिर हो, मस्जिद हो, गिरजा हो, तो थोड़ा-बहुत धक्का दे ही देते हैं वह दूसरी बात है। लेकिन सामने शिष्टाचार रखते हैं, दूर-दूर बचकर चलते हैं।

इतना बच कर चलना सबूत किसा बात का है इतना बच कर चलना छूने की इच्छा का सबूत है और किसी बात का सबूत नहीं है। इतनी घबराहट किस बात की है?—वासना की और दमित वासना की। किंतु शेष पुरुष देखते हैं कि ये हैं संन्यासी, ये हैं महाराज। ये स्त्री को छूने नहीं देते हैं। ये स्त्री से सदा दूर रहते हैं। 'स्त्री! दस कदम दूर रहना'—ऐसा साइनबोर्ड जो हाथ में लिए हैं, वह संन्यासी है!

अभी मैंने सुना है कि एक महाराज को यहां बंबई में किसी स्त्री ने छू दिया तो उन्होंने तीन दिन का उपवास किया। और उससे उनकी इज्जत बहुत बढ़ी। क्योंकि काम-वासना से भरे हुए समाज में ऐसे लोगों की जरूर की इज्जत हो सकती है, क्योंकि हम काम-वासना से भरे हैं। हमें लगता है कि महान त्याग किया कि एक स्त्री ने छुआ और उन्होंने इनकार कर दिया कि नहीं छूने देंगे। यह हमारी सेक्सुअल मैंटेलिटी का सबूत है और इसको अगर सदव्यवहार समझते हैं, तो मैं स्त्रियों के साथ ऐसा सदव्यवहार करने से इनकार करता हूं। लेकिन बड़े मजे की बात है, बड़े आश्चर्य की कि एक बहन ने पूछा है, किसी पुरुष ने पूछा होता मेरी समझ में आ सकता था। यह बहन बड़ी मर्दानी होगी। इसकी बुद्धि पुरुषों के शास्त्रों से जो निर्मित है!

वह कैंप में जो बहन आकर मेरे हृदय से लग गई, उस क्षण उसकी प्रार्थना, उसका प्रेम, उसका आनंद, उसकी पवित्रता अदभुत थी अन्यथा हजार लोगों के सामने वह मेरे हृदय से आकर जुड़ जाने कर हिम्मत भी नहीं कर सकती थी। उसका पति बगल में खड़ा था। वह घबराता रहा, अभी उनके पति मुझे मिले और कहने लगे कि मैंने उससे पूछा कि पागल तूने यह क्या किया! उसने कहा कि मुझे पता नहीं था। यह तो जब मैं अलग हट गई तब मुझे खयाल आया कि लोग क्या सोचेंगे, लेकिन उस क्षण मुझे सो-विचार भी नहीं था। उस क्षण मुझे लगा कि कोई दूर की पुकार मुझे खींच रही है और मैं पास चली गई। उसी स्त्री को मैं धक्का दे दूं इस खयाल से कि कोई अखबार का रिपोर्टर, फोटो नहीं उतार लें। उसे कह दूं कि नहीं दूर, उसे दूर कहकर सिर्फ मैं इतना सिद्ध करूंगा कि मेरे भीतर भी वासना उद्दाम वेग से खड़ी है, अन्यथा भय क्या है, अन्यथा डर क्या है, अन्यथा चिंता क्या है, वह स्त्री कहीं कोई एकांत अंधेरे कोने में मुझसे गले आकर नहीं मिली थी। और मिलती तो भी मैं तो मना करने वाला न था। हजार-हजार लोग चारों तरफ खड़े थे, वहां फोटो उतारे जा रहे थे।

मुझमें भी थोड़ी बुद्धि तो है, लेकिन इस निर्बुद्धि समाज के सामने ऐसा लगता है कि चाहे कुछ भी सहना पड़े, जो ठीक हैं, जो सही है, चाह अनादर सहना पड़े, चाहे अपमान सहना पड़े—जो ठीक है, सही है वही करना है, वही किए चले

जाना है। मुझे नहीं लगता कि कोई पुरुष प्रेम से जब गले आकर मिलता है तब उसे मैं नहीं रोकता तो एक स्त्री को मैं कैसे रोक सकता हूं। जब में किसी पुरुष को नहीं रोक सकता तो एक स्त्री को कैसे रोक सकता हूं और स्त्री और पुरुष के बीच इतना फासला करने की जरूरत क्या है, प्रयोजन क्या है? क्या हमें शरीर के अतिरिक्त कभी कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता? जिस फोटोग्राफर ने वह चित्र उतारा होगा और जिस संपादक ने छापा होगा वह फोटो मेरे और उस स्त्री के बाबत कम, उस फोटोग्राफर और संपादक के संबंध में ज्यादा बताते हैं। उसकी बुद्धि वहीं अटक रही है। उस घंटे भर के ध्यान के बाद उसे यही दिखाई पड़ा, इतना ही दिखाई पड़ा।

उन बहन ने यह भी पूछा कि गांधीजी तो ऐसा दुर्व्यवहार कभी स्त्रियों के साथ नहीं करते थे तो शायद बहन को गांधी का कुछ पता नहीं। गांधी इस दुर्व्यवहार को शुरू करने वाले पहले नैतिक महापुरुष हैं। हिंदुस्तान में गांधी ने पहली बार स्त्री को वह सम्मान दिया है। हिंदुस्तान ने नैतिक महापुरुषों में स्त्री को गांधी की भांति सम्मान देने वाला कोई दूसरा व्यक्ति ही नहीं हुआ। हां, धार्मिक और आध्यात्मिक व्यक्ति जरूर हुए हैं। जैसे कृष्ण, लेकिन उनकी बात अलग है। और शायद इसीलिए भारत के कुछ नीतिवादियों ने कृष्ण को नरक तक में डाल रखा है। कृष्ण को समझना अति कठिन है, क्योंकि उनका चिंतन और चेतना यौन-केंद्रित बिलकुल नहीं है।

महावीर ने जब स्त्रियों को संन्यास की दीक्षा दी, तो तब भी नीतिवादी चिंतित हुए होंगे। महावीर के भिक्षु थे केवल बारह हजार और भिक्षुणियां थीं चालीस हजार। न मालूम कितने लोगों ने महावीर पर एतराज किया होगा; कि चालीस हजार स्त्रियों से घिरा हुआ है यह आदमी, जरूर एतराज किया होगा क्योंकि आदमी सदा हम ही जैसे हमेशा से थे। हमसे भी बदतर और शायद बुद्ध ने इन नासमझों के कारण ही स्त्रियों को दीक्षा देने में सोच-विचार किया था।

क्राइस्ट पर लोगों ने शक किया कि मेरी मेग्दलिन नाम की वेश्या इसके चरणों में आकर चरण छूती है, लोगों ने कहा, नहीं इस स्त्री को चरण मत छूने दो। क्राइस्ट ने कहा, लेकिन स्त्री का पाप क्या है कि चरण न छुए? लोगों ने कहा, स्त्री भी हो तो ठीक, यह वेश्या है। क्राइस्ट ने कहा, वेश्या मेरे पास नहीं आएगी तो कहां जाएगी? अगर मैं वेश्या को इनकार कर दूंगा तो फिर वेश्या के लिए उपाय क्या है, मार्ग क्या है।

विवेकानंद हिंदुस्तान लौटे। निवेदिता साथ आ गई और बस हिंदुस्तान का दिमाग फिर गया और सारे बंगाल में बदनामी फैल गई कि ये स्वामी और संन्यासी और यह निवेदिता की पवित्रता को, निवेदिता के प्रेम को, किसी ने भी नहीं देखा। आज जो सारी दुनिया में विवेकानंद का काम फैला हुआ दिखाई पड़ता है, उसमें विवेकानंद का हाथ कम और निवेदिता का हाथ ज्यादा है। निवेदिता भी दंग रह गई होगी। कैसे अच्छे लोग थे, कैसी छोटी बुद्धि थी। इतना ही नहीं उन्हें दिखाई पड़ा विवेकानंद को इतना समझ पाए वे सिर्फ।

गांधी ने तो बहुत हिम्मत की। स्त्रियों को गांधी हिंदुस्तान के घरों से पहली दफा बाहर लाए, स्त्रियों को पुरुषों के साथ खड़ा किया। आपको शायद पता नहीं होगा, वह मेरी ही फोटो छप गई है, ऐसा नहीं, मैंने सुना है कि गांधी की एक फोटो यूरोप और अमेरिका में खूब प्रचारित की गई थी। एक फोटो तो उनकी वह प्रचारित की गई जिसमें वह अपने ही घर बच्चियों के, नाती-पोतियां होंगी, उनके कंधे पर हाथ रखे हुए दिखाए गए हैं। वह फोटो हमेशा से छापने वाले लोग रहे हैं और रहेंगे। अपनी बुद्धि के अनुकूल ही वे कुछ कर सकते हैं, इससे ज्यादा करने का उपाय भी तो नहीं है। उन पर नाराज होने का कारण भी तो नहीं है और शायद उस बहन को पता नहीं होगा कि गांधी अपनी अंतिम उम्र में, बुढ़ापे में, एक बीस वर्ष की युवती को लेकर छह महीने तक बिस्तर पर सोते रहे। तब उनको पता चलेगा। उतना दुर्व्यवहार अभी मैंने किसी तरह से नहीं किया है। छह महीने तक एक युवती के साथ गांधी बिस्तर पर सोते रहे, किसलिए? स्वचित्त में छिपी वासना के परीक्षण के लिए। और उस युवती की हिम्मत की दाद देनी चाहिए। और गांधी की ऐसा प्रयोग करने की हिम्मत को भी। वह भी जीवन भर की नैतिकता की दमनवादी धारा में बहने के बाद?

इसलिए में कहता हूं कि गांधी में धार्मिक क्रांति की बड़ी संभावनाएं थीं। फिर जल्दी नतीजे लेना ठीक नहीं है। जिंदगी बहुत गहरी है और समझने को है। जहां हम खड़े हैं जिंदगी वहीं नहीं है, जिंदगी और आगे है। हम मिट्टी के दीये हैं, जिंदगी

की ज्योति मिट्टी के दीये से बहुत की ऊपर जाती है। जिनको ऊपर की ज्योति नहीं दिखाई पड़ती, उन्हें सिर्फ मिट्टी के दीये ही दिखाई पड़ते हैं।

गांधी के उपर्युक्त प्रयोग को लेकर भी खूब बातें चलीं। पक्के गांधीवादियों ने विरोध भी किया। रात में पहरे भी दिए। खुद गांधी के पत्रों ने गांधी के व्यक्तव्य नहीं छापे। और फिर उस घटना को लीप-पोत कर पोंछ डालने की भी चेष्टा की कि कहीं उनके महात्मा मिट्टी में न मिल जाएं। लेकिन गांधी के इस प्रयोग पर बहुत ध्यान दिया जाना चाहिए...क्योंकि इससे उनकी दमनवादी प्रवृत्तियों से बिलकुल विपरीत एक नये आयाम का उदघाटन होता है।

गांधी का यह प्रयोग मूलतः तांत्रिक है। इससे जीवन भर की नैतिकता और संयम की भी गहरी टीका हो गई है। मेरी दृष्टि में तो गांधी दमन से जो मुक्ति नहीं पा सके, वह मुक्ति उन्हें उस तांत्रिक प्रयोग से मिली। लेकिन इसे स्वीकार करना गांधीवादी के लिए तो बहुत मंहगा पड़ सकता है, क्योंकि तब गांधी के जीवन भर के संयमवादी रुख और उपदेशों का क्या होगा? दमन और तथाकथित संयम की तो इस प्रयोग ने असफलता ही सिद्ध कर दी है। इसीलिए इस घटना को गांधीवादी दुर्घटना से ज्यादा नहीं मानना चाहता है। और उस पर चुप्पी साधे हुए है। ये गांधीवादी गांधी के सामने भी जाकर उस घटना के ऊपर गंदे इशारे करते थे और गंदी हंसी हंसते थे। शायद उनका खयाल रहा होगा कि बुड्ढा हमें धोखा दे रहा है!

देख कबीरा रोया

नवां प्रवचन

गांधी का चिंतन अवैज्ञानिक है

मेरे प्रिय आत्मन्!

गांधीजी के संबंध में मेरी जो दृष्टि है, उस पर हम विचार करेंगे।

जिंदा आदमी को मार डालो और मरे हुए आदमी की पूजा करो; ये दो तरकीबें हैं। ये छूटने के रास्ते हैं, ये बचने के रास्ते हैं। फिर पूजा भी हम उसी कस करते हैं, जिसे हमने बहुत सताया है। पूजा मानसिक रूप से पश्चात्ताप है। वह प्रायश्चित्त है। जिन लोगों को हम जीते जी सताते हैं, उनके मरने के बाद पूरा समाज उनकी पूजा करता है; ऐसे प्रायश्चित्त करता है। वह जो पीड़ा दी है, वह जो अपराध किया है, वह जो पाप है भीतर, उस पाप का प्रायश्चित चलता है। तो हजारों साल तक पूजा चलती है। यह पूजा किए गए अपराध का प्रायश्चित्त है। लेकिन वह भी अपराध का ही दूसरा हिस्सा है।

गांधी को जिंदा रहते सताएंगे, न सुनेंगे उनकी, लेकिन मर जाने पर हम हजारों साल तक पूजा करेंगे। यह गिल्टी कांशस, यह अपराधी चित्त का हिस्सा है यह पूजा।

और फिर इस पूजा

आपको हम सुनते थे, अब तीसरी बार आए हैं यहां। तो दो बात का हमारे पर असर रहा कि आप एक तो बुद्धिनिष्ठा की हिमायत करते हैं, विचारनिष्ठा, बुद्धिनिष्ठा की बात करते हैं आप। एक तो यह कि जब भी आप कुछ अपनी बात कहते हैं तो साथ ही यह भी कहते हैं कि मेरी बात को आप मान मत लेना जब तक कि वह आपको जंच न जाए। आप यह भी कहते हैं कि जैसी मेरी दृष्टि है, वह मैं आपको कह रहा हूं, इस पर आप विचार करना, और विचार करके अगर आपको ठीक लगे, तभी मानना।

लेकिन साथ ही साथ—इन दि सेम ब्रेथ—आप यह भी कहते हैं कि इस देश में पचास साल तक डिक्टेटरशिप होनी चाहिए, अनिवार्य संतति-नियमन होना चाहिए।

तो इन दोनों बातों में तालमेल हम नहीं बिठा पाते। तो आप इन दोनों बातों में कैसे तालमेल देखते हैं, यह समझने की हमारी उत्कंठा है।

मैं तो इतना हैरान हूं कि जो खबरें मेरे बाबत पहुंचाई जाती हैं, वे इतनी तोड़-मरोड़ कर, इतनी बिगाड़ कर पहुंचाई जाती हैं कि जब मुझे आप कहते हैं तो मुझे हैरानी हो जाती है!

वह जो पत्रकारों की जिस कांफ्रेंस में यह बात हुई, उनसे सिर्फ मजाक में मैंने यह कहा कि इसको तुम लोकतंत्र कह रहे हो? इस लोकतंत्र से तो बेहतर हो कि पचास साल के लिए कोई तानाशाह बैठ जाए। यह सिर्फ मजाक में कहा। और उनकी बेवकूफी की सीमा नहीं है कि इसको उन्होंने, कि मैं पचास साल के लिए देश में तानाशाही चाहता हूं।

नहीं, आपने राजकोट में भी कहा कि...।

बड़ा मजा यह है, मैं जो कह रहा हूं...ऐसा ही उनमें से किसी ने कहा कि आप जो बातें कहते हैं, इसमें तो कोई आपको गोली मार दे तो क्या हो? तो मैंने सिर्फ मजाक में कहा, यह तो फिर बड़ा ही अच्छा हो जाएगा, गांधी से मुकाबला हो जाएगा। उन्होंने सबने छाप दिया कि मैं गांधी से मुकाबला करना चाहता हूं। अब इन सबके लिए क्या किया जा सकता है?

ह्यूमर को समझने की क्षमता भी हमारी खोती चली जा रही है, हम मजाक भी नहीं समझ सकते। और फिर आप सब लोग हैं कि उनकी खबर पर आप सब खंडन-वंडन भी शुरू कर देते हैं।

मैं नहीं!

मैं आपके लिए नहीं कह रहा हूं। मेरा मतलब यह है...।

नहीं, आपने राजकोट में जो कहा था...।

राजकोट में जो कहा हूं वह तो यह कहा हूं, मेरा कहना यह है कि जो लोकतंत्र आर्थिक रूप से समानता नहीं लाता, वह सिर्फ धोखे का लोकतंत्र है, वह लोकतंत्र नहीं है। लोकतंत्र सिर्फ राजनैतिक समानता की बात करे तो वह लोकतंत्र बिलकुल धोखे का है। क्योंकि राजनैतिक समानता अंततः आर्थिक समानता पर निर्भर होती है, और अगर आर्थिक असमानता है तो राजनैतिक समानता का कोई मतलब नहीं होता। वह जिनके पास अर्थ है उन्हीं के लिए मतलब होता है, बाकी के लिए कोई अर्थ नहीं होता।

तो वहां तो मैं यह कहा हूं कि अगर सच्चा लोकतंत्र लाना है देश में, अगर सच में ही डेमोक्रेसी पैदा करनी है, तो यह जो थोथी डेमोक्रेसी जिसको तुम

समझे चले जा रहे हो, यह डेमोक्रेसी काम नहीं करेगी। आर्थिक समानता लाए बिना कोई डेमोक्रेसी खड़ी नहीं हो सकती! और आर्थिक समानता लाने के लिए अगर तुम सिर्फ डेमोक्रेटिक बातें करते चले जाते हो, तो ये डेमोक्रेसी की बातें आर्थिक समानता लाने में बाधा बनती मालूम पड़ती हैं। जो मैंने वहां कहा वह सिर्फ इतना कहा, यह जो सारी दुनिया में डेमोक्रेसी की जितनी बात चलती है—डेमोक्रेसी सोशलिस्टिक भी हो सकती है और कैपिटलिस्टिक भी हो सकती है।

लेकिन कोई मुल्क में सोशलिस्ट या कम्युनिस्ट या...।

वह मैं आपसे अलग बात कर लूंगा, पहले मैं पूरी साफ-साफ करूं। मुझे अंदाज है आपका कि क्या आपसे मुझे बात करनी पड़ेगी।

लेकिन आपका जो स्टेटमेंट है, वह तो है ही, वह आप डिनाई नहीं कर सकते।

न-न, डिनाई तो मैं कब करूंगा, डिनाई का तो सवाल ही नहीं है। डिनाई का तो सवाल ही नहीं है।

राजकोट में आपने अभी कहा भी कि मेरी थीसिस क्या है, तो कम्युनिज्म प्लस गॉड।

हां-हां, बिलकुल कहा हूं न, इसमें कौन मना कर रहा है।

कम्युनिज्म है तो तानाशाही है ही।

न, यह जरूरी नहीं है। क्योंकि कम्युनिज्म की क्या परिभाषा करूंगा, यह मुझ पर निर्भर है। कोई मार्क्स ने ठेका नहीं ले लिया है कम्युनिज्म की परिभाषा का। यह तो कोई सवाल नहीं है कि कम्युनिज्म मैंने कह दिया तो कोई ठेका है मार्क्स का। यह सवाल नहीं है।

कंपल्सरी फेमिली प्लानिंग को आप मानते हैं?

बिलकुल कंपल्सरी मानता हूं।

तो फिर विचारनिष्ठा कहां हुई?

मेरी बात समझ लें थोड़ी सी। मैं कंपल्सरी मानता हूं, उसका मतलब यह नहीं कि मैं कंपल्सरी कर दूंगा। कंपल्सरी का मतलब कुल इतना है कि मैं आपके विचार को अपील करता हूं कि यह कंपल्सरी हो जाने जैसी चीज है। और अगर मुल्क की मेजारिटी तय करती है तो कंपल्सरी होगा। कंपल्सरी का मतलब कोई माइनारिटी थोड़े ही मुल्क के ऊपर तय कर देगी।

लेकिन मेरा कहना यह है कि अगर एक आदमी भी इनकार करता है मुल्क में, तो भी कंपल्सरी है वह। अगर हिंदुस्तान के चालीस करोड़ लोगों में एक आदमी भी कहता है कि मैं संतति-नियमन मानने को तैयार नहीं हूं और चालीस करोड़ लोग कहते हैं कि मानना पड़ेगा, तो भी कंपल्सरी है।

आप अभी कंपल्सरी एजुकेशन दे रहे हैं बच्चों को, और यह नहीं कहते कि यह तानाशाही हो गई। हम कहते हैं कि हर बच्चे को शिक्षा लेनी पड़ेगी; हम किसी बच्चे को अशिक्षित नहीं छोड़ेंगे। और अगर मान लीजिए दस बच्चों के मां-बाप यह कहते हैं कि हम अपने बच्चों को अशिक्षित रखना चाहते हैं। यह तो डेमोक्रेसी की हत्या हो रही है! क्योंकि हम अपने बच्चों को शिक्षा नहीं देना चाहते। और आप कैसी डेमोक्रेसी की बात करते हैं? आप कहते हैं, कंपल्सरी एजुकेशन!

अगर कंपल्सरी एजुकेशन हो सकता है और डेमोक्रेसी में कोई हर्जा नहीं होता, तो कंपल्सरी बर्थ-कंट्रोल क्यों नहीं हो सकता? यह तो सवाल लोकमानस को तैयार करने का है।

तो कांशियंस है जो...।

हां, कांशियंस को जगाने की बात है। तो मैं यह थोड़े ही कह रहा हूं। मैं यह नहीं कह रहा हूं, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि मैं कहता हूं इसलिए कंपल्सरी हो जाए। मैं इसलिए कहता हूं कि मुझे यह बात कंपल्सरी होने जैसी लगती है। जैसे कंपल्सरी एजुकेशन मुझे लगती है कि कंपल्सरी होनी चाहिए। किसी बाप को यह हक नहीं हो सकता है कि वह किसी बच्चे को अशिक्षित रखने का दावा करे। और करेगा तो मुल्क इसकी फिकर करेगा कि यह नहीं चलेगा।

तो फिर आप यह नहीं कहते कि मेरी बात अगर आपको समझ में आए तो ही मानें?

वही कह रहा हूं न मैं तो, मैं यह तो नहीं कह रहा...।

कंपल्सरी यानी कि माननी ही पड़ेगी।

आप मेरी बात ही नहीं समझ पा रहे न, मेरी बात ही नहीं समझ पा रहे। अगर एक आदमी इस गांव में हैजा के कीटाणु फैलाए, और हम कहें कि

कंपल्सरी रुकावट रहेगी इस बात पर कि कोई आदमी बीमारी के कीटाणु नहीं फैला सकता, तो आप कहना डेमोक्रेसी की हत्या हो रही है! एक आदमी कहे कि हम चोरी करेंगे। कंपल्सरी चोरी बंद है मुल्क में, हत्या करना कंपल्सरी बंद है। हत्या करना आपकी स्वेच्छा पर निर्भर नहीं है कि आपका दिल होगा तो हत्या करेंगे, नहीं होगा तो नहीं करेंगे। तो अगर मैं यह कहूं कि हत्या करना कंपल्सरी बंद होना चाहिए...।

वह डेमोक्रेटिक तरीके से यह तय होना चाहिए।

मेरा तो सारा डेमोक्रेटिक तरीका है। मेरे पास कोई बंदूक-तलवार है! आपको समझा सकता हूं, इससे ज्यादा और क्या कर सकता हूं!

नहीं, वह स्टेटमेंट आपका जब आपने बेनीवोलेंट डिक्टेटरशिप की बात कही, उसके साथ ही आया है यह प्रश्न।

हां-हां, बिलकुल। वह सारा मजा यह है, हम शब्दों को तो...शब्दों के साथ तो हमारे प्राण इस तरह जुड़े हुए हैं कि शब्द...बेनीवोलेंट डिक्टेटरशिप कहने का मतलब होता है कि डिक्टेटरशिप गई और कम्युनिज्म के साथ गॉड जोड़ने का मतलब होता है कि कम्युनिज्म गया।
आप इसको थोड़ा समझने की कोशिश करें! आपकी कोई भी हुकूमत, किसी भी तरह की हुकूमत अंततः डिक्टेटरशिप है। क्योंकि अंततः वह कंपल्शन है किसी न किसी तरह से। किसी भी तरह की हुकूमत, स्टेट जहां तक है वहां तक डिक्टेटरशिप है।

कोअर्शन रहेगा।

हां, कोअर्शन रहेगा। तो स्टेट एज सच कोअर्शन है। तो स्टेट तो किसी भी तरह की हो वह कोअर्शन है। अब सवाल यह है कि वह ज्यादा से ज्यादा बेनीवोलेंट हो। इतना ही हम कर सकते हैं स्टेट के रहते हुए। नहीं तो पूरी स्टेट जानी चाहिए। ठीक डेमोक्रेसी का मतलब तो होगा नो स्टेट। और इसलिए जब तक स्टेट है तब तक सब स्टेट बेनीवोलेंट डिक्टेटरशिप है। वह किस मात्रा में बेनीवोलेंट है, यह सवाल है। यानी इसमें मात्रा में भेद होंगे कि एक बिलकुल ही डिक्टेटोरियल है, कोई बेनीवोलेंट नहीं है वहां; एक बहुत बेनीवोलेंस है, डिक्टेटोरियल नहीं है वह। लेकिन मेरा तो...।

क्वालिटेटिव चेंज हो जाता है तो परिभाषा भी बदल जाती है।

बदलेगी न, बिलकुल बदलेगी।

आप परिभाषा वही रखते हैं और अर्थ बदलते हैं।

मैं नहीं बदलता, परिभाषा...।

जैसे आपने अभी कहा, पहले ही कहा कि मेरा मानना यह है कि कम्युनिस्ट प्लस ईश्वर, ऐसा मैं मानता हूं। लेकिन फिर कहा कि इस हिसाब से यह तो नहीं है कि मार्क्सवाद को मैंने माना। कम्युनिस्ट का तो मैं अपने दिल से अर्थ करता हूं।

हां-हां, मैं अपने दिल से ही करूंगा न।

आप करते हैं, ठीक है, आपके दिल से। लेकिन लोग तो कम्युनिस्ट का जो अर्थ है वह तो जो मार्क्सवाद से होकर अब तक निकला है, वही उनके मन में सोच-विचार है। आपके मन को तो वे समझ नहीं सकते हैं।

देखिए, थोड़ा समझिए। लोगों की समझ...थोड़ा समझिए...कम्युनिज्म के पच्चीस रूप हैं कम से कम। साइमन का भी कम्युनिज्म है, कुरीये का भी है, ओवेन का भी है, मार्क्स का भी है, बर्नार्ड शा का भी है, सारी दुनिया में पच्चीस रूप हैं। और मेरा भी कम्युनिज्म हो सकता है और आपका भी हो सकता है। कम्युनिज्म का कोई ठेका नहीं है किसी का।

नहीं, ठेका का सवाल नहीं है। लेकिन सामान्य रूप से, सामान्य सोच से लोग जो समझ सकते हैं, वही तो लोग पकड़ते हैं न। स्पष्टता नहीं होती है तो लोग वही समझेंगे आपकी बात से।

मैं जो बातें कह रहा हूं, मैं तो चाहता हूं कि स्पष्टता न हो, क्वेश्चनिंग पैदा हो, इंक्वायरी हो, मुझसे जवाब मांगे जाएं, मैं जवाब देने को तैयार हूं। मैं तो मेरा पूरा काम यह है कि पहले प्रश्न पैदा कर जाता हूं, फिर जवाब देने आना पड़ता है।

नहीं, जैसा आपका कम्युनिज्म हो सकता है वैसा गांधी और विनोबा का भी हो सकता है। आज सुबह उसको आपने पूंजीवाद कहा।

कौन मना करता है। मैं उसको पूंजीवाद कहूंगा, क्योंकि मैं जिसे कम्युनिज्म कहता हूं, अगर वह उसके विपरीत पड़ता है तो मैं उसे पूंजीवाद कहूंगा। वह गांधी-विनोबा का कम्युनिज्म होगा, इससे मुझे क्या लेना-देना! मेरा कम्युनिज्म आपको पूंजीवाद मालूम पड़ सकता है, इसमें क्या झगड़े की बात है! यह तो

हमारे विचार करने की बात हुई। मैं जो भी कह रहा हूं, वे इसको क्या नाम देते हैं, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता।

उसके भाव होते हैं।

हां, नाम देने से कुछ फर्क नहीं पड़ता।

सवाल, आप जो नाम देते हैं, इससे ही पैदा होता है। नहीं तो मैं समझ सकता हूं कि आपका एक खयाल है कि समाज कैसा होना चाहिए। और वह कम्युनिज्म का एक खयाल आया है चलता हुआ मार्क्स से लेकर स्टैलिन तक का आया है, माओ तक का आया हुआ है, और टुब्ली आटि का भी आया हुआ है। तो फिर अभी जब हम यही शब्द इस्तेमाल करते हैं, तो तकलीफ होती है।

शब्द का तो भोगीलाल भाई ऐसा मामला है, शब्द का ऐसा मामला है कि शब्द हम हमेशा बासे उपयोग करते हैं, सब! सब शब्द! ईश्वर शब्द का भी उपयोग करिए तो हजार लोग उपयोग कर चुके हैं, हजार तरह से उपयोग कर सकते हैं। और हजार तरह से उपयोग किया गया है। और आज जब आप उसका उपयोग करिएगा तो उसके पीछे हजारों डेफिनीशंस खड़ी हुई हैं। आप एक भी शब्द का ऐसा उपयोग नहीं कर सकते जो कि हजार तरह से उपयोग नहीं किया जा चुका है। शब्द तो हमेशा बासा है।

फिर भी जब आप कोई दूसरी चीज आगे रखना चाहते हैं, कोई नया आइडिया है आपके पास...।

हां, तो डिफाइन हमें करना पड़ेगा।

तो आपको यह डिफाइन करना चाहिए कि जिससे लोगों के दिमाग में पहले यह हो जाए कि यह जो पुरानी चीज है, यह बात यह नहीं है। यह पुराना कम्युनिज्म नहीं है, क्लास स्ट्रगल का कम्युनिज्म नहीं है, मैटीरियलिस्टिक इंटरप्रिटेशन का कम्युनिज्म नहीं है।

मैं समझा आपकी बात। मैं वही कर रहा हूं। मेरे साथ कठिनाई तो यह है न कि मेरे पास न तो कोई स्टाफ है कि जो सारा हिसाब-किताब रखता हो। अकेला आदमी हूं। जो बोलता हूं उससे क्वेश्चनिंग खड़ी होती है, तो डिफाइन करता हूं। डेफिनीशन से क्वेश्चनिंग खड़ी होती है, तो उसको डिफाइन करता हूं। चलेगा दो-चार, दस साल बातचीत करने के बाद साफ हो सकेगा आपको कि मैं क्या कह रहा हूं। इससे जल्दी साफ नहीं हो सकता।

शायद प्रोसेस थोड़ा सरल हो सकता है। जैसे आपके ही...मैंने तो बहुत नहीं सुना, मैं सुबह भी नहीं आया और पहले भी एकाध दफा सुना आपको। आज और कल मैंने जो सुना, तो मुझे यह खयाल आया कि आप, जो अनिष्ट है समाज में, जो दंभ चल रहा है, जो ऊपर-ऊपर का एक रूप है, उसके ऊपर आप प्रहार करते हैं। वह ठीक ही है। इसमें तो कोई बात यह नहीं है कि जो चलता है वही ठीक है, करके कोई बात करे, ऐसा तो हम नहीं चाहते हैं। और यह चाहते हैं कि जहां दंभ पड़ा हुआ है उसको खुला करना है, इसके लिए कुछ ज्यादा जोर करके भी बोलना पड़ता है। फिर भी क्या होता है कि आप जब एक ही चीज रखते हैं—जैसा आज आपने आखिर में कहा कि कल मैं दूसरी बात बताऊंगा। लेकिन कल तो आप क्या बताएंगे यह तो मैं नहीं जानता। लेकिन मेरे खयाल में जो कल सुना और आज सुना इससे एक सवाल पैदा हुआ, यह हुआ कि आप एक बात कहे कि सत्य जो है, प्रेम है, ब्रह्मचर्य है, उनका दो रूप हो सकता हैः एक दंभ का भी हो सकता है और एक सत्य का भी हो सकता है। सच्चा ब्रह्मचर्य भी हो सकता है, सच्चा प्रेम भी हो सकता है, सच्ची अहिंसा भी हो सकती है और दंभी और दिखावे की भी दूसरी हो सकती है। लेकिन आपका जो बोलने का तरीका यह रहता है कि बहुत से मासेस के लिए जो आज आते हैं और ताली बजाते हैं, वे तो बिलकुल ताली बजाते हैं, वे यह नहीं पकड़ते हैं कि आप क्या चाहते हैं। आप जब कटाक्ष करते हैं, तो वे खुश हो जाते हैं, वह प्लेइंग दि गैलरी जैसा हो जाता है। और इसलिए जो सीरियसनेस आपकी है, वह आती नहीं है। और फिर करीब-करीब यह इस तरीके से चलता है कि जैसे कि आप पूरे-पूरे सत्य को, अहिंसा को, ब्रह्मचर्य को, जितने बड़े आइडियल्स हैं उन सबको आप इनकार कर रहे हैं। और आखिर में लोगों को यह लगता है कि यह तो बड़ा क्रांतिकारी आया है। तो इस तरह से एक जो इंप्रेशन पैदा होती है और इससे जो...सोच कर तो नहीं आते, ज्यादा लोग तो ऐसे ही आते हैं।

आप अपनी बात करिए! कौन सोच कर आता है या नहीं आता है, यह आप हिसाब मत लगाइए। क्योंकि वह कौन झूठी ताली बजा रहा है, कौन खुश होकर बजा रहा है, यह आप हिसाब मत लगाइए। वह तो पता लगाना मुश्किल है। वह तो बिलकुल मुश्किल है कि कौन आदमी क्या कर रहा है। वह तो बहुत मुश्किल है मामला। आप बस अपनी बात कीजिए!

मुझे यह लगता है कि आप जब यह कहते हैं, तो यह चीज कल की बात जो आपने बताई कि बाहर का जो रहता है, जो हम बताने के लिए जो करते हैं और जो अंदर की बात है—अंदर चले जाओ, अंदर देखो, अंदर का क्या है, वह अंदर छिपा कर मत रखो जो आप बात कर रहे हैं। तो यह चीज होती है कि जो संत हैं, जो भक्त हो गए हैं, ऋषि हो गए हैं, धर्मात्मा जो हो गए हैं, उन सबको एक साथ हम नहीं देख सकते हैं। इसमें भी अच्छे-बुरे रहेंगे, कोई क्रोधी होगा और कोई नहीं भी क्रोधी होगा, और कोई ऐसे भी होंगे जो सचमुच अपने जीवन

को परिवर्तन करने के लिए प्रयत्न, कोशिश कर रहे हैं। तो यह दोनों की शुभ-अशुभ जो चलती है, जिसको हम कहें कि एक आसुरीय और दैवीय जो चलती है प्रकृति, वह दोनों चलती हैं। आज आप देखते हैं और मैं देखता हूं और बहुत लोग देखते हैं कि आसुरीय ज्यादा है, अशुभ ज्यादा है...।

हमेशा से ज्यादा है, आज ज्यादा नहीं हो गई है।

...तो प्रहार करते हैं। लेकिन दूसरी चीज जो है वह सच है, और आज...।

यह हमेशा से ज्यादा है, आज ज्यादा नहीं हो गई है।

हमेशा से आज ज्यादा है, आप कहते हैं।

न, न, न। यह हमेशा से ही ज्यादा है, हमेशा से ही ज्यादा है। और आज शायद कम है।

सतयुग में भी होगा।

सतयुग-वतयुग कभी रहा नहीं है। सतयुग वगैरह कभी रहा नहीं है। और जिन ऋषि-मुनियों की आप बहुत बातें करते हैं, जिन ऋषि-मुनियों की आप बहुत बातें करते हैं उनमें से सौ में से निन्यानबे परसेंट सरासर धोखा है।

वह छोड़िए कितने परसेंट...।

मेरा मतलब यह है कहने का, मेरा मतलब यह है कहने का कि ऋषि-मुनि का भी ढांचा तैयार है। और ढांचे में जो फिट हो जाता है, सो ऋषि-मुनि हो जाता है। और कोई ऋषि जैन के ढांचे में ऋषि मालूम न पड़ेगा और वही हिंदू के ढांचे का ऋषि जैन के ढांचे में ऋषि नहीं मालूम पड़ेगा। कृष्ण को जैन नरक भेज देते हैं कि यह आदमी हिंसा करवाता है, महायुद्ध करवाता है महाभारत का। और हिंदू उसको भगवान, परम अवतार...।

वह छोटापन...।

मेरा मतलब नहीं समझ रहे हैं आप। मेरा कहने का मतलब यह है कि किसको आप ऋषि कहते हैं, किसको मुनि कहते हैं, यह आपकी परिभाषाओं की बातें हैं, इनमें कोई बहुत सार नहीं है, इनमें कोई बहुत अर्थ नहीं है। मेरा जोर इस बात पर है कि अब तक ऋषि-मुनि को भी तौलने का आपका ढंग बाहर से ही है। और सच बात तो यह है कि भीतर से तो तौला नहीं जा सकता। और

इसलिए मेरी दृष्टि यह है कि जो ऋषि-मुनि तुल जाते हैं आपकी परिभाषाओं में, वे अक्सर इसीलिए तुल जाते हैं कि नहीं हैं। अगर आदमी हो, तो आपकी तौल में आना बहुत मुश्किल है उसका।

वह कैसे आप...।

मेरा कहना यह है, मेरा कहना यह है कि हमारी जो सोसाइटी है, जो पूरी की पूरी धारा है हमारी तौलने की, हमारे तो क्राइटेरियन बंधे हुए हैं। और क्राइटेरियन में जो बैठ जाता है, सो ऋषि हो जाता है हमारे लिए। और मेरी अपनी समझ यह है कि जो भी क्राइटेरियन में आपके बैठने को राजी होता है, आपके क्राइटेरियन में बैठने को जो राजी होता है या आपके क्राइटेरियन में बैठने की चेष्टा करता है, उस आदमी के पास आथेंटिक व्यक्तित्व ही नहीं है। नहीं तो आपके क्राइटेरियन में बैठेगा नहीं वह। और अगर बैठेगा तो मरने के हजार, दो हजार साल लग जाएंगे, तब आपके क्राइटेरियन में बैठेगा, जब तक कि आप उसके योग्य क्राइटेरियन खड़ा कर लेंगे।

जैसे जीसस अगर जिंदा है तो ऋषि मालूम नहीं पड़ेगा; आवारा मालूम पड़ेगा जिंदा में तो। सुकरात जिंदा में आवारा और शरारती मालूम पड़ेगा। और लगेगा कि चरित्र बिगाड़ रहा है, लोगों को खराब कर रहा है। मरने के बाद ऋषि-मुनि बन पाएगा।

मरने के बाद वह समझ में आया। लोगों को समझ में आया।

समझ-वमझ में नहीं आया। समझ में आ जाता तब तो दुनिया अब तक सुकरात हो गई होती। समझ में नहीं आया है, समझ में कुछ नहीं आया है। मरे हुए आदमी पर ढांचा बिठालने में आपको सुविधा है।

वह आपका अरेंज है, मैं यह समझ गया।

मैं आपको यह कहता हूं कि क्या समझ गए आप सुकरात को? समाज क्या समझ गया सुकरात को? मैं आपसे यह कहता हूं, सुकरात अभी भी पैदा हो तो वही अड़चन आप खड़ी करेंगे जो उस दिन खड़ी की; जरा भी फर्क नहीं पड़ेगा! मैं आपसे यह पूछता हूं कि सुकरात—समझ लीजिए, आपको उदाहरण के लिए कहता हूं—सुकरात अभी खड़ा हो जाए, तो सोसाइटी एग्जेक्ट वही अड़चन खड़ी करेगी जो उस दिन खड़ी की उसने। उसमें जरा भी फर्क नहीं पड़ेगा।

यह बात ठीक है। इसमें आप क्या करेंगे कि जो आथेंटिक एक्झिस्टेंस है, जो सच्चा जो अस्तित्व आदमी का है, उसकी मूल्य नहीं होती है। जो झूठा या

ऊपर से लादा हुआ या ट्रेडीशन से चला हुआ है, उसकी आप आलोचना करिए।

वही मैं कह रहा हूं। वही जो मैं कह रहा हूं और जिस ढंग से मैं कह रहा हूं...।

लेकिन आप यह नहीं कहेंगे कि वह सुकरात दंभी है। आप यह नहीं कहेंगे कि यीशु दंभी है।

इसको थोड़ा समझिए, इसको थोड़ा समझिए। दंभी होता तो आपको सूली-वूली लगाने की जरूरत न पड़ती। आप तो ऋषि-मुनि मान कर पूजा शुरू कर देते, दंभी होता तो। वह तो आसान है। लेकिन जिस दिन से आपने पूजा शुरू की है, उस दिन से जीसस की आपने दूसरी शक्ल बना ली जो उसकी कभी थी नहीं। उसकी शक्ल को तो आप सूली ही लगाते। जिस शक्ल को आप पूज रहे हैं वह बिलकुल झूठी और आपकी खड़ी की हुई है। यानी मेरा मतलब समझ रहे हैं न!

मेरा आप मतलब समझ रहे हैं? मेरी आप बात समझ रहे हैं? मैं यह कह रहा हूं कि जीसस जैसा आदमी था, उसकी तो कभी आपने पूजा की नहीं। और जीसस अभी खड़ा हो जाए तो वह जीसस का जो तगमा लगाए घूम रहा है वह भी उसकी पूजा करने को अभी भी राजी नहीं है।

एक बहुत मजेदार घटना! दोस्तोवस्की का एक उपन्यास है—ब्रदर्स कर्माज़ोव। उसमें एक बहुत अदभुत घटना उसने कल्पित की है कि जीसस अठारह सौ वर्ष बाद वापस लौटते हैं—यह देखने कि अब तो सारी दुनिया में मेरे चर्च बन गए हैं और सारे लोग मेरी पूजा कर रहे हैं, अब तो मेरा स्वागत होगा! अब तो लोग मुझे रिकग्नाइज कर लेंगे कि मैं क्या हूं! तो वे जेरुसलम में, एक दिन सुबह चर्च से लोग आ रहे हैं, रविवार का दिन है, और वे एक झाड़ के नीचे खड़े हो गए। वे चर्च के लोग निकले तो उन्होंने कहा कि अरे यह कौन आदमी बन-ठन कर बिलकुल जीसस बना हुआ खड़ा है? कौन बदमाश है? कौन शरारती आ गया है? कुछ भीड़ आ गई पास, उन्होंने कहा कि तुम कौन हो भाई? बिलकुल ऐसे बन कर खड़े हो कि बिलकुल जीसस मालूम पड़ रहे हो!

उन्होंने कहा कि मैं जीसस हूं! तब तो उन लोगों ने कहा कि पक्का ठग मालूम पड़ता है। क्योंकि जीसस तो एक दफा हो चुका, अब दुबारा नहीं हो सकता। तो जीसस ने कहा, अरे तुम मेरी ही पूजा करके चर्च से लौटते हो और मुझको नहीं पहचाने? खैर, तुम नहीं पहचाने, तुम्हारे चर्च का पादरी तो आता होगा। आर्च प्रीस्ट है सबसे बड़ा, वह आता होगा।

वह आर्च प्रीस्ट आया तो लोगों ने उसके लिए रास्ता छोड़ दिया। उस आर्च प्रीस्ट ने उसे देखा और दो लोगों से कहा कि इस बदमाश को पकड़ कर नीचे उतारो। यह हमारे जीसस की नकल कर रहा है। जीसस ने कहा कि मैं जीसस हूं,

नकल नहीं कह रहा हूं! तुम मुझे पहचानते नहीं? कितनी तुमने प्रार्थना-पूजा की, मैं आ गया हूं।

उसने कहा, बदमाश, नीचे उतर! उसको ले जाकर एक कोठरी में बंद कर दिया।

रात दो बजे वह पादरी आया दरवाजा खोल कर, पैर पकड़ लिए और कहा कि मैं पहचान गया था। लेकिन तुम मुर्दा ही अच्छे लगते हो, तुम जिंदा बहुत खतरनाक हो, बहुत डिस्टर्बिंग हो। तुम्हारी कोई जरूरत नहीं। हमने तुम्हारा सब काम अच्छी तरह जमा रखा है, सब धंधा बिलकुल ठीक से चल रहा है। तुम्हारे वापस लौटने की कोई जरूरत नहीं है। और बाजार में हम तुम्हें नहीं पहचान सकते। और अगर तुमने गड़बड़ की तो हमें वही करना पड़ेगा जो यहूदी पादरियों को तुम्हारे साथ करना पड़ा था। हम हालांकि तुम्हारे पादरी हैं, लेकिन हमको करना वही पड़ेगा।

मैं जो कह रहा हूं, मैं जो कह रहा हूं वह यह कि जीसस की जिस शक्ल को आप पूज रहे हैं...।

आपकी बात मैं समझता हूं। जो इस्टैब्लिशमेंट है, वह आप कहते हैं वही करेगी और करती थी और हमेशा करेगी। लेकिन हम जो लोग हैं वह इस्टैब्लिशमेंट की एक ही चीज नहीं देखते हैं। दो चीज होती हैंः इस्टैब्लिशमेंट के सामने लड़ने वाले, इससे बाहर रहने वाले, आउटसाइडर जिसको आप भी कहेंगे। वे आउटसाइडर भी रहते हैं और इससे एक-एक आदमी में कोई ऐसी चीज रहती है कि जब वह भी चाहता है कि इस्टैब्लिशमेंट जो है वह बुरी है, इसके बाहर रह कर कुछ कर सकते हैं। करना चाहिए। आपका पूरा एक जो अटैक रहता है वह इस्टैब्लिशमेंट के ऊपर नहीं रहता है, पूरा जितना आज तक का...।

मेरा सब पर है अटैक। वह गलत न समझें आप। मेरा सब पर है। मेरा कहना यह है, मेरी बात समझ लें, मेरा अटैक सब पर है। और जो मेरे अटैक से बच जाता है—दैट व्हिच रिमेंस—उसको मैं कहता हूं वह सच है—क्योंकि उस पर अटैक किया ही नहीं जा सकता। मेरा आप मतलब समझ रहे हैं न? यानी जिस पर भी अटैक किया जाता है और किया जा सकता है, उस पर मेरा अटैक है। जो शेष रह जाता है—कुछ जरूर है जिस पर कोई अटैक नहीं हो सकता, जो सच है। उसको आपको खोजना पड़ेगा।

मेरी तो पूरी प्रोसेस निगेटिव है। मैं तो कहता हूं—यह नहीं है, यह नहीं है; नेति-नेति है; कि यह भी नहीं है, यह भी नहीं है। लेकिन फिर मेरा कहना है कि जो शेष रह जाता है—और शेष बहुत रह जाता है—जो शेष रह जाता है वही आथेंटिक है। और मेरा कहना यह है कि...।

लेकिन यह आप कहते नहीं हैं, आप छोड़ देते हैं।

न, न, न। मैं कहूंगा भी नहीं। मैं कहूंगा भी नहीं, मैं छोड़ ही दूंगा। कुछ आपके लिए भी छोड़ना चाहिए न। नहीं तो फिर बड़ा मुश्किल हो जाएगा, अगर मैं ही मैं पूरा कह दूं। वह जो जरूरी है वह मैं जरूर छोड़ देता हूं। और छोड़ना अत्यंत आवश्यक है। क्योंकि जैसे ही उसको पाजिटिव कहा, इस्टैब्लिशमेंट शुरू हुआ। यह जो मामला है सारा का सारा, जब तक मैं यह कहता हूं कि यह गलत है, तब तक इस्टैब्लिशमेंट नहीं होता। और जब मैं कहता हूं, यह सही है, और इस्टैब्लिशमेंट शुरू होता है। सारा इस्टैब्लिशमेंट पाजिटिव के सेंटर पर खड़ा होता है। सारा इंस्टीटयूशन, आर्गनाइजेशन, संस्था, संप्रदाय पाजिटिव के ऊपर खड़ा होता है। और मेरी अपनी दृष्टि यह है कि आदमी में जो क्रांति आती है, वह पाजिटिव से कभी नहीं आती, वह हमेशा वाया निगेटिव से आती है। तो मेरी तो सारी प्रोसेस निगेटिव है।

पाजिटिव में परिवर्तित होती है।

पाजिटिव शेष रह जाता है। पाजिटिव में परिवर्तित-वरिवर्तित नहीं होती है। वह तो जो गलत है उसको हम काट डालते हैं और जो नहीं कट सकता वह शेष रह जाता है। जैसे हमने सोने को डाल दिया आग में। तो जो कचरा है वह जल जाता है, जो नहीं जलता वह सोना है। वह बच जाता है।

तो क्या आप खंडन ही करते रहेंगे?

बिलकुल खंडन करता रहूंगा। बिलकुल खंडन करता रहूंगा।

बेनीवोलेंट डिक्टेटर को आपने जो पाजिटिव इस्टैब्लिश किया...।

जरा भी नहीं किया, जरा भी नहीं किया। मेरी जो सारी बातचीत है, मेरी बातचीत में क्या तकलीफ होती है, वह तकलीफ क्या होती है कि जब भी मैं खंडन कर रहा हूं, तो आखिर शब्दों का ही उपयोग करूंगा। और हम सबके माइंड पाजिटिव के साथ इस बुरी तरह बंधे हैं कि फौरन पाजिटिव को निकाल लेते हैं, निगेटिव की फिकर छोड़ देते हैं। वे पाजिटिव को फौरन निकाल लेते हैं। एकदम हमारा माइंड जो है न, माइंड की आम वर्किंग जो है वह पाजिटिव के लिए है। और मेरा कहना यह है कि वही माइंड ऊपर जाता है जिसकी वर्किंग निगेटिव हो जाती है।

नहीं, नॉन-कन्फरमिस्ट एटीटयूड पाजिटिव रहता है।

वह तो रहेगा ही! पाजिटिव जो है न, पाजिटिव जो है वह तो जो रिमेनिंग है वह हमेशा पाजिटिव है। तो आपको जो जरूरत है वह जरूरत है कि आप कितने माइंड को निगेटिव बना सकते हैं। माइंड का कितना निगेशन आप कर सकते हैं, ताकि वही रह जाए दैट व्हिच कैन नाट बी निगेटेड। दैट इज़ पाजिटिव, दैट व्हिच कैन नाट बी निगेटेड। और फर्क क्या है? हम समझते हैं कि पाजिटिव निगेटिव का विपरीत है। निगेटिव पाजिटिव का विपरीत नहीं है। पाजिटिव जो है वह निगेशन का विपरीत नहीं है, नाट निगेशन ऑफ दि निगेशन। पाजिटिव का वह मतलब नहीं होता। पाजिटिव का मतलब है कि दैट व्हिच रिमेंस आफ्टर दि निगेशन। वह विपरीत नहीं है। मेरा आप मतलब समझ रहे हैं न?

यानी कंप्लीट निगेशन हो ही नहीं सकता।

हां, कंप्लीट निगेशन कभी नहीं हो सकता, कभी नहीं हो सकता। लेकिन जो निगेशन हो जाएगा तो जो शेष रह जाएगा वह पाजिटिव है। और इसलिए दो रास्ते हैं।

वह शेष का भी कुछ अंदाजा लोगों को अपने आप मिलता है।

अंदाजा बिलकुल मिलता है, बिलकुल मिलता है।

और आपके जैसे जो रहते हैं वे भी कुछ उसको बता सकते हैं।

वे पाजिटिव इशारा नहीं कर सकते।

इशारा भी नहीं कर सकते?

न-न, वे सब निगेटिव इशारा करेंगे। वे कहेंगे, नाट दिस, नाट दैट। और तब जो शेष रह जाएगा—इस इशारे में आप चलेंगे न साथ, तो शेष रह जाएगा कुछ—उस शेष की तरफ आपको ही इशारा होगा। वह इशारा कोई नहीं करेगा। क्योंकि जैसे ही हमने इशारा किया, वह फाल्स हुआ, वह फाल्स हुआ, क्लिगिंग शुरू हुई।

हमारा मन चाहता है कि इशारा कोई जल्दी से कर दे। वह चाहता है कि निगेटिव बात मत करो, आप यह बताओ कि पाजिटिव क्या है! क्योंकि उसको हम पकड़ लें और निश्चिंत हो जाएं।

दो एक्सट्रीम्स हैं। एक स्पून फीडिंग करते हैं एजुकेशन में, एक-एक चीज बताते हैं बच्चों को कि यह करो, यह करो, यह न करो, फलाना। और दूसरी एक्सट्रीम यह रहती है कि बच्चों को छोड़ ही देते हैं। उनको कुछ करना है,

संस्कार देना है, कुछ ऊपर लाना है, कुछ सिखाना है, वह मां-बाप नहीं करते। दो एक्सट्रीम्स रहते हैं। आप दूसरी एक्सट्रीम पर चलते हैं।

न, न, न। मैं एक्सट्रीम की बात ही नहीं कर रहा। मैं तो यह कह रहा हूं, मैं एक्सट्रीम की बात नहीं कर रहा, मैं यह नहीं कह रहा कि मैं कुछ नहीं कर रहा हूं, मैं तो बहुत कर रहा हूं। लेकिन जो भी कर रहा हूं, जो समझने की बात है कुल जमा वह यह है, मैं यह कह रहा हूं कि सत्य की तरफ—जो है, उसकी तरफ—जितने भी इशारे हैं, वे इशारे हमेशा निगेटिव हैं, वे कभी पाजिटिव नहीं हो सकते। वे कभी हो ही नहीं सकते पाजिटिव। तो आज तक जगत में जिन्होंने भी उस तरफ कोई भी श्रम किया है, वह सब निगेटिव है। चाहे उपनिषद का हो, चाहे बुद्ध का हो, चाहे लाओत्से का हो, चाहे झेन के फकीरों का हो।

नेति-नेति से आगे...।

वह नेति-नेति से आगे नहीं जाता, वह जा ही नहीं सकता।

नथिंगनेस, जो एक्झिस्टेंशियल फिलासफी है।

हां, तो वह आपको नथिंगनेस तक ले जाकर छोड़ा जा सकता है। उसके बाद कुछ...उस तक आपको यात्रा करनी पड़ेगी।

लेकिन वहां इसेंस की बात आती ही है।

वह एक्झिस्टेंशियलिस्ट्स की आती होगी, उनसे मुझे मतलब नहीं है।

नहीं-नहीं, कोई भी फिलासफी हो। आप शून्यवाद में जाइए...।

न, न, न। वहां नहीं आएगी। अगर नागार्जुन के साथ चलने की हिम्मत हो, तो नहीं आएगी। नागार्जुन के साथ चलने के लिए बड़ी हिम्मत चाहिए। क्योंकि वह तो खंडन ही खंडन करता चला जाएगा। यानी वह आखिर में आप उससे पूछोगे, आप खंडन तो कर रहे हो कम से कम! वह कहेगा, मैं खंडन भी नहीं कर रहा हूं। वह एक आखिरी खंडन यह करेगा कि मैं वह भी नहीं कर रहा हूं। आप उससे कहोगे, आपने इतना तो कहा कि शून्य है! वह कहेगा, मैंने कब कहा? मैंने यह भी नहीं कहा।

लाओत्से को...लाओत्से ने जिंदगी भर नहीं लिखा कुछ भी। जब बूढ़ा हो गया अस्सी साल का, तो चीन छोड़ कर भाग रहा था। उसको पकड़ लिया एक पोस्ट पर। और चीन के राजा ने खबर भेजी कि लाओत्से जा रहा है चीन छोड़

कर, तो वह हमारा सब ज्ञान लिए जा रहा है जो उसने पाया है। वह उससे वापस रखवा लो! तो लाओत्से ने किताब लिखी।

इस किताब की भूमिका में जो शब्द लिखे, वे बहुत ही अदभुत हैं। दुनिया की किसी भूमिका में नहीं हो सकते। लाओत्से ने लिखा कि मैं मजबूरी में लिख रहा हूं। और यह पहले कह देना चाहता हूं कि जो भी कहा जा सकता है वह सत्य नहीं होगा। जो भी लिखा जा सकता है वह सत्य नहीं होगा। तुमने लिखा कि असत्य हुआ; तुमने कहा कि असत्य हुआ। और तुम मुझे मजबूर कर रहे हो, इसलिए मैं लिख रहा हूं। लेकिन इसको समझ कर किताब को पढ़नाः जो भी कहा जा सकता है वह सत्य नहीं हो सकता।

मेरा मतलब आप समझ रहे हैं न? वह जो कह रहा है, अब जो तुम पढ़ो इसे समझ कर पढ़ना।

यह जो माइंड है, यह जो हमारा माइंड है...।

वह तो यूक्लिड की व्याख्या चाहे जितनी करो।

यूक्लिड की व्याख्या का सवाल नहीं है यहां। नॉन-यूक्लिडियन जानने के लिए थोड़े ही आप यहां हैं। यहां यूक्लिड का मामला नहीं है। यह बिलकुल नॉन-यूक्लिडियन है। यूक्लिड से बिलकुल उलटा मामला है। यूक्लिड तो परिभाषाएं कर रहा है उनकी जिनकी परिभाषाएं नहीं हो सकती हैं। और यहां तो मामला यह है कि उनकी बात की जा रही है जिनकी परिभाषा कभी हुई ही नहीं और कभी हो भी नहीं सकती। और उनकी बात करनी जरूरी है जिनकी बात नहीं की जा सकती। अब फिर रास्ता क्या है?

तो रास्ता फिर सिर्फ यह है कि जिनकी बात की जा सकती है उनको कहा जाए कि यह नहीं है, यह नहीं है। और अल्टीमेटली उस जगह ले जाया जाए जहां माइंड की सारी क्लिंगिंग छूट जाती है। क्योंकि एक-एक चीज हम छीनते चले जाते हैं हाथ से, कि यह भी नहीं है, और छीनते चले जाते हैं। आखिर छीनना उस जगह पहुंचता है कि हाथ में कुछ भी नहीं बच जाता। फिर छोड़ देते हैं उस आदमी को कि यह है! और अब अगर यह आदमी इतने निगेशन में चलने की हिम्मत रखता हो, तो जरूर वहां पहुंच जाता है जहां है। लेकिन नहीं तो नहीं पहुंच पाता।

और हमारी जो सारी ट्रेनिंग है ईथिकल माइंड की वह पाजिटिव है। वह कहता है कि ब्रह्मचर्य की साधना बताइए। मैं कहता हूं, सेक्स नहीं है, वहां ब्रह्मचर्य है।

लेकिन ब्रह्मचर्य की कोई सीधी परिभाषा आपने बताई कि आदमी उसको साधना शुरू करता है। और साधने का कुल परिणाम होता है कि वह सेक्स को दबाना शुरू करता है। सेक्स को समझाइए, और सेक्स को निगेट करने की स्थिति तक माइंड को ले जाइए। और जहां सेक्स निगेट हो जाएगा, वहां जो शेष रह जाएगा वह ब्रह्मचर्य है। और उसकी कोई बात नहीं की जा सकती।

लेकिन वह प्रोसेस तो आप समझाएंगे न!

मैं सारी निरंतर चेष्टा कर रहा हूं न, सारी चेष्टा कर रहा हूं। किसी कैंप में आप थोड़ा वक्त निकालिए, जहां कि थोड़ी गहरी बात हो पाती है।

नहीं, आप कहते हैं तो जरूर करते होंगे। लेकिन जैसा कि आज सुबह कहा था आपने कि गांधी जी ने कितने ब्रह्मचारी पैदा किए? बहुत ब्रह्मचर्य का उन्होंने प्रचार वगैरह किया! ऐसा कुछ उसका आपका आशय था।

नहीं, आप तो जो कह रही हैं यह मैंने शायद ही कहा हो, हरबल भाई सुनते हैं।

ठीक है, समझ लें कि कोई भी नहीं हुए। अभी कल आपने कहा कि लोगों को बाहर से अंतर्मुख होना चाहिए। कल दस साल के बाद आपको कोई पूछ सकता है कि कितने अंतर्मुख हुए? हजारों भी हो सकते हैं, कोई भी नहीं हो सकता है। लेकिन जो बात आपने कही कि अंतर्मुख होना चाहिए या गांधी ने जो कहा, वह जो मूल बात है वह तो सच्ची है न! उसका परिणाम आया न आया, वह अलग बात है।

गांधी की बात तो बिलकुल सच्ची नहीं है, मूल-वूल बात ही नहीं है गांधी के पास। गांधी की बात अगर उठाएंगी, तो गांधी के पास तो कोई न गहरी साधना है...।

वह बात आप छोड़िए।

मैं कह रहा हूं न!

नहीं-नहीं, यह गांधी सवाल नहीं है। गांधी की बात छोड़िए, समझ लीजिए अ, ब, स, किसी ने कहा कि अंतर्मुख होना या ब्रह्मचर्य का, सत्य का पालन करना, तो उसके अंदर जो सत्य है, उस बात में जो सत्य है, उस चीज में, वह तो रहती है न! वह हो या न हो, यह अलग बात है।

मैंने क्या कहा, उसको आप सुन लें पूरा, मैंने क्या कहा। मैंने यह नहीं कहा कि ब्रह्मचर्य नहीं साधा जा सकता। मैंने कहा, ब्रह्मचर्य साधा जा सकता है। लेकिन ब्रह्मचर्य की साधना वाले अगर संतति-नियमन के विरोध की बात करते हों तो नासमझी की बात करते हैं। मेरी आप बात समझ लें। सुबह जो मैंने कहा उसको आपने समझ लिया न पूरा! अगर मैं यह कहूं कि अंतर्दृष्टि साधी जा

सकती है, लेकिन अंतर्दृष्टि साध ली फिर संतति-नियमन की कोई जरूरत नहीं है, तो फिर मैं झंझट की बातें कर रहा हूं। फिर मुझसे पूछा जा सकता है कि कितने लोग अंतर्दृष्टि साध कर ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होंगे? और ये बच्चे पैदा होते जाएंगे, इनका जिम्मा कौन लेगा?

लेकिन मैं यह कह नहीं रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि जिनको अंतर्दृष्टि साधनी है वे साधें, साधी जा सकती है। जिनको ब्रह्मचर्य साधना है वे ब्रह्मचर्य साधें, वह भी साधा जा सकता है, वह भी सत्य है। लेकिन मैं कह यह रहा हूं, इसका इंप्लीकेशन आप संतति-नियमन की रोक की बातें मत करिए। यह बिलकुल ही एब्सर्ड बात है। इसका इंप्लीकेशन यह नहीं हो सकता। संतति-नियमन का अलग प्रयोजन और अर्थ है। और बृहत्तर समूह के लिए वही सार्थक और अर्थपूर्ण है। और गांधीजी की बातचीत या इस तरह की ब्रह्मचर्य की कोई बातचीत वहां लागू करना समाज को गड्ढे में ले जाना और खतरे में ले जाना है।

कोई मना नहीं करता, ब्रह्मचर्य आप साधिए। यह सवाल नहीं है। जो मैं कह रहा हूं, वह मैं यह कह नहीं रहा कि ब्रह्मचर्य नहीं साधा जा सकता और यह भी मैं नहीं कह रहा कि हजारों सालों में किसी ने ब्रह्मचर्य नहीं साधा। मैं कह यह रहा हूं कि यह ब्रह्मचर्य की साधना संतति को रोकने के लिए सार्थक अभी पांच हजार साल में नहीं हो सकी, पचास हजार साल में भी नहीं हो सकती। संतति रोकनी हो तो संतति-नियमन का ही उपयोग करना पड़ेगा; ब्रह्मचर्य से यह होने वाला नहीं है। ब्रह्मचर्य से जो...मेरा जो कहने का मतलब था सुबह, वह आपके खयाल में नहीं है। मैं यह नहीं कहता हूं कि ब्रह्मचर्य नहीं साधा जा सकता। लेकिन मेरा कहना है कि ब्रह्मचर्य की साधना के आधार पर संतति-नियमन की जो बातें...।

पापुलेशन का जो प्राब्लम है, वह नहीं हल होता।

वही मैं कह रहा हूं।

लेकिन जो उनको सच्चा लगता है, उन्होंने जो बातें कहीं, तो उनके अंदर का जो सत्य है वह तो सब ठीक है ही!

वह हो तभी न! वह हो तभी न!

वह आपकी मान्यता है।

मैं अपनी ही तो मान्यता कहूंगा, इनकी मान्यता तो नहीं बोलूंगा वहां। मैं तो मजबूर हूं, अपनी ही मान्यता बोलूंगा।

नहीं-नहीं, आप अपनी मान्यता जरूर बोलें। लेकिन मैं तो यह कहती हूं कि वह जो बीज अंदर है वह तो सत्य है ही।

जहां है, उसकी तो मैं बात ही कर रहा हूं। और जहां वह नहीं दिखाई पड़ रहा वहां भी इसीलिए बात कर रहा हूं कि वह वहां आपको दिखाई पड़ जाए कि वहां नहीं है, तो आप खोज सकें जहां वह है।

जो इतनी स्पष्टता से आप रखते बात को तो हमारे मन में इतनी उलझनें इतने प्रश्न नहीं उठते।

आपके मन में प्रश्न उठ रहे हैं मेरी बात के कारण नहीं, आप कुछ बात पकड़े बैठी हुई हैं उसके कारण।

यह बात आप मत कहें।

नहीं-नहीं, मेरे पास आप ही थोड़ी आती हैं, मेरे पास दूसरे लोग भी आते हैं मुझे सुन कर जिनके मन में यह प्रश्न नहीं उठता, तो मैं जानता हूं। एक जगह मैं बोलता हूं तो आप ही तो नहीं आए हैं मुझसे मिलने, बच्चू भाई भी मिलने को बैठे हुए हैं, डाक्टर भी मिलने को बैठे हुए हैं। लेकिन आप जो प्रश्न लेकर आई हैं, वह डाक्टर प्रश्न लेकर नहीं आते। तो उसका मतलब यह है कि प्रश्न मेरे बोलने से नहीं उठता है, आपकी पकड़ से उठता है। डाक्टर का दूसरा उठता है। आपका तीसरा उठता है। मैं तो एक ही बात बोलता हूं, लेकिन तीन आदमी तीन प्रश्न लेकर आते हैं। वे आपकी पकड़ से आते हैं। उलझन जो आती है वह आपकी पकड़ से आ रही है। और आपकी कोई पकड़ न हो तो कोई उलझन नहीं है। और आपकी कोई पकड़ न हो तो समझना एकदम आसान और सीधा है।

हो सकता है मेरी बात गलत हो, तो वह भी समझना आसान पड़ेगा। उलझन नहीं पैदा होगी। अगर मेरी बात गलत है और आपकी कोई पकड़ नहीं है, तो आपको इतना साफ दिखाई पड़ जाएगा कि यह बात गलत है। उलझन फिर भी पैदा नहीं होगी। बात खत्म हो गई।

वैक्यूम तो कोई हो ही नहीं सकता है।

वैक्यूम हो सकता है। वही तो हमारा अजॅमशन है। नहीं तो निगेशन का सवाल ही नहीं है।

हमने जो कुछ सोचा, कुछ भी पढ़ा, सोचा दिमाग से, बुद्धि से, या अंतर से भी जो कुछ निकला, इसका जो कुछ है वह एक पिंड है। वह पिंड अलग-अलग

है इसलिए अलग-अलग रिएक्शन होता है। लेकिन वह पिंड से जांचा जाता है कि यह ठीक है या नहीं ठीक है।

उस पिंड से अगर जांचते हैं तो आप कभी नहीं जांच पाते हैं। यही तो, यही सारा झगड़ा है।

यह पिंड बदलता रहेगा।

इसको थोड़ा समझ लीजिए, इसको थोड़ा समझिए।

यह पिंड जो पुराना है...।

न-न, यह सवाल नहीं है पुराने-नये का।

आज जो मेरा है वह पिंड बदलता रहेगा, बदलता है।

तो पिंड है, अब समझने के दो रास्ते हैं—एक तो वाया पिंड।

पिंड यानी कांशसनेस।

नहीं, कंडीशनिंग आपकी! कांशसनेस-वांशसनेस कहां रखी है। कंडीशनिंग! पिंड का क्या मतलब होता है?

यानी मेरा सामाजिक जो...।

सामाजिक नहीं, आपके ऊपर जितने भी संस्कार हैं, आपके माइंड के जितने भी संस्कार हैं, सब कंडीशनिंग है।

हां, जितने भी हैं। संस्कार और इससे चैतन्य का जो आविर्भाव हर एक मनुष्य में जो हद तक हुआ है, वही स्वरूप की बात है।

यह जो आविर्भाव जो है न...इससे आविर्भाव नहीं होता, इससे आविर्भाव ढंकता है। वही तो सारा झगड़ा है।

आप जो अभी कह रहे हैं कि यह आविर्भाव को ढंकता है, वह किस हिसाब से कह रहे हैं?

इसको थोड़ा समझ लें। वह जो हमारी कंडीशनिंग है—जो हमने सुना है, पढ़ा है, सोचा है, समझा है—वह जो हमारे माइंड की कंडीशनिंग है, तो अब मेरी बात अगर आप सुन रहे हैं तो दो तरह से सुन सकते हैं, दो तरह से। वैक्यूम तो आप नहीं होते, वह तो मैं जानता हूं। वह तो अल्टीमेट बात है कि वैक्यूम हो जाएं, तो मुझे सुनने आने की जरूरत नहीं है।

और आपको कहने की भी जरूरत नहीं है।

नहीं, मुझे कहने की जरूरत हो सकती है।

कैसे?

वह दूसरी बात है।

समझाइए आप।

इसको समझ लेने दीजिए पूरा, फिर आपसे बात कर लूंगा। मुझे कहने की जरूरत हो सकती है। नहीं तो बुद्ध को, महावीर को, किसी को कहने की कोई जरूरत नहीं है।

लेकिन मैं तो नहीं सुन सकूंगा वैक्यूम से।

उसकी बात सुन लीजिए पूरी, अभी वैक्यूम को समझ लीजिए थोड़ा। यह जो कंडीशनिंग है, इसको दो तरह से आप सुन सकते हैं। एक तो रास्ता यह है कि कंडीशनिंग मेरे बोलते वक्त, आपके सुनते वक्त बीच में हो—कंडीशनिंग बीच में हो।

तो नहीं समझ पाएंगे।

हां, वही मैं कह रहा हूं। कंडीशनिंग एक कोने पर मेमोरी में पड़ी हो और आप फ्रेश और इमीजिएट सीधा कांटैक्ट कर रहे हों, तो समझना आसान होगा। वैक्यूम का अभी तो इतना ही मतलब हो सकता है—अभी—कि कंडीशनिंग जो है वह बीच में बैरियर की तरह खड़ी न हो।

लेकिन वह खड़ी होती है आमतौर से, बहुत कठिन है उसको भी एक तरफ हटाना, एक तरफ किनारे करना। क्योंकि अगर मैंने गांधी के लिए कुछ भी कहा, तो आप उसको ऐसा ही नहीं सुन रहे हैं जैसा मैं क्राइस्ट के संबंध में कुछ कहूंगा तो सुनेंगे।

सुनना चाहिए!

सुनना चाहिए, वह तो है।

वह तो है, वह तो है। अगर मैं महावीर के संबंध में कुछ कह रहा हूं तो जैन वैसे ही नहीं सुनता जैसा कि अ-जैन सुन लेता है। अ-जैन के लिए कोई कंडीशनिंग नहीं है। वह चुपचाप देखता है कि ठीक है, महावीर के लिए कुछ कहते हैं। सुनता है वह, यह उसकी डायरेक्ट लिसनिंग हो जाती है। जैन तो बेचैन हो गया—कि महावीर के लिए! मेरे भगवान के लिए! अब यह मामला महावीर का नहीं रहा, यह इसका भी हो गया और यह बीच में खड़ा हो गया।

यह जो बीच में खड़ा हो जाना है, यह नब्बे प्रतिशत कनफ्यूजन तो यह पैदा करता है। फिर हम कुछ जो नहीं कहा गया, वह भी सुन लेते हैं। कुछ जो नहीं कहा गया, वह अर्थ भी निकाल लेते हैं। और वह हमें इतना सही मालूम पड़ता है कि हमने सुना, कि हमें कल्पना में भी नहीं हो सकता है कि यह नहीं कहा गया, यह नहीं सुना गया। कुछ छूट जाता है, कुछ जुड़ जाता है, यह सब पैदा हो जाता है।

इस माइंड को मैं कहता हूं कि यह माइंड लिसनिंग नहीं कर रहा है। यह नुकसानदायक है। और इससे कनफ्यूजन की सारी ताकत पैदा होती है। यह जो मेमोरी है हमारी, वह मेमोरी में होनी चाहिए, वह रहेगी, जाएगी नहीं आज। लेकिन जब मैं सुन रहा हूं, जब भी मैं सुन रहा हूं, तब वह बीच-बीच में खड़ी नहीं हो जानी चाहिए—एक बात। और वह जो आप कहते हैं न, वैक्यूम जो है...एक घटना आपको कहूं उससे खयाल में आएगा।

फरीद था मुसलमान फकीर। वह गया यात्रा पर। तो वह सारे मुसलमानों के फकीरों की मजारें घूम रहा था। कबीर के गांव के पास से निकला। तो फरीद के साथ कोई सौ लोग थे। उन्होंने कहा कि कबीर का आश्रम आता है, अगर यहां रुक जाएं और कबीर से थोड़ी आपकी बातचीत होगी तो हमें बड़ा आनंद होगा कि क्या बात होती है! फरीद ने कहा कि रुक तो जरूर जाएंगे, लेकिन बात होनी मुश्किल है।

उधर कबीर को भी, मित्रों को पता चला आश्रम में कि फरीद गुजरने वाला है, कहा कि रोक लो फरीद को। कबीर से कहा कि बड़ा आनंद आ जाएगा, दो दिन आपकी चर्चा हो जाएगी, हम सुन लेंगे। कबीर ने कहा कि चर्चा बहुत मुश्किल है। रोक लो तो जरूर रोक लो। बैठेंगे, हंसेंगे, चर्चा बहुत मुश्किल है। पूछा, चर्चा क्यों मुश्किल है? उन्होंने कहा, वह तो जब आएगा फरीद तो तुम्हें समझ में आ जाएगा।

फरीद आया। कबीर लेने गए, गले मिले, वे आकर बैठे। दो दिन रहे साथ, हंसे, गले लगे, चलते वक्त आंसू बह गए दोनों की आंखों से, लेकिन बात नहीं हुई। छूटते ही से शिष्य तो सब घबरा गए दोनों के! दो दिन में बोर्डम हो गई बिलकुल, कि यह क्या पागलपन हो गया! बैठे हैं, बैठे हैं! और उन दोनों की वजह से दूसरे भी न बोल पाएं कि वे क्या सोचेंगे। जैसे ही छूटे तो फरीद से मित्रों ने पूछा कि यह क्या पागलपन किया कि तुम चुप ही रह गए, बोले नहीं!

फरीद ने कहा, जो बोलता वह नासमझ सिद्ध हो जाता। फरीद ने कहा कि मैं बोलता तो मैं बुद्धू हो जाता, क्योंकि वह आदमी शून्य हो गया है।

कहा, पर कबीर क्यों नहीं बोला? तो फरीद ने कहा कि कबीर जानता है कि मैं शून्य हो गया हूं। दो शून्य क्या बोल सकते हैं, बोलने को कुछ भी नहीं बचता! तो फरीद के मित्र पूछने लगे, लेकिन हमसे तो आप बोलते हैं! फरीद ने कहा, जरूर बोलता हूं, क्योंकि तुम शून्य नहीं हो। और तुम तभी तक सुन रहे हो जब तक तुम शून्य नहीं हो। जिस दिन तुम शून्य हो जाओगे, न तुम सुनोगे...।

दो शून्य खड़े हों तो बोलना और सुनना बंद हो जाएगा। लेकिन एक शून्य का बोलना चल सकता है। एक शून्य का बोलना चल सकता है, वह एक अंतरव्यथा है उसकी, कि जो उसे दिखाई पड़ गया है, जो उसने जान लिया है, जो उसे हो गया है, उसकी सारी तड़प है कि वह कैसे हो जाए किसी को! उसकी सारी तड़प में वह कई दफे आपको बहुत ज्यादा दुष्ट भी मालूम पड़ेगा। उसकी सारी तड़प में वह कई दफे ऐसा लगेगा कि हमारी बहुत मान्यता को तोड़ दिया है, हमारे दिल को दुख पहुंचा दिया है, हमें चोट कर दी है! और उसकी पीड़ा को तुम नहीं समझ सकते हो कि वह जान यह रहा है कि जितनी तुम्हारी पकड़ टूट जाए, जितना तुम खाली हाथ हो जाओ, उतनी ही वह घटना घट जाए, वह हैपनिंग हो जाए, जिसकी कि चिंता है।

यह बिलकुल ठीक है कि हम एकदम शून्य होकर नहीं सुन सकते हैं। लेकिन हम करीब-करीब शून्य होकर सुन सकते हैं। और करीब-करीब शून्य होने का मतलब यह है कि वह बीच में नहीं होना चाहिए।

वह जो आप कहती हैं न, वह आप बिलकुल ठीक कहती हैं कि मेरी बात से बहुत सी चिंता, बहुत सा विचार, बहुत से प्रश्न खड़े हो जाते हैं। जरूर मेरी बात कुछ ऐसी है कि उससे ऐसा होगा। लेकिन वह उतना ही नहीं है कारण, उससे भी ज्यादा कारण यह है कि हमारे सबके मन की अपनी पकड़ है। उस पकड़ पर कहीं भी भेद पड़ता है, चोट पड़ती है, स्वाभाविक है कि प्रश्न खड़ा हो जाए। और मैं चाहता हूं कि खड़ा हो जाए। मैं चाहता भी हूं कि खड़ा हो जाए, क्योंकि खड़ा हो जाए तो डायलाग शुरू होता है। तो हम सोचते हैं, विचार करते हैं, बात करते हैं। आज नहीं कल—लड़ेंगे, झगड़ेंगे, कुछ होगा—लेकिन उससे कुछ रास्ता बनेगा। अगर कुछ रास्ता उससे बनता है और अगर लड़ने-झगड़ने, सोचने-विचारने के बाद अगर हम थोड़ी सी भी ज्यादा अंडरस्टैंडिंग में छूटते हैं—जरूरी नहीं है कि मेरी बात सही हो जाएगी उससे; लेकिन मेरा मानना यह है कि उस प्रोसेस से गुजरने पर भी अंडरस्टैंडिंग बढ़ती है—चाहे मेरी बात गलत सिद्ध हो या सही सिद्ध हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

हरिवल्लभ जी और मैं अगर दो घंटे बातचीत करें, और सिर्फ लड़ भी लें बातचीत में, तो भी हम दो आदमी दो घंटे के बाद ज्यादा समझदार लौटते हैं। मेरा मतलब यह है कि अगर उस प्रोसेस से गुजरने की थोड़ी भी इच्छा हो तो हम उससे समझदार लौटते हैं।

पर हिंदुस्तान में ऐसा हो गया है कि हिंदुस्तान में, भोगीलाल जी, डायलाग जैसी चीज ही नहीं रह गई है। बिलकुल डायलाग नहीं है! और इसलिए ऐसी हैरानी मालूम पड़ती है कि डायलाग तो नहीं है, ज्यादा से ज्यादा गाली-गलौज हो सकती है। अगर कोई ज्यादा ही कोई बातचीत करो तो गाली-गलौज फौरन हो जाती है, डायलाग-वायलाग नहीं हो पाता। यानी ऐसा संभव ही नहीं रह गया है कि हम बैठें, हम चर्चा करें, मुल्क में हवा चले बात करने की, गांव-गांव में अड्डे हों, जहां लोग जिंदगी के बड़े मसलों पर कुछ बात करते हों, लड़ते-झगड़ते हों, पक्ष-विपक्ष करते हों। वह सब खत्म हो गया! और ऐसी पिटी-पिटाई हालत हो गई है कि जो हमने पकड़ लिया, सो दोहराए चले जाते हैं रोज-रोज उसको। न उसको कोई इनकार करता...।

यानी मुझे तो कई दफे ऐसा लगता है कि आप बिलकुल ठीक कह रहे हो तो भी लगता है कि इनकार कर दो इस आदमी को; क्योंकि थोड़ी बातचीत तो हो। मुझे कई दफे ऐसा लगता है कि आप बिलकुल ठीक कह रहे हैं, लेकिन मुझे लगता यह है कि यह ठीक कहा हुआ कहीं सिर्फ पकड़ा ही हुआ तो नहीं है! अगर पकड़ा ही हुआ है तो बकवास में गिर जाएगा और नहीं पकड़ा हुआ है तो टिक जाएगा। हर्जा क्या है! यानी मेरा कहना यह है...तो मुझे तो लगता यह है कि इस वक्त एक-एक चीज पर हमला कर देने जैसी हालत है।

वह मान्य है, वह पूरी की पूरी बात मान्य है। लेकिन एक जो तीसरा वजह होता है कनफ्यूजन का, आप जो जिस तरह से रखते हैं न, वह ओवर सिंपलीफाई करते हैं। जो चीज इतनी कांप्लीकेटेड है, उसको ये जो कथानक होते हैं और एनक्डोट्स होते हैं वह इतना देते हैं और इस तरह से देते हैं कि उसका एक दूसरा ही रूप, जो सीरियस चीज है, जो समझने के लिए लोगों को अंदर ढूंढना पड़ेगा...।

आप ऐसा सोचते हैं भोगीलाल जी, लेकिन मेरी समझ यह है कि जो एनक्डोट मैं कहता हूं, उसको आप सिंपल भी समझ सकते हैं और बहुत कांप्लेक्स भी। ये जो भी एनक्डोट मैं कहता हूं या जो भी छोटी कहानी कहता हूं...।

इसमें कंट्राडिक्शन भी बहुत आते हैं।

वे आएंगे। कंट्राडिक्शन आने की क्या फिकर करते हैं! वह तो बातचीत की, दि मोमेंट यू असर्ट, देअर इज़ कंट्राडिक्शन। वह तो आप बोले, और कंट्राडिक्शन आने वाला है।

एनक्डोट्स का ही स्वभाव है कि वह कभी भी पूरा-पूरा...।

पूरा तो कोई चीज नहीं कह सकती। भाषा ही नहीं कहती, एक एनक्डोट क्या कहेगा! लेकिन एनक्डोट जो है वह इतना कहता है, एक दो मिनट का एनक्डोट, जितना दो घंटे की बात नहीं कहती और दो घंटे की कोई फिलासफी की ट्रीटाइज नहीं कह सकती। और यह भी आपका खयाल ठीक नहीं है कि वह उसकी गंभीरता कम करता है। वह तो आदमी गंभीर है तो उसकी गंभीरता बढ़ाता है और आदमी गंभीर नहीं है तो उसकी गंभीरता कम करता है।

यानी मेरा कहना यह है कि वह तो अगर आदमी गंभीर है तो एक एनक्डोट पर सोचने के लिए घंटों लगा देगा। और अगर आदमी गंभीर नहीं है, अगर आदमी गंभीर नहीं है, तो आप उसको गीता के वचन सुनाइए और वह समझेगा कि कोई फिल्मी गाने गा रहे हो। यह सवाल नहीं है। वह तो आदमी के ऊपर निर्भर है। बुद्ध ने अपनी श्रेष्ठतम सारी बातें...।

लेकिन आप उनको ज्यादा व्यंग्य की तरह लेते हैं तो ओवर सिंपलीफाई हो जाएगा न!

मुझे तो फिक्र नहीं है ओवर सिंपलीफाई की। मैं तो कहता हूं कि सत्य इतना सिंपल है कि उसमें से ओवर सिंपलीफाई कर नहीं सकते।

ऐसा तो फिर दोनों चीजें कह सकते हैं एक साथ—कि इतना कांप्लीकेटेड भी है और इतना सिंपल भी है।

एक ही बात है, एक ही मतलब है। और इसलिए किस तरह हम...हम किस तरह...अधिकतम लोगों के लिए सोचना कैसे संभव हो जाए, वह मेरी दृष्टि है। और मेरी दृष्टि यह भी रहती है कि जो अंतिम है वहां, उसके भी खयाल में आ सके, जो प्रथम है उसके ही खयाल में नहीं। वह जो पच्चीस लोग बैठे हैं, तो उसमें जो अंतिम है, उसके भी खयाल में कुछ आ सके। वह भी बिलकुल खाली हाथ वहां से नहीं जाना चाहिए।

नहीं तो प्रथम के खयाल के लिए तो बहुत किताबें हैं, आप उनको पढ़िए मजे से। और मेरी अपनी दृष्टि यह है कि दुनिया में अब तक जितनी भी कठिन से कठिन बात कही गई है वह सरल से सरल कहानियों में कही गई है। चाहे जीसस ने, चाहे बुद्ध ने, चाहे कनफ्यूशियस ने...।

इससे इनकार नहीं है। लेकिन आपके कहने की जो कथा है, जो पद्धति है, वह पद्धति का ही मुझे कोई दोष मालूम होता है कि इससे यह एनक्डोट्स की गंभीरता नहीं रहती है, मैं तो यह बताना चाहता हूं।

वह हो सकता है। मैं तो गंभीरता चाहता भी नहीं। गंभीरता की मुझे इच्छा भी नहीं है जरा भी। गंभीरता मैं चाहता भी नहीं, गंभीरता को मैं रोग ही मानता

हूं, रोते हुए आदमियों का लक्षण मानता हूं। वह मैं चाहता भी नहीं बहुत। मेरी तो अपनी समझ यह है, मेरी तो समझ यह है कि कितना सरल और कितना सहज और कितना वहां से, जहां आदमी के हृदय में प्रवेश करता है किसी द्वार से, मेरी अपनी...(अस्पष्ट)

आप गांधी को पूंजीवादी मानते हैं?

गांधी को? नहीं, गांधी को मैं पूंजीवादी नहीं मानता। लेकिन गांधीजी की पूरी चिंतना की विधि पूंजीवाद की समर्थक है। गांधी को पूंजीवादी नहीं मानता। और गांधी पूंजीवादी चित्त से हैं भी नहीं, और उनका भाव भी नहीं है पूंजीवादी होने का। लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। गांधी के जीवन की विधि, गांधी के सोचने का ढंग पूंजीवादी है, बुर्जुआ है।

तो इसमें फर्क क्या हुआ? गांधी का सोचने का ढंग पूंजीवादी है और गांधी पूंजीवादी नहीं हैं!

हां-हां, बहुत फर्क है, बहुत फर्क है। गांधीजी कांशस नहीं हैं इस बात के लिए। और इसलिए गांधी की नीयत पर मैं कभी दोष नहीं देता। यानी मैं एक बात कह सकता हूं, मैं एक बात कह सकता हूं न, मैं एक बात कह सकता हूं जिसमें मेरी कोई नीयत किसी को नुकसान पहुंचाने की नहीं है, और नुकसान पहुंच सकता है। आपको नुकसान पहुंचाने की मेरी कोई नीयत नहीं है, आपको फायदा ही पहुंचाने की मेरी नीयत है, और नुकसान आपको पहुंच सकता है।

मेरा कहना है कि गांधी की नीयत के बाबत कोई शक करने का सवाल नहीं उठता। लेकिन गांधी की ठीक नीयत भी जो कर रही है वह पूंजीवाद का समर्थन है।

वह तीस साल पहले जो कम्युनिस्ट कह रहे थे, वह आप कह रहे हैं। अब पूरी दुनिया बदल गई  है, विचार बदल गया है...।

मुझे पता नहीं, कम्युनिस्ट क्या कहते थे कब और कब नहीं कहते थे। मुझे पता नहीं।

मुझे तो पता है।

वह तो आप बदल गए होंगे तो दुनिया बदल गई लगता है।

लेकिन अभी भी सुबह आपने जो बात कही, तो गांधी पूंजीवादी था, ऐसा ही आप प्रतिपादित कर रहे थे। वह तीस करोड़ और तीन सौ तीन करोड़ वाली बात कह रहे थे।

मैंने यह नहीं कहा। मैंने यह कहा कि गांधी के सत्संग से फायदा मिला उसको। गांधी को फायदा नहीं मिल गया।

वह बिड़ला को मिला था। हालांकि वह बात सही नहीं है। गांधी ने उसके लिए सर पुरुषोत्तम दास, ठाकुर दास, सर फीरोज शाह और सेठना की बात करके वह कही थी कि जो बात हम अंग्रेजों के साथ करेंगे वही हमारे देश के भी पूंजीपतियों..तो वह आपने सुना है।

वह मुझे मालूम है। वह तो कठिनाई नहीं है। वह तो दूसरे वक्तव्य ऐसे रखे जा सकते हैं जैसा आप रख रहे हैं। जिसमें उन्होंने उत्तरप्रदेश के जमींदारों की कमेटी उनसे मिली, और उन्होंने कहा कि तुम्हारे ऊपर अन्याय होगा अगर जमींदारी छीनी गई, मैं लड़ूंगा तुम्हारे लिए। इसमें क्या मतलब है? इस वक्तव्य में क्या मतलब है? गांधी की जिंदगी में तो इतने कंट्राडिक्टरी वक्तव्य हैं कि कुछ भी सिद्ध कर सकते हो। इसलिए किताबें-विताबें नहीं लाना चाहिए, इनमें कोई मतलब नहीं है।

नहीं, वह आप जो गांधी को बता रहे थे, वह गांधी को आप बिलकुल गलत ढंग से बता रहे थे।

यह हो सकता है। इसमें झगड़ा नहीं है। यह झगड़ा नहीं है मेरा। यह झगड़ा नहीं है, क्योंकि आपको पक्का होगा कि आप सही ढंग से समझ गए हैं, तो बात अलग है। वह झगड़ा नहीं है मेरा।

नहीं, वह जो गांधी नहीं थे, वह आप बता रहे थे।

मैं तो अभी भी वही कह रहा हूं, बता नहीं रहा था।

नहीं, फिर भी वह कहने का जो ढंग था, उससे ऐसा ही सुनने वालों को लगता है कि वह गांधी पूंजीवादी था।

वह कितने सुनने वालों को लगा? वह कितने सुनने वालों को लगा?

आपकी बात इससे स्पष्ट हो जाती है कि कहते हैं कि गांधी की नीयत पूंजीवादी नहीं है।

गांधी तो जरा भी नहीं हैं। लेकिन गांधी का व्यक्तित्व, गांधी की चर्या, गांधी का पूरा चालीस साल का जो कुछ हिसाब है, गांधी का आंदोलन, वह सब पूंजीवाद के समर्थन में गया।

इसका तो मतलब यही हुआ कि गांधी पूंजीवादी था।

यह दूसरी बात है। यह आप नतीजा निकाल रहे हैं। यह मैं नहीं कहता। आप उनकी नीयत पर भी शक कर रहे हैं। आप नीयत पर भी शक कर रहे हैं, मैं उनकी नीयत पर शक नहीं कर रहा हूं। यह आपका नतीजा है, यह मेरा नहीं है।

नहीं, आप कहते ऐसा हैं, इसीलिए उसमें से उसका अर्थ ऐसा होता है।

न, न, न। यह आप निकालोगे न! यह हरबल भाई नहीं निकाल रहे, भोगीलाल भाई भी नहीं निकाल रहे यह। यह आप निकाल रहे हो।

वह तो ठीक है, आपकी नीयत नहीं है, फिर भी आपके करने से कुछ हो सकता है।

कुछ हो सकता है, इसमें क्या कठिनाई है! इसमें क्या कठिनाई है! इसलिए ये दोनों बातें एक नहीं हैं। और यही कठिनाई हो रही है, यही कठिनाई हो रही है। लोग समझते हैं कि मैं कोई गांधी को कह दिया हूं। गांधी को मैं क्यों कहूंगा?

लेकिन जो बोला जाता है वह उस तरह से बोला जाता है कि जैसे गांधी को तोड़ने के लिए जो लोग बोलते थे, यह वैसे ही तोड़ने के लिए बोला गया हो।

मजा यह है कि मैं तो सभी को तोड़ने के लिए उत्सुक हूं, मुझे तो इसमें कोई झंझट नहीं है।

तोड़ें आप, उनकी जो गलत बात है उसको तोड़ें। कोई गलत बात को रख कर कुछ बनाने से बनता नहीं है, ऐसा हमने देख लिया है। तो इसलिए गांधी की जो बात है वह ठीक सिद्ध है, ऐसा गांधी कहता था, उसी तरह से आप स्टेट करें और उसके बाद तोड़ें।

मगर वह कौन तय करेगा कि गांधी कैसा कहता था? आप तय करेंगी कि मैं तय करूंगा?

क्यों, जो कोई पढ़ेंगे! वह तो छोड़ गया है अपनी बात।

यह तो बच्चों जैसी बातें कर रही हैं आप। ये इसलिए बच्चों जैसी बातें कर रही हैं, यह भोगीलाल भाई बैठे हैं ये उसको समझ सकते हैं कि यह कौन तय करेगा कि गांधी क्या कहते थे। यह आप तय करेंगी कि मैं तय करूंगा? मेरे लिए मैं ही तय करूंगा न, आप तो तय नहीं कर सकतीं!

फिर भी इसमें तर्क रहेगा।

हां, तर्क रहेगा भोगीलाल भाई और इसमें विवाद रहेगा। विवाद रहेगा और इसमें कोई तय नहीं कर सकता। आज भी मजा यह है कि बुद्ध क्या कहते थे, यह बुद्ध के छह संप्रदाय छह तरह से तय करते हैं।

नहीं, वैसी बात यह नहीं है।

सारी बातें ऐसी हैं महाशय!

सारी बातें ऐसी कैसी होंगी? जैसे गणित की बात है कि एक और एक दो। अब इसमें तो कुछ और तय नहीं हो सकता!

यह आखिरी बात कर ली जाए, यह आखिरी बात कर ली जाए। ये जो दलीलें आप लाती हैं न ढूंढ़-ढूंढ़ कर कि एक और एक दो, ये दलीलें इतनी नासमझी की भरी हुई हैं, एक और एक अनिवार्य रूप से दो नहीं होते। आपको गणित की कितनी समझ है, मुझे पता नहीं। एक और एक अनिवार्य रूप से दो नहीं होते। और एक और एक सिर्फ इसलिए दो होते हैं कि हमने नौ के डिजिट बना रखे हैं। दस डिजिट बना लें, और नहीं होंगे। पांच डिजिट बना लें, और नहीं होंगे। मेरा मतलब आप समझ रहे हैं न? मेरा मतलब यह है...।

वह तो आप हायर मैथेमेटिक्स में जाते हैं।

उसी तरह सारी बातें हैं।

उसका अर्थ ऐसा दिखलाने की कोई जरूरत भी नहीं। लेकिन क्या मेरे कहने का तात्पर्य आप नहीं समझे कि मैं क्या कहना चाहती हूं? कई चीजें तो ऐसी जरूर होती हैं जिसे आप भी एक ही तरह से तय करेंगे और मैं भी एक ही तरह से तय कर सकती हूं।

एक चीज ऐसी नहीं होती।

एक होती है। नहीं तो डायलाग ही नहीं हो सकता है। होती है, सब में एक होती है।

देखिए, इसी पर एक नहीं हो पा रही है न!

आपके पास डायलाग के लिए ही तो आते हैं हम। हमने कुछ नहीं पकड़ा हुआ है, फिर भी हम आते हैं इसीलिए कि इसके बारे में कुछ लेना है। तो फिर हम आपके साथ कैसे डायलाग करें?

बिलकुल आइए, बिलकुल आइए। लेने की फिक्र में मत आइए। इधर कुछ छोड़ जाना है, तो कुछ मजा आ सकता है। लेने-वेने में, मेरे पास कुछ है ही नहीं, दूंगा क्या आपको!

नहीं है कुछ, फिर भी आप फिर रहे हैं कुछ देने के लिए ही।

छीनने के लिए! नहीं, भोगीलाल भाई, कुछ नहीं देता।

वह तो ठीक है, वह प्रेम का संबंध ऐसा ही होता है।

छीन लूं कुछ, इतना ही खयाल रहता है।

इसमें छीनना और देना वह एक ही चीज होती है।

अच्छा हुआ, अच्छा हुआ...।

लेकिन बात यह है कि डायलाग के लिए कोई भूमिका लानी चाहिए कि जो आदमी प्रयत्न करके भी पास बैठ सके, बात कर सके।

मैं तो ला रहा हूं भूमिका।

नहीं, आप कह रहे हैं कि आप नहीं समझेंगे, क्योंकि आपने कुछ पकड़ा हुआ है।

मैं यह नहीं कह रहा हूं।

जो पकड़ने वाला है, उसको भी वह धीरे-धीरे छोड़े, इस तरह से आप कहें।

वही कोशिश चलती है, वही कोशिश चलती है। कोई छोड़ता भी है, कोई नहीं भी छोड़ता। कोई धीरे छोड़ता है, कोई लंबे छोड़ता है। अब उसका हिसाब भी नहीं रखना पड़ता कि कौन छोड़ता है कि नहीं छोड़ता। काम मेरा हो गया, कह दिया, बात खत्म हो गई।

नहीं, आपसे डायलाग इसलिए नहीं हो सका कि आप सबको कहते हैं कि कंडीशंड हैं, कांशस कोई है नहीं। सब कंडीशंड हैं, ऐसा आप कहते हैं, तो डायलाग कैसे हो सकता है? आप मानते हैं कि सब लोग कंडीशंड हैं।

हैं ही। इसमें मानने का क्या सवाल है?

वह तो हैं, लेकिन फिर भी डायलाग होता है, क्योंकि आदमी दूसरे को समझने की भी कोशिश करता है, सिर्फ जो है वह बताने की कोशिश नहीं करता है।

बिलकुल ही, बिलकुल ही, तभी डायलाग होता है। लेकिन डायलाग में बाधा...।

एक-दूसरे को समझे बिना आदमी कुम्हलाता भी है। उसको ऐसा लगता है कि मुझे दूसरे को समझना चाहिए।

बिलकुल, अगर ऐसा लगे तो डायलाग हो जाता है। लेकिन मामला क्या है, बहुत मुश्किल से हम इस कोशिश में होते हैं कि दूसरा क्या है, इसे समझें। अंदरूनी कोशिश यह होती है कि क्या हम हैं, यह दूसरे को समझाएं। इसलिए डायलाग में तकलीफ होती है, नहीं तो डायलाग में इतनी तकलीफ नहीं है। मेरा मतलब आप समझे न! डायलाग तो हमेशा ही चल सकता है। और चलता है। लेकिन वह जो हमारी कोशिश होती है बहुत भीतरी, वह अगर समझने की है तब तो बहुत आसान हो जाता है, समझाने की है तब बहुत मुश्किल हो जाता है।

वह तो दोनों होती हैं। समझाने की भी रहती है, समझने की भी रहती है।

लेकिन...।

कांति भाई ने जब कहा तो आपने कहा कि गांधीजी ने कहा था कि जमींदारों की तरफ से मैं लड़ूंगा—यानी कुछ फैक्ट को बेस बनाया जा सकता है, उसको लेकर मैं कह रहा हूं—तो वह बिलकुल आपका ठीक था कहना। उन्होंने कहा था कि मैं जमींदारों की तरफ से लड़ूंगा और सत्याग्रह करूंगा। उसी गांधी ने पैंतालीस में आगा खान से निकलने के बाद यह कहा कि मैं मानता हूं कि अब

जमींदारों को कंपनसेशन भी न दिया जाए और जमींदारी खत्म की जाए। ये फैक्ट्स हैं और इसमें उनके विचारों में विकास हुआ है। तो इन विचार-परंपरा को और विकास-परंपरा को भी कुछ ध्यान में हमें ले करके...।

इसमें ऐसा मामला है न, ऐसा मामला है कि इसमें ही गांधी को अगर पूरा उठा कर हम देखने चलें, तो ऐसा मुझे मालूम पड़ता है कि गांधी में कोई इकहरा व्यक्तित्व विकसित हो रहा है, यह भी मुझे नहीं दिखाई पड़ता। गांधी में मुझे बहुत व्यक्तित्व दिखाई पड़ते हैं, गांधी का मुझे एक व्यक्तित्व दिखाई नहीं पड़ता। मुझे मल्टीसाइकिक मालूम पड़ते हैं। और कई धाराएं उनमें विकसित हो रही हैं। और कई मामलों में वे पीछे भी गिरते हैं, आगे भी बढ़ते हैं। बहुत सा मामला है।

वही हमें दिखा आपकी बातों में उस दिन।

हां, तो यह जो बहुत सा मामला है, यह जो बहुत सा मामला है, इसको जितनी समझदारी से हम समझने की कोशिश करें, उस कोशिश में गांधी की पूजा और हानि व निंदा का कोई सवाल नहीं है। सवाल कुल इतना है कि गांधी के व्यक्तित्व को आधार बना कर अगर हम समझने की कोशिश करें तो मुल्क के आने वाले व्यक्तित्व को बनाने के लिए कुछ रास्ते निकल सकते हैं।

लेकिन दो तरह की बातें हैंः या तो कोई आदमी गांधी को गाली देने की वृत्ति में पड़ जाता है, तब बहुत मुश्किल हो जाता है; और या फिर कोई पूजा करने की जिद में पड़ जाता है, तब भी बहुत मुश्किल हो जाता है। और अगर कोई आदमी दोनों के बीच में, जिसको कहें क्रिटिकल थिंकिंग कर रहा हो, तो दोनों तरफ के आदमी धक्के देकर उसको कहते हैं कि तुम किसी कोने पर खड़े हो जाओ।

यानी जैसा कि आप कहते हैं मुझसे कि या तो आप अब यह भी कहो कि गांधी की नीयत गलत है, तो फिर हम समझ लें आपकी बात। और वह दूसरा जो आदमी आता है वह मुझसे कहता है कि तुम अगर कहते हो कि उनकी नीयत ठीक है, तो यह भी कहो कि उनका विचार भी ठीक है।

अब मेरी तकलीफ आप समझते हैं न! मेरी तकलीफ क्या हो जाती है, न मैं पक्ष में हूं किसी के, न मैं किसी के विपक्ष में हूं। मुझे पक्ष-विपक्ष का अर्थ ही नहीं मालूम पड़ता। मुझे तो यह मालूम पड़ता है कि गांधी जैसा महत्वपूर्ण आदमी है, इसको सोचा जाना चाहिए।

बहुत कांप्लेक्स पर्सनैलिटी है।

कांप्लेक्स है बहुत, और इसलिए बहुत पहलू हैं, और बहुत पहलुओं से सोचने की जरूरत है। कोई जिद्द की जरूरत नहीं है बहुत जल्दी कि यह पहलू ही

ठीक है। यह जितना हम समझें...लेकिन यह समझने में क्या तकलीफ होती है, पक्ष वाला चाहता है कि समझो तो पूजा की बात करो, विपक्ष वाला चाहता है कि समझो तो विरोध की बात करो। मैं दोनों बात नहीं करना चाहता, इसलिए मैं दोनों के साथ दिक्कत में हूं।

इधर मेरी जो कठिनाई हो गई है। नास्तिक मेरे पास आता है तो वह समझता है कि यह आदमी आस्तिक है। आस्तिक आता है तो वह समझता है कि यह आदमी नास्तिकता की बातें कर रहा है। और मुझे न आस्तिकता से कोई प्रयोजन है, न नास्तिकता से प्रयोजन है। कम्युनिस्ट मेरे पास आता है तो वह समझता है कि मैं एंटी-कम्युनिस्ट बातें कर रहा हूं। गांधीवादी आता है तो वह समझता है कि मैं एंटी-गांधीवादी बातें कर रहा हूं। और मेरी हालत यह हो गई है कि चूंकि मैं प्रत्येक पर विचार करने का आग्रह करना चाहता हूं और विचार का मतलब ही यह होता है कि वह आलोचना शुरू होती है।

अगर आप गांधीवादी होकर मेरे पास आए हैं तो मुझसे आपकी जो बात होगी उसमें गांधी की आलोचना हो जाएगी। अगर आप मार्क्सवादी होकर आए हैं तो मार्क्स की आलोचना हो जाएगी। वह मार्क्सवादी यह खयाल लेकर जाएगा कि मैं मार्क्स का दुश्मन हूं और गांधीवादी यह खयाल लेकर जाएगा कि मैं गांधी का दुश्मन हूं। मुझे किसी की दुश्मनी से कुछ लेना-देना नहीं है।

तो मेरी जो पोजीशन है उसको तो वक्त लग जाएगा कि मैं उसको साफ कर सकूं। क्योंकि वह पोजीशन वैसी जगह पर है जहां कि साफ करने में थोड़ा वक्त लग सकता है।

पांच मिनट ज्यादा लेकर यही पोजीशन जो मार्क्स एंड गॉड, यह जो चीज है उसे एक थोड़े लफ्जों में आप कह सकते हैं?

हां, वहां जो मैंने कहा, उन्होंने मुझसे पूछा किसी ने प्रेस कांफ्रेंस में—शायद राजकोट या सूर्यनगर में—कि क्या आप ऐसा मानते हैं कि साम्यवाद्‌ ईश्वर, ऐसी आपकी मान्यता है? मैंने कहा, इसमें मैं हां भर सकता हूं। मेरी दृष्टि यह है कि साम्यवाद, समाज की व्यवस्था की दृष्टि से तो उसने एक अंतर्दृष्टि दी है, साम्यवाद ने। लेकिन वह अंतर्दृष्टि अधूरी है, क्योंकि वह मनुष्य का जो आंतरिक है, उसको कहीं भी स्पर्श नहीं करती है। या मनुष्य के जो अतीत है, उसको भी कहीं स्पर्श नहीं करती है। अत्यंत आंशिक है। और आंशिक बात को पूर्ण सत्य कहना बड़ा ही खतरनाक हो जाता है। यानी वह असत्य से भी ज्यादा खतरनाक होता है। क्योंकि उसमें अंश सत्य तो होता ही है और इसलिए ऐसा भी लगता है कि सत्य है और फिर मन होता है कि इसको पूरा सत्य कह दें।

साम्यवाद पूरा सत्य नहीं है। वह मनुष्य के जीवन के अत्यंत बाहरी तल को, अत्यंत पदार्थ के तल को छूता है।

मैटीरियलिस्टिक मैकेनिज्म।

हां, तो वह वहां छूता है। और यही उसकी कमी है और यही उसका बल भी है। उसका बल भी यही है, क्योंकि वह जिस बात को छूता है उसे पूरी तरह छूता है, और पूरे गणित की तरह छूता है, और पूरे विज्ञान की तरह छूता है। यह उसका बल भी है, क्योंकि उसने जिस बात को भी छुआ है तो बिलकुल एक पूरी पहुंच है उसकी। और यही उसकी कमजोरी भी है, क्योंकि बहुत बड़ा अछूता रह गया, और उस अछूते को वह बिलकुल इनकार करता है।

तो वह जो मैं हां भर दिया, वह जो गॉड है मेरे लिए, वह सब जो शेष रह गया है कम्युनिज्म में, उस सबका इकट्ठा मतलब है गॉड से मेरा। वह आदमी का आंतरिक और आदमी के अतीत जो भी है, पदार्थ और रूप की पकड़ के बाहर जो भी है, तौल-माप जो प्रयोगशाला के बाहर जो भी है, शब्द-विचार के बाहर जो भी है—वह जो भी छूट जाता है पीछे—उसको मैं गॉड कह रहा हूं। मेरे लिए गॉड का जो मतलब है, तो उसको हम जोड़ दें...।

समथिंग ट्रांसेनडेंटल।

समथिंग ट्रांसेनडेंटल! तो वह जो अगर जुड़ जाए तो कम्युनिज्म की जो अधूरी दृष्टि है, अत्यंत पूरी हो जाती है। लेकिन उस पूरे होने में वह जो कम्युनिज्म था मार्क्स का वह विलीन हो जाता है। क्योंकि यह इतना बड़ा हमला है गॉड का कि इस हमले में वह जो टुच्चापन है वह गया, वह गया। वह सारी वायलेंस गई, वह सारा मैटीरियलिस्टिक एफिनिज्म गया। इसीलिए मैंने कहा कि वह गॉड को जोड़ना, पूरे कम्युनिज्म को पूरा का पूरा यहां से वहां तक बदल देना है। कम्युनिज्म पूरा बदल जाएगा गॉड के जुड़ने से।

और यह भी ध्यान रहे कि गॉड भी बदल जाएगा कम्युनिज्म के जुड़ने से। वही गॉड नहीं रह जाएगा जो हिंदू का है, ईसाई का है, मुसलमान का है। यह गॉड की अब स्थिति बहुत और हो जाएगी। क्योंकि वह जो गॉड था अब तक, वह एक अर्थ में बुर्जुआ गॉड है। वह एक समाजवादी दृष्टि की उसमें कोई पहुंच नहीं है।

तो मेरी अपनी दृष्टि है कि साम्यवाद भी बदलता है ईश्वर के जुड़ने से, ईश्वर भी बदलता है साम्यवाद के जुड़ने से। और जो एक नई सिंथीसिस बनती है वह बहुत मूल्यवान है। इसलिए मैंने हां भर दिया कि मुझे यह बात ठीक लगी, इसको हां भरा जा सकता है।

लेकिन आज जब गॉड और मार्क्ससिज्म या कम्युनिज्म कहते हैं, तो कम्युनिज्म का भी वह पुराना ढांचा है और गॉड का भी पुराना ढांचा है, इसलिए...।

ढांचा ही बना हुआ है सब का। दोनों के ही ढांचे हैं। वही दिक्कत हो जाती है।

ऐसे ही जो लोग रहते हैं न, क्रिश्चियन कम्युनिस्ट कहते हैं, क्रिश्चियन मार्क्सिसिस्ट कहते हैं, तो ऐसा खयाल आ जाता है कि आप क्या ऐसा तो मानने वाले हैं नहीं...।

ऐसे कई दफे भोगीलाल जी खयाल आएंगे, लेकिन किसी खयाल में पड़ना मत आप। मैं कोई नहीं हूं।

अब आखिरी मिनट आपकी बात कर लें! यह हम आपको इत्मीनान दिला सकते हैं कि जो आपने यह बहस शुरू कर दी है, गांधी शताब्दी के वर्ष में भारत और भारत के बाहर भी गांधी की बड़ी तारीफ भी होगी और उसके कामों के बारे में सोचा भी जाएगा। उस वक्त एक आलोचनात्मक तटस्थ दृष्टि से आपने जो विचार-परंपरा शुरू की है, उसका हमारे जैसे बहुत सारे लोग जो हैं सर्वोदय विचार में और काम करने में, वे उसका स्वागत करते हैं। यह मैं आपको...चाहे हम कुछ भी आपके खिलाफ लिखें, उसका मतलब यह होगा कि जो आप चाह रहे हैं वह हम कर रहे हैं।

आप कर रहे हैं, बिलकुल आप कर रहे हैं।

और जब लिखा था, तब भी वह भी लिखा था कि ऐसी आलोचना होनी चाहिए।

बिलकुल बढ़िया है, बिलकुल हरिवल्लभ भाई।

तो यह सिर्फ आपको आखिरी मिनट में इत्मीनान दिलाऊंगा कि लिखा भी है, शायद और भी लिखेंगे, इससे जोरदार लिखेंगे। और आपको इसके लिए लिखने के लिए आवाहित करेंगे कि और ज्यादा साइंटिफिक और मुमकिन है कि गांधी शताब्दी के वर्ष में ही आपकी रुचि है उसका वैज्ञानिक रूप निखर आए जो आप चाहते हैं और हम चाहते हैं। और हम तो चाहते हैं कि आप भी कुछ लिखें। आप सब बोलते हैं और फिर उसमें कुछ गड़बड़ी भी हो जाती है।

गड़बड़ी मचाना है!

गड़बड़ी मचाना है भाई...।

अच्छी बात है, आनंद रहा, आप सब आए।